"SOCIO-ECONOMIC CONDITION AS DEPICTED IN THE KATHASARITSAGAR OF SOMADEVA"

(In Hindi)

A Thesis Submitted for the

Degree

of

Doctor of Philosophy

by

Surya kant

Under the Supervision of

Dr. A. P. Ojha

Department of Ancient History Culture & Archaeology

University of Allahabad

Allahabad (India)

2002

आत्म निवेदन

माध्यमिक स्तरीय शिक्षा-प्राप्तिकाल मे एक दिन विद्यालयीय-पुस्तकालय मे मेरी दृष्टि एक पुस्तक 'बेताल-पचीसी' पर गयी। कौतूहल हुआ पुस्तक निर्गत करायी। मैंने पढ़ी। लघु कलेवर, एक विस्तृत चिन्तन शिव-सुघर-धार से उच्छरित जीवन-गति विकासोन्मुख-भाव-बिन्दु-सिक्त पुस्तक। मेरा मन-मस्तिष्क-समग्र स्नात आर्द्र। कथा की गति से अन्त: अभिभूत मै उस प्रकार की कथाओं का अन्वेषी बन गया।

महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयी शिक्षास्तर तक पहुंच संस्कृत भाषा और साहित्य के इतिहास का अध्ययन करते समय मैं एक विचित्र तथ्य से अवगत हुआ कि सुविख्यात कथा काव्य कादम्बरी का कथा-विस्तार कदाचित किसी कथासरित्सागर/वृहत्कथान्तर्गत समाविष्ट आख्यान क्रम से उत्प्रेरित है। और वहीं पूर्व पठित बेताल-पचीसी भी संगुम्फित है। फिर तो मेरी उत्कण्ठा एवं अभिरुचि संस्कृत साहित्य की ओर अत्यधिक अभिवर्द्धित हुयी। नियति ने मुझे प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययन की ओर अभिमुख कर दिया। सफल भी हुआ मै। एम0 ए0 परीक्षा उत्तीर्ण करने के अनन्तर अपने अन्य सहाध्यायियों की ही भाँति अनुसन्धित्सुभावी मानस मैं प्रेरणा एवं निर्देश प्राप्ति के लिए यत्नशील हुआ। विधिवशात् तत्कालीन प्रोफेसर (अध्यक्ष) प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय श्री वी0डी0 मिश्र जी के समक्ष मैंने अपनी उत्कण्ठा प्रकट की। उन्होंने मेरी अभिरूचि जाननी चाही। मैंने माध्यमिक पुस्तकालय से सम्प्राप्त वेताल-पचीसी की चर्चा सहजभाव से कर दी/बस/तत्क्षण उन्होंने कहा-समझ गया। अपनी चिरसंजोयी मूर्त करने का अवसर तुम्हारा उपस्थित है। 'कथा सरित्सागर' का अध्ययन करो और उसी मे वर्णित किसी पक्ष विशेष शोध-विषय विनिश्चित कर लो।

चिरसंजोयी ललक सम्पूर्ति के लिए प्रेरणा सूत्र पाकर मै आह्लादित हो उठा।

कथासरित्सागर एवं तद्विषयक कथागत, विषयगति एवं स्वरूपगत ज्ञान बोधार्थ उन्मुख हुआ। ग्रन्थोपलब्धि मे कठिनाई किन्तु येन-केन-प्रकारेण सम्प्राप्ति हुई। कलेवर देख कर ही हतासा ने अक्रान्त किया- किस पक्ष का अध्ययन समीचीन अथवा असमीचीन-उहापोह। पता चला ग्रन्थ का सांस्कृतिक अनुशीलन दो रूपो मे हो चुका है-

'कथासरित्सागर' तथा भारतीय संस्कृति एवं 'कथासरित्सागर एक सांस्कृतिक अध्ययन'। विद्वानद्वय डॉ0 एस0एन0 प्रसाद और वाचस्पति द्विवेदी की कृतियों का अध्ययन किया। मार्ग मिला। विनिश्चय किया-ग्रन्थान्तर्गत उपलब्ध तत्सामयिक सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अनुशीलन करूं। इसी भाव भूमि पर गुरुजनों की प्रेरणा मिली, विषय विनिश्चय हुआ-'कथासरित्सागर में प्रतिबिम्बित सामाजिक आर्थिक स्थिति' बस। इसी दिशा में अनुशीलन रत हुआ। निविड़ कथानुकथा-संग्रह 'कथासरित्सागर' मे समाज तथा अर्थ-व्यवस्था-अन्वेषण महत् दुष्कर प्रतीत होने लगा। अन्तत: मेरे अध्ययन को गति तब मिली जब गुरुवर्य डॉ0 ए0पी0 ओझा जी ने अभिप्रेरित किया और परमादरणीयद्वय डॉ0 आर0 पी0 त्रिपाठी रीडर प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद एवं डॉ0 विमल चन्द्र शुक्ल रीडर इर्विंग क्रिश्चियन कालेज इलाहाबाद ने साहस बंधाया डॉ0 सी0 डी0 पाण्डेय जी एवं डॉ0 वी0पी0 दुबे जी के प्रति आभारी हूँ जिनसे शोध कार्य के प्रति निरन्तर सहयोग मिलता रहा।

शोध-प्रबंध-'कथासरित्सागर' मे प्रतिबिम्बित 'सामाजिक, आर्थिक स्थिति' में उपस्थापित सामाजिक आर्थिक स्थिति का विश्लेषण ग्रन्थ में संकलित आख्यानान्तर्गत घटनानुक्रमोद्भावित, तत्परिवेश एवं तदानुसंगमित पात्र-चरित्र और उनके क्रिया-कलापाभासित तथ्यों पर आधारित हैं। साथ ही विश्लेषण समग्र मेरी निज की गति-मति-साधित है।

अन्त में अपने पूज्य ! पितृ चरण श्री कमला प्रसाद तिवारी एवं माता के प्रति जो मुझे अहर्निशि प्रेरणा देते रहे, के प्रति नत शिर आशीर्वादाकांक्षी एवं पितृ तुल्य अग्रज श्री के0 के0 तिवारी जी एवं भाभी के पुत्रवत् स्नेह का पात्र का बनकर ही मैं आज इस योग्य हुआ। शोधकार्योद्भूत कठिनाईयों के कारण, विश्रान्ति के क्षणों में पत्नी ज्योति एव पुत्री अनन्या के बीच स्वयं को हर्षित पाता था। शीध्रता पूर्वक टंकण कार्य हेतु श्री संजय जायसवाल जी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध सूधीजनो के लिए किञ्चिद् मात्र भी उपादेय सिद्ध हो सकेगा, तो मैं अपने प्रयास एवं स्वयं को धन्य समझूँगा।

24/4/02
तिथि

सूर्य कान्त

शोध छात्र

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

प्राचीन कथा साहित्य का विकास
एवं
उसके अन्तर्गत कथासरित्सागर का स्थान

प्राचीन कथा साहित्य का विकास एवं उसके अन्तर्गत कथासरित्सागर का स्थान

समस्त ज्ञान के स्रोत वेद ही कथा-साहित्य का उत्स हैं। पुरातन सर्वस्व ग्रन्थ ऋग्वेद में कथा साहित्य के तत्व हम विविध सूक्तों मे सहजत: उपलब्ध कर सकते हैं। विश्व साहित्य ने भी वस्तुत: भारतीय वाङ्मय के आदि ग्रन्थ वेद से ही जीवन्तता ग्रहण की है। वेद का अर्थ ही ज्ञान होता है। कथा साहित्य में जीवन के सभी तत्व गुम्फित रहते हैं। वेद में जीवन जीने की समस्त प्रक्रिया स्तुतियों, प्रकृति वर्णनो, विविध संवादों में, विश्लेषित किये गये हैं। जीवन की नैतिकता, सौहार्दता, सौमनस्यता, उदात्तता सहिष्णुता त्याग आदि गुणो की मनोरम रसमयता वस्तुत: कथात्मक साहित्य के ही विषय है, इसलिए कि कथा में सरलता, माधुर्य, रोचकता, भावो की सहज अभिव्यक्ति, प्रकृति और प्रवृत्ति-वृत्ति की सूक्ष्म विवेचना कथा पात्रों के घटनागत संवादो के माध्यम से की जाती है। सबसे बड़ा वैशिष्ट्य यह है कि कथा मे नीति, सदाचार सद्व्यवहार, सहयोगिता, सहचर्या आदि का कथन सिद्धान्त रुप मे नही बल्कि व्यवहारिक रूप मे किये जाते हैं। कथागत पात्र इन सभी भावो

के प्रतिमान बनकर पाठक के अन्तर्मन को प्रभावित करते है। भले ही कथा पात्र मनुष्य न होकर पशु-पक्षी ही क्यों न हो। पशु-पक्षियो में जीवन के उदात्त भावों का समावेश, पाठक को कौतुहल-प्रक्रिया में प्रभावित करता है। यदि देखा जाय तो सृष्टि का प्रारम्भ ही कथा रूप है। प्रलय, जल-प्लावन अक्षयवट, शेषशय्या, विष्णु-नाभि-कमल से परमेष्ठिन् ब्रह्म का अवतार, फिर उनके द्वारा सृष्टि-रचना की प्रक्रिया रीति। यह क्या कथात्मक विधा नहीं है? क्या यह कथा नहीं है? तात्पर्य यह है कि कथा का उद्भव, सृष्टि एवं मानवोत्पत्ति के समानान्तर हुआ। साहित्य का स्वरूप उसे वेद के सूक्तों में, ऋचाओं के माध्यम से प्राप्त हुआ। ऋग्वेद के कई संवादात्मक सूक्तों में विद्वानों ने कथातत्वों का अभिनिवेश स्वीकारा है। हॉ यह भी एक उल्लेखनीय तथ्य है कि इन सूक्तों में कथा-संवाहक मानव प्राणी कम मानवेतर प्राणी प्रमुख है। अनुमान है, यह इसलिए कि मानवेतर प्राणी में सौमनस्यता, सहिष्णुता, त्याग तथा उदात्तता आदि गुणों का अभिनिवेश पाठक के लिए सद्य-प्रभावी है। अधिकतर विद्वानों का मत है कि प्रारम्भत: यह कथाएँ मात्र कौतूहल-तत्वधारक बन मात्र कथा रूप ही रही, शनै-शनै: साहित्य अन्वीक्षकों ने उनमें सन्निविष्ट घटनाओं और कथापात्रो के चारित्रिक-परिवीक्षण मे जीवन-तत्वों के दर्शन किये और उन्हें ज्ञान-भूमि अनुमिति किया 'वैदिक युग की कथाओं में मानवेतर तत्व एवं कल्पना की सुखद उड़ान का दिग्दर्शन सहज मे ही हो जाता है। प्रारम्भ मे सम्भवत: कथा का उद्देश्य केवल कथा ही रहा होगा। कालान्तर में कथा, कहानी के अभिप्राय से हटकर ज्ञान के क्षेत्र से सम्बन्धित होने

लगी। यह निःसन्देह कहानी लेखन के इतिहास में महत्वपूर्ण सोपान था।'[१] यह अभिमत वस्तुतः पाश्चात्य विद्वानों की अवधारणा से अभिप्रेरित है। तथ्यतः वैदिक सूक्तों के संवादो में कथात्मक-तत्व-अभिपोषित संवाद अत्यन्त ही सारगर्भित एवं ज्ञानबोधक है, वह कथमपि मात्र कथा नहीं कहे जा सकते।

ऋग्वेद के कई सूक्तों में कथा-तत्व प्रतिष्ठित करने का जो प्रयास विद्वानों ने किया है, और जिनमें मानवेतर प्राणियों का ही प्रतिनिधित्व होने से मात्र कौतूहल-वर्धक शुद्ध कथा रूप ही स्वीकारा है, यह संगत नहीं है। ऋग्वेद मण्डल १०/सूक्त १०८ पूरा का पूरा कथात्मक तत्व सनाथ हैं। उसमें सरमा ने इन्द्र की दूतिका बनकर पणियों को, गुरु वृहस्पति की गाय लौटाने की मंत्रणा देती हैं, गायों को वह राष्ट्र की सम्पत्ति कहती है। राष्ट्र की सम्पत्ति राष्ट्र की है, किसी एक की नहीं। पणि उसे धन, अधिकार का प्रलोभन देकर अपनी सहभागिता के लिए अभिप्रेरित करते है। उसे भगिनी संबोधन देते है पर उसे पणियो का प्रस्ताव स्वीकार नहीं होता। क्या हम इसे मात्र कथा कह सकते है? इसमें ज्ञान उस ज्ञान को अधिष्ठित करने का प्रयास है, जिसके आधार पर भारतीय महनीयता की प्रतिष्ठा आज तक अक्षुण्ण है और यह है सार्वभौम मंगल कामना, राष्ट्रीय-भावों की उदात्ततः, राष्ट्र की वस्तु पर किसी भी व्यक्ति समुदाय का अधिकार कथमपि नही हो सकता। इतना ही नहीं सरमा के व्यवहार और चरित्र से हम एक राजदूत के सत्य स्वरूप का ज्ञान करते है। उक्त सूक्त का विवेचन

हमे बीसवीं शती के एक काव्येतिहास अथ-अनुक्रम[२] में स्पष्टत: साक्षात होता है। इसी प्रकार एक अन्य सूक्त में ऋषि विश्वामित्र एवं नदियों का संवाद बड़ा ही विस्मयकारक है। विश्वामित्र नदियों को भगिनी संवोधित करते है और नदियों ने उन्हें भाई का सम्मान दिया। विश्वामित्र नृपति सुदास पैजवन का पुरोहित/नदियों को पारकर नृप के यहाँ यज्ञ सम्पन्न कराने गया, विडम्बना उसके जाने के पश्चात् ही नदियॉ उफना उठी। उन्हें लाँघना दूभर ही नहीं असम्भव था उसको तो आभास भी न था उस ऋषि ने वहॉ से पर्याप्त सम्पत्ति प्राप्त कर प्रत्यावर्तित हुआ, उसे क्या मालूम था कि नदिया उफना जायेगी। गाड़ियों पर लदा धन-धान्य, अनेक साथी, नदियों का पुलिन, सामने अपार जलराशि का उफान, वह विस्मय पूर्ण नेत्रों से देखता ठगा रह गया। विश्वामित्र ने नदियों की स्तुति किया, मातृतया सिन्धु की शरण में आया हूँ, रक्षा का इच्छुक मै कौशिक पुत्र बड़े मनोयोग से सिन्धु की ओर मुख करके विनती कर रहा हूँ [३/३३-४] अन्त में ऋषि ने नदियों को भगिनी का संवोधन देकर प्रार्थना किया- हे भागिनियो, मुझ भाई की प्रार्थना अस्वीकार न करो। रथ पर बैठकर और ठेले पर सामान लादकर मैं बड़ी दूर से आ रहा हूँ। मेरा कहना मानकर थोड़ी नीची हो जाओ, अपनी धार को मेरे पहियो की कीली से नीचा कर लो, मेरे लिए सुगमता से पार करने योग्य हो जाओ।

अन्तत: 'स्वसा', सम्बोधन सुनकर नदियों का हृदय द्रवित हो उठा और

उन्होंने विश्वामित्र को पार जाने का मार्ग दे दिया। क्या इस कथा को हम मात्र कथा का ही रूप माने? कथमपि नही। इसमे जीवन के वह उदात्त भाव समाविष्ट है जो जीवन को दिव्यता प्रदान करते है। क्या इस कथा में ज्ञानोपदेश नहीं है? इसी प्रकार कथा के दिव्य तत्वों से पूर्ण सूक्त है- यम-यमी संवाद (ऋग्वेद १०/१०) और पुरुरवा-उर्वशी संवाद (ऋग्वेद १०/९५) इनको उपजीव्य रूप मे ग्रहण करके कालान्तर में काव्य एवं कथा काव्य प्रणीत हुए। ऋग्वेद के मण्डल ७/१०३ सूक्त में तपस्यारत व्रती द्विजो के रूप में मण्डूकों का समूह चित्रित किया गया है।[३] वेद में प्रकृति एवं मानवेतर प्राणियों के साथ सहयोग, सद्भावना, सहृदयता और आत्मीयता का अंकुर प्रकटाया गया है। वस्तुत: कथा साहित्य का सर्वाधिक महत्व पूर्ण केन्द्रीय तत्व यही है। एवमेव जीवात्मा-परमात्मा के सम्बन्धों और प्रकृति-संग उनकी तादात्मयता का विश्लेषण अथर्ववेद में मिलता है, चिसे एक ही वृक्ष पर बैठे दो पक्षियो के माध्यम से ही प्रस्तुत किया है। इस कथानक में वृक्ष **जगतप्रपंच** अथवा **मानव शरीर** है। उस पर बैठे दो पक्षी-जीवात्मा तथा परमात्मा है। जीवात्मा वृक्ष के फल खाता है, अर्थ यह है कि सांसारिक भोगों को, कर्मफलों को भोगता है। परन्तु परमात्मा वही बैठे बैठे दृष्टा है। यह कथा ऋग्वेद मे भी आयी है। ऋचा का अभिप्राय है- सुन्दर पंखो वाले दो पक्षी है, जो संग-संग निवसते है, परस्पर सखा रुप है, समान वृक्ष पर अवस्थित है। उममे से एक स्वादु फलो का भक्षण करता है, दूसरा भक्षण नही

करता।[४] क्या इस कथा का विषय मात्र कथात्मक प्रस्तुति है? इसमें जीवन के मूल तत्व प्रकृति-पुरुष, जीवात्मा-परमात्मा की स्थिति, अस्तित्व का सत्य ज्ञान दिया है। परुरवा-उर्वशी का मूल वैदिक कथानक का ही विस्तार कालान्तर में पुराणों एवं ललित साहित्य में किया गया है।

एक महत्वपूर्ण तथ्य विचारणीय अवश्य है कि न केवल वेद अपितु पुराणो में भी कथा तत्व के संवाहक पात्र मानवेतर प्राणी पशु-पक्षी ही है क्यों? इसका रहस्योद्घाटन प्रारम्भ की पंक्तियों में किया जा चुका है, वह यह कि पशु-पक्षियो मे जीवन के दिव्य तत्वों का समावेश उनकी व्यहृत पाठक को कौतूहल पूर्ण रीति से आत्मसात करने में अधिक सहज है। ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषदों में भी मानवेतर प्राणियों की कथाएँ है, वह प्राय: नीति परक और उपदेशात्मक है। जो सद्य: प्रभावक है। उपनिषदों में जो कथाएं प्राप्त होती है उनका स्वरुप पर्याप्त सीमा तक विकसित है। छान्दोग्योपनिषद की दो कथांए इस तथ्य का प्रमाण है। एक जिसमे भोजन के लिए कुत्ते अपना एक मुखिया निर्वाचित करते है और दूसरी मे हंसो के संवाद मे रैक्व का ध्यान आकर्षित करने की चर्चा है।[५] इस उपनिषद् मे सत्य ज्ञान को वैल हंस तथा एक जलचर पक्षी के माध्यम से ब्रह्म विद्या का उपदेश दिलाया गया है।[६]

पंचतंत्र की कथाओ का विकसित रूप का उपजीव्य महाभारत का शान्तिपर्व

ही प्रतीत होता है। कथाएँ नीति परक जीवन में नैतिकता, विवेकशीलता, चातुर्य, कूटनीतिज्ञता के महत्व, से परिपूर्ण है। सोने के अण्डे देने वाली चिड़िया, धार्मिक मार्जार का अपने बुद्धिबल से मूषकों को विश्वस्त, आश्वस्त करना अपनी कूटनीतिज्ञता द्वारा शृगाल द्वारा अपने अन्य साथियों को छल प्रक्रिया से ठग कर लूट की सारी सम्पत्ति हस्तगत किये जाने की कथाएँ मानव जीवन को भी व्यवहृतिमूलक है। शान्तिपर्व के अतिरिक्त आहिपर्व मे भी कुत्ता, गजकच्छप कथा, वनपर्व मनु-मत्स्य कथा आदि विविध कथा-सन्दर्भ, कथा-विकास के ही सोपान है। पाणिनि के २-१-३,२-४-९, ५-३-१०६ संख्यक सूत्रों पर किये गये पतंजलि के भाष्य में अजाकृपाणीय, काकतालीय, लोकोक्तियॉ, अहिनकुलम्, काकोलूकीयम् आदि नीति कथाएं भी कथा साहित्य को विकसित करने मे सोपान ही है। पालि साहित्य की जातक कथाएं जिसमें बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाएं संकलित है, भारतीय कथा साहित्य की अक्षय निधि है। उपनिषद आदि में संदर्भित मानवेतर-प्राणियों पशु-पक्षियों एवं अन्यान्य जीव जन्तुओं की कथाओ से विशिष्ट है। इसमें कुछ कथाएॅ ऐसी भी जिनमे बुद्ध मनुष्य योनि में उपस्थित है। जातक ईसापूर्व-तीन सौ मे संकलित हो चुके थे। यह अतिविशाल संग्रह है। पॉच सौ कथाओं का संकलन इसे सभी विद्वान स्वीकारते है। वेद से लेकर बौद्ध जातक कथाओं मे अद्भुत कथा, लोक कथा, कल्पित कथा, एवं पशु कथा सभी के रूप उपलब्ध है।

द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व मे रचित पतंजलि के महाभाष्य में संदर्भित लोकोक्तियों एवं न्याय उक्तियों से आभास मिलता है, कि मानवेतर प्राणी पशु-पक्षियों की कथाएं तत्कालीन सामाजिक जीवन में अतिशय लोकप्रिय रही ये कथाएँ प्राय: कल्पना-प्रसूत और चमत्कार पूर्ण रही, सम्भव है साहित्यिक रूप का आधार यही रही हो। प्रमाणाभाव में अधिकारिक रूप से कथा-साहित्य का उद्‌गम मानना असंगत प्रतीत होता है। तथापि महाभारत, रामायण, आदि में संदर्भित नीति परक पशु पक्षी की पारस्परिक व्यवहृति एवं आचार विषयक कथाएँ साहित्यिक कथाओं के अभिप्रेरणा रुप में अवश्य स्वीकारणीय है। क्योंकि भरहुत[७] के स्तूप पर भी बौद्ध जातकों की ऐसी कथाएँ उट्टंकित रहीं हैं। उन्हीं 'प्रकृति', 'प्रवृत्ति' एवं 'वृत्ति' के समानान्तर कथाऍ पल्लवित कथाएँ कलात्मक ढंग से विकसित होकर साहित्यिक भाव-भाषा-संवलित पंचतंत्र में प्राप्त है, भले ही उनमे पूर्णत: साहित्य-तत्व का अभाव है। परन्तु ये कथाएँ साहित्य-प्रवृत्तात्मकतोन्मुख नही है, यह कहना अनुचित है। पंचतंत्र का गद्य और पद्य दोनो भाषा-भाव के साथ ही अलंकृति का प्रतिविम्ब उपस्थित करते है। विद्वान इस सम्बंध मे मतैक्य नही है- 'नि:संदेह पंचतंत्र में कल्पित कथाओं का विस्तार मिलता है, किन्तु उसमें कलात्मक एवं साहित्यिक तत्वों का अभाव पाया जाता है। पंचतंत्र पूर्णरूपेण कल्पित कथाओं का वृहत् संकलन हैं। कथाओं का विभाजन भारतीय दृष्टिकोण के आधार पर नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र के रूप में हो सकता है।[८]

इतिहास गद्य साहित्य में परिगणित होता है, परन्तु राजतंरगिणी, नवसाहसांकचरित, पृथिवीराजविजय आदि भी इतिहास कोटिक रचनाएं है जिन्हें **'काव्येतिहास'** की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। तथैव कथा साहित्य की भी रचना दोनों विधाओं में होती है। मुख्यत: कथासाहित्य गद्यात्मक ही होता है। प्रकृत्यानुसार कथा में घटनादि क्रम को वर्णनात्मक गद्य में और कथा का निहितार्थ पद्य में विश्लेषित होता है। कथा की इस प्रकृति का दिग्दर्शन पंचतंत्र, हितोपदेश और ई०पू० तृतीय शती के संकलन, बौद्ध जातक कथाओं मे प्राप्त होती हैं। जातकों में तो कथा का समाहार ही एक या दो गाथाओं में धार्मिक एवं नैतिक भावों की विवृत्ति द्वारा किया गया है। कथा की विधा गद्य ही है। गद्य-पद्य मयी कथा प्रकृति का प्रथम दर्शन हमें ऐतरेय[९] ब्राह्मण में प्राप्त होता है। ऐसी कथाओं मे पद्य भाग विशिष्टता रखता है। क्योंकि उसमें कथा का कथ्य अपनी प्रकृति में उजागर होता है। साधारणतया कथा के ग्रन्थ गद्य मे पाये जाते हैं। इस प्रकार कथा का गद्य के साथ सम्बन्ध प्रारम्भ से ही पाया जाता हैं। इस प्रवृत्ति का प्रारम्भिक स्वरूप ऐतरेय ब्राह्मण के कथात्मक पद्यों में देखा जा सकता है। कथा ग्रन्थों की रचना के लिए श्लोक संग्रह की पद्धति का प्रार्दुभाव इसी समय हुआ इसमें कथा के स्वरूप को ग्रहण करने की पूर्ण क्षमता है।[१०] बाद में कथा ग्रन्थ इन्ही श्लोकों के आधार पर काव्य की शैली में लिखे जाने लगे।

शनैः-शनैः कथा विकास क्रम में कथा प्रकृति को अधिकाधिक प्रभावोत्पादक सहज, सारगर्भित बनाने के लिए इसे विस्तृत स्वरूप प्रदान किया। इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत कथा-मूल में उसकी प्रकृति के अनुकूल निहितार्थ के उद्भावनार्थ कतिपय कल्पनात्मक एवं घटना परक, संदर्भ समायोजित करने की परम्परा प्रारम्भ हुयी। इस परम्परा से 'कथा लेखकों' को प्रकारान्तर से स्वप्रतिभा एवं कल्पना-विस्तार का अवसर तथा, कथा मे विविध कथा-संवाद-सन्निवेश की स्वच्छन्दता भी प्राप्त हुयी। यह स्वच्छन्दता काव्य कथा के लिए संजीवनी बनी जिसके सुष्ठु दर्शन, काव्येतिहास, के कथात्मक अंशों में, अतिशयता से उपलब्ध होता है। कथा प्रकृति-अनुकूल लघुकथानको का समायोजन, घटनाक्रम का सातत्य, एवं अद्यान्त्य, तारतम्य, समीचीन होने लगा। कथानक के असाधारण विस्तृति के लिए कवियों ने मूलकथा के अन्तर्गत अनेक लघुकथाओ. को इस प्रकार पिरो दिया है कि कथा के विस्तार के साथ-साथ उनमे तारतम्य स्थापित हो जाता है, और इस प्रकार अनेक कथाओं के साम्राज्य का ताना-बाना बुनना कोई सरलकार्य नहीं था, यह निश्चय ही किसी अज्ञात पुरुष या वर्ग की कल्पना रही होगी। कथा की इस प्रवृत्ति से निःसन्देह अनेकों नयी कथाओ का सम्मिश्रण हुआ होगा। यद्यपि ऐसी कथाओं का मूल प्रचलित कहानी ही रही होगी। परन्तु कथा-साहित्य में उसे संदर्भित करने के लिए कथाओ मे अनेकों मूलभूत परिवर्तन अवश्य किये गये होंगे। इस मत की पुष्टि का सबसे सुन्दर उदाहरण बौद्धजातक ग्रन्थ

हैं।[११] यह सर्वविदित तथ्य है कि जातक कथाओं का मूल तत्कालीन, मध्यदेशीय लोक कथाओं में ही सन्निहित मानना पड़ेगा। उन्ही लोकप्रिय परम्परा से चली आ रही, कथाओं को निज धर्म एवं परिवेश के अनुकूल रुपान्तरित कर लिये गये होगे। इसप्रकार जातक कथाएँ विश्व कथा साहित्य की अक्षय निधि बन गयी।

वर्ण्य विषय

भारतीय वाङ्मय समग्र कथा साहित्य की भूमि है। ज्ञान के उत्स आदि ग्रन्थ वेद अपने सूक्तों में सृष्टि-रचना की कथा नद-नदी, वन-पर्वत के आख्यान, ब्राह्मण ग्रन्थों मानवीय चरित दिव्य जीवनकी कथा, और पुराणों में तो जीवन के उदात्त, अनौदात्त, ऊर्ध्व एवं अधोमुखी पद्धति के, विश्लेषक संदर्भो को, कथायित किया गया हैं। महाभारत तो पूरा का पूरा जीवन की दिव्यता-अदिव्यता को, सांस्कृतिक मूल्यों के साक्षात्कार-क्रम में धर्म, समाज संग, राष्ट्रीयअस्तित्व और राष्ट्रधर्म, की कथा प्रस्तुत करता हैं। कथा आख्यायिका के माध्यम से जीवन-तत्वो का सुगम विवेचन करने की यह परम्परा भारतीय मनीषा की है। इसीलिए भारतीय वाङ्मय कथात्मक साहित्य का अक्षय भण्डार बन गया। भारतीय कथा साहित्य मे दिव्य कल्पना एवं कौतूहलदायिनीवर्णना का अभूतपूर्व संगम हुआ है। वर्णनात्मक साहित्य की दृष्टि से संस्कृत साहित्य अक्षय भण्डार स्वरूप है। संस्कृत के वर्णनाप्रधान साहित्य के अनुशीलन करने पर निष्कर्षत:

यह अवधारणा पाश्चात्य साहित्यानुशीलकों ने स्थापित की है कि 'यह साहित्य न केवल धर्मप्रतिष्ठा हेतु जनमनरंजन की वस्तु है वरन् इसमे एक सौष्ठवपूर्ण काव्य दृष्टि का सम्यक् निदर्शन भी प्राप्त होता है।' इसी कारण पाश्चात्य विद्वान् और इतिहासान्वेषी विण्टरनित्स ने भारतीय वाङ्मय के कथा साहित्य को उत्कृष्ट बौद्धिक मस्तिष्क की उपज अभिहित किया है।[१२]

भारतीय वाङ्मय में दो शब्द युग्म पुराकथा साहित्य और प्राचीन कथा साहित्य सामान्यतः समानार्थ-बोधक प्रतीत होते हैं। परन्तु समानार्थ स्वीकार लेने पर कथा साहित्य के विकास उत्स को वेद अथवा पुराणों से असम्बद्ध करना पड़ता हैं। पुरा आख्यान का उत्स मानव जीवन के उदयकाल से संयोजित करना पड़ेगा, जिसमें विस्मयता, दैवकृपा, अज्ञातपुरुष, छद्मवेशी प्राणी आदि के अत्यधिक कौतूहलपूर्ण क्रिया-कलाप के अतिशयता से दर्शन होते है जो यदा-कदा विश्वास भूमि पर निकषायित होने की क्षमता से दूर हो जाते है, पर हम उन्हें कथा-साहित्य से पृथक नहीं कर सकतें क्योंकि वह आख्यान भी वर्णनात्मकता की कोटि है। कथा साहित्य मे वर्णन उसका प्राण है वह गद्य अथवा पद्य किसी भी विधा मे हो। उन कथात्मक वर्णनो का अभिधान, गाथा, एवं पुरा-आख्यान अथवा पौराणिक आख्यान के रुप मे होता है। वस्तुतः इन्हे इतिवृत्तात्मक, भावभूमि पर संकलित मानवीय भावो की सुष्ठु अभिव्यक्ति कहना ही अधिक तर्क संगत प्रतीत होता हैं। इनमे घटनाक्रम की संयोजन-प्रक्रिया

कल्पनातिशयी एवं अतिरंजनामयी हो उठती है। कथा साहित्य के विकास-क्रम में ऐसे पुरा अख्यानों को सर्वथा रूप में अस्वीकारना अदूरदर्शिता ही कही जायेगी। इस प्रकार हम कह सकते है कि प्राचीन कथा-साहित्य का इतिहास मानवीय-इयत्ता से सम्बद्ध है।[१३] संस्कृत कथा-साहित्य सर्वत: मौलिक है और उसकी वर्णना शैली किसी भी परम्परा की ऋणी नही है।

पाश्चात्य विद्वान विण्टर नित्स के अनुशीलन का निष्कर्ष है कि संस्कृत भाषा का वर्णनात्मक अर्थात् अख्यान साहित्य, विषय वस्तु एवं घटना-क्रम के साथ-साथ छन्द आदि की दृष्टि से भी मौलिक है। कथा वर्णन में धोरोदात्त नृपति, सामन्ती प्रवृत्ति पूर्ण पुरुष, धीरवीरो, सुन्दरियों, राजकुमारियों, सन्तों, तंत्र-मंत्र एवं उनके प्रयोग कर्ताओं, जादूगरो, आडम्बरी जनो, देवदासियों, गणिकाओं के विविधपक्षीय चरितो का आकलन प्राप्त होता है। प्रकारान्तर से देशकाल तथा संस्कृति की झलक प्रतिविम्बित होती है। विश्वसाहित्य में संस्कृत साहित्य के इस वर्णनात्मक कथा साहित्य का सर्वाधिक योगदान है।[१४]

संस्कृत का प्राचीन कथा-साहित्य मूलत: जीवजन्तुओं के चारित्रिक औदात्य के साथ तादात्म्य स्थापनार्थ मानव-जीवन के दिव्य गुणारोपण-निमित्त प्रादूर्भूत हुआ, यह स्वीकारना असंगत है। एसी कथाओ का पूर्ण उन्मीलन प्राकृत कथा साहित्यमे विकास-क्रम के निरन्तर हुआ। संस्कृत का कथा साहित्य स्वप्रार्दूभूत है। भारतीय पौराणिक काव्य एवं पौराणिक कथा साहित्य की प्राचीनता समानान्तर और असंदिग्ध है। यह भी

तथ्य है कि पौराणिक कथाओ में निहितार्थ धर्म संस्कृति को उन्मेषित करने के लिए काल्पनिक घटनाओं के संयोजन द्वारा विस्तृति को प्राप्त हुआ। यह उल्लेखनीय है कि पौराणिक कथा साहित्य पहले गद्य-पद्यात्मक ही रहा किन्तु कालान्तर में यह पूर्णतया पद्यात्मक ही हो गया। भारतीय वाङ्मय का वर्णनात्मक एवं आख्यानात्मक साहित्य लोकप्रिय तथा ऐतिहासिक कथाओं, धर्मानुप्राणित कथा, बौद्ध एवं जैन सिद्धान्तमूलक कथा, राजनीतिक रीति-नीति प्रतिवादक कथाओं और कौतुहल प्रद मनोभावाभिभूत कथाओ का, संग्रह स्वरुप स्वीकरा हुआ। इनमें से अधिकांशत: कथाओं का प्रारम्भिक रूप प्राकृत अथवा तत्कालीन अन्यान्य भाषाओं में लिखा गया और कालो परान्त उनका रूप संस्कृत भाषा में अवतरित होता गया।

निष्कर्षत: यह अवधारणा स्थापित करना अनुचित होगा कि संस्कृत का विशाल कथा साहित्य अवतरित न होकर अवतारित अथवा अवान्तरित है, जिसका उपजीव्य वेद के संवादात्मक सूक्त, ब्राह्मणो मे संदर्भित ज्ञान बोधक आख्यान एवं इतिहासोन्मीलक गाथाएं स्वीकार्य हैं। संवादात्मक सूक्तो की विस्तृति का प्ररिप्रेक्ष्य तथा लोकप्रिय जन समाज में अनुश्रुत कथाओ के परिवेश ने वृहत्कथा, वेतालपंचविंशति, वृहत्कथा मंजरी, एवं अन्तत: कथासरित्सागर जैसी, कथाकृतियो को जन्मदिया। संस्कृत कथा साहित्य का नीति, उपदेश, कौतुहल, मनोरंजन, हास-विलास. इतिहास-विकास, विश्वास, जीवन-आभास, समाज, धर्म, संस्कृति, धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की दिव्य

अवधारणाओं का उन्मीलन करती प्रथम विकास प्राप्त कृति हैं।

'वृहतकथा (बड्ढकहा)'

इस कृति में वर्णित आन्तरिक साक्ष्यो के आधार पर इस कथा काव्य का कवि गुणाढ्य है। पूर्व जन्म में यह भगवान शिव का माल्यवान नामक गण था। शाप वशात् धरती पर अवतरित हुआ। जन्म सातवाहन नृप के प्रतिष्ठित नगर जनपद प्रतिष्ठांन में हुआ। ब्राह्मण कुल पिता कीर्तिसेन और माता श्रुतार्था थी। इनकी शिक्षा-दीक्षा दक्षिणापक्ष में पूर्ण हुई। इस कृति का सर्वप्रथम उल्लेख दण्डी, सबन्धु तथा बाणभट्ट द्वारा हुआ।[१५]

८७५ ई० के कम्बोडिया में प्राप्त एक अभिलेख में गुणाढ्य भी चर्चा है।[१६] कृति के कश्मीरी वाचना में गुणाढ्य का सम्बन्ध सातवाहन नृप के राजत्वकाल से बताया गया है। यह सातवाहन नृप ७८ ई० में था। अत: गुणाढ्य की स्थिति ७८ ई० में स्वीकार्य की गयी है। सात वाहन राजवंश के युग में गुणाढ्य ने कथा-काव्य का प्रणयन किया, यह विक्रम की पहली शती रही। नृप सातवाहन साहित्य के रक्षक एवं रचनाकार दोनों थे। वे संस्कृतेतर प्राकृत, अपभ्रंश और पैशाची भाषा-साहित्य मे विशेष रुचि रखते थे। गुणाढ्य की रुचि देखकर कवि ने कृति की भाषा पैशाची रखी। लोक भाषा की प्रभावी कथाएं जो जन मानस में सहजत: गहरे पैठ चुकी थी उसे ही गुणाठ्य ने अपनी भाषा में छन्द बद्ध किया। इसमें संकलित काव्यकथाएं मध्यदेश

की जनपदीय बोली के ठेठ कविजनों के उद्गार रहे, जो कवि वाणी पर अवतरित हुयी। इन कथाओ को संकलित करने मे कवि गुणाढ्य ने निश्चित ही घोरश्रम किया होगा। इसीलिए बड्ढकहा (वृहत्कथा) को संस्कृत भाषा मे न लिखकर, कथा के मूल गायकों को ही भाषा पैशाची में प्रणीत किया। प्रसिद्धि है कि वृहत्कथा एक विशाकाय रचना थी। सम्पूर्ण रचना लगभग सात लाख श्लोकों में निबद्ध थी। सातवाहन की राजसभा में कवि द्वारा अपने शिष्य के माध्यम से भेंट रूप में प्रेषित कराने पर नृप द्वारा तिरस्कृत होने के कारण काव्य के अधिकांश भाग को लगभग छह लाख श्लोको की कथा पशुपक्षियो को पढ़कर सुनाया और शेष को अग्नि में हवन कर दिया। ज्ञात होने पर नृप, गुणाढ्य के पास पहुँचा जहाँ वह बैठकर अपनी सरसकथा के सुधा विन्दु से पशुपक्षियों को तृप्त कर रहा था। नम्र अनुरोध से द्रवित होकर गुणाढ्य ने अवशेष एक लाख श्लोकों का कथा भाग नृप को दे दिया।

वृहतकथा रूप यह संस्कृत कथा साहित्य का रत्न बना। प्रशंसित हुआ। महाकवि बाणभट्ट ने अपनी रचना हर्षचरित मे इसे शिवप्रार्वती संवाद और कामरस का आकर एवं विस्मय कौतुहल से परिपूर्ण रचना की संज्ञा से अभिहित किया।[१७]

प्राकृत भाषा की रचना कुवलय माला के रचनाकार उद्योत्तसूरि ने इस बड्ढकहा (वृहत्कथा) को सभी कथाओं की आकर, कविजन के लिए शिक्षा ग्रन्थ एवं रचनाकार का ब्रह्म कहा है।[१८] ग्यारहवीं शती के रचनाकार अपनी काव्य कृति तिलक

मंजरी की प्रस्तावना में वृहत्कथा कथा को कथा-समुद्र नामित किया है, जिसकी एक बूंद ग्रहण कर कोई भी कवि कथा-सरित् को प्रवहमान कर सकता हैं।[१९]

यह वृहत्कथा वस्तुतः तत्समय प्रचलित लोककथाओं का संग्रह है। कवि गुणाढ्य ने इसे साहित्य का रूप दे दिया। राजशेखर ने लोक कथा गायको को ठेठ भाषी कवि की संज्ञा से अभिहित किया है। कथा सुनाने वाले लोक भाषा (उस काल में बोली जाने वाली प्राकृति अथवा पैशाची प्राकृति भाषा) के सहज रसिक कवि थे। इन कथाओं को उन्होंने अपनी देशीय परम्परा, देश-देशान्तर और द्वीप-दीपान्तर से सम्प्राप्त कथाओं को निजभाषा में छन्दोवद्ध किया था। ये भाषा के ठेठ कवि प्रायः सार्थवाहों एवं श्रमिकों के सहयोगी रहे। उस समय भाषा प्राकृत या पैशाची प्राकृत ही थी। यह पैशाची भाषा तत्समय मध्य देश के जनपदों की आम भाषा रही। गुणाढ्य का कवि मन भाषा की सरसता से आकृष्ट हुआ, अतः उसी भाषा में संग्रहीत कर डाला।[२०] इसी वृहत्कथा का प्रकारान्तर से संस्कृत रूपान्तर है- यह कथा 'कथासरित्सागर'।

वृहतकथा (बड्ढकहा) पर आधारित अथवा साररूप रूपान्तरित संस्कृत के कतिपय अन्य कथा काव्यों की चर्चा भी 'कथासरित्सागर' पर विवेचन प्रस्तुत करने से पूर्व करना असंगत न होगा। वृहत्कथा का मूल तो अप्राप्त है। जो कुछ भी सातवाहन नृप के निवेदनोपरान्त कवि ने उन्हें सौंपा, जो एक लाख श्लोकों का समुच्चय माना जाता है, कांलान्तर में विद्वानों ने उसी को 'वृहत्कथा' अभिहित किया। उसे ही आधार

स्वीकार करके दो कश्मीरी कवियों - क्षेमेन्द्र एवं सोमदेव ने 'वृहत्कथामंजरी' तथा 'कथासरित्सागर' की रचना की। इन्हें कश्मीरी वाचना के नाम से साहित्य में उल्लिखित किया गया है। इस कश्मीरी वाचना से पूर्व भी 'वृहत्कथा' के आधार पर रचनाएँ हुई- नेपाली वाचना, और प्राकृत वाचना। प्रथम नेपाली वाचना है- 'वृहतकथाश्लोकसंग्रह'। इसके संग्रहकर्ता का नाम बुधस्वामी है। यह पाँचवी शती ई० की रचना है। दुर्भाग्य यह है कि इसका मूल भी वृहत्कथा की ही भाँति यह भी अधूरा ही प्राप्त है। प्राप्त कथा संग्रह का कलेवर अट्ठाइस सर्गात्मक है। इसमें कुल चार हजार पांच सौ उन्तालिस श्लोक हैं। वृहत्कथा के प्राप्त रूप में नरवाहन के विवाहों की कथायें हैं और इस कृति का भी वर्ण्य विषय नरवाहन के अट्ठाइस विवाहों में से मात्र छह विवाहों की ही कथा है। पर्याप्त सीमा तक इसका स्वरूप वृहत्कथा के मूल का स्पर्श करता है। दूसरी प्राकृत वाचना–कृति है- 'वसुदेव हिण्डी'। यह महाराष्ट्री प्राकृत भाषा मे है। इसमें नरवाहन के स्थान पर श्रीकृष्ण के विवाहों का वर्णन है। श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव ने इसमें अपने पौत्र प्रद्युम्न के उन्तीस विवाहों की कथाएँ कही हैं। यह इस कृति का प्रथम खण्ड है, रचनाकार जैन कवि संघदास मणी हैं। इस कथाकाव्य के दूसरे खण्ड के प्रणेता धर्मदास मणी हैं। इस खण्ड में वसुदेव के इकहत्तर विवाह वर्णित हैं। इस अंश को मध्यम खण्ड भी अभिहित किया जाता है। संकेततः इसका अन्तिम खण्ड भी होना चाहिए। मध्यम खण्ड में धर्मदास मणी ने कवि संघदास मणी ने जिस कथा की विस्तृति से विराम लिया था, वहीं से अपनी कथा को विस्तार दिया है।[२१]

वृहत्कथा (बड्ढकहा) की कश्मीरी वाचना मे प्रथम स्थान 'वृहत्कथामंजरी ' का है। इसके प्रणयनकर्ता कवि क्षेमेन्द्र हैं। नाम ही स्पष्टत: संकेतित करता है कि यह कृति गुणाढ्य की अमर रचनारूप अमृत रसाल बाल रसाल की मंजरिका का परागगंध मात्र है। अर्थात् यह वृहत्कथामंजरी, मूल गुणाढ्य कृति का संक्षिप्त रूप है। कवि क्षेमेन्द्र कश्मीर नृप अनन्त के आश्रित रहे। अनन्त का राज्यकाल १०३९-१०६४ ई० माना जाता है। 'वृहत्कथामंजरी का प्रणयन इसी कालावधि मे हुआ होगा। इसमें बुद्ध स्वामी के 'वृहत्कथाश्लोकसंग्रह' की अपेक्षा अधिक कथाएँ समायोजित है। वृहत्कथामंजरी एवं कथासरित्सागर में प्रबंध समता है। इसमें भी कथा-वर्णना लम्बकों में विभाजित है- कथा पीठ, कथामुख, लावाणक, नरवाहनदत्तजन्म, चतुर्दारिका, सूर्यप्रभ, मदनमञ्चुका, बेला, शशांकवती, विषमशील, मदिरावती, पद्मावती, पंचलम्बक, रत्नप्रभा, अलंकारवती, शक्तियशस्, महाभिषेक, सूरतमंजरी आदि अठारह लम्बक है। प्रबंध योजना समान है, परन्तु कथासरित्सागर और वृहत्कथामंजरी की कथा- विस्तृति मे अत्यधिक वैभिन्न है। यहॉ कथा भाग संक्षिप्त है। किन्तु शृंगार-प्रसंगों एवं विलास-क्रीडा-सम्बन्धी स्थलों के चित्रण में कवि पूरी मनोज्ञता से रमा दृष्टिगोचर होता है। क्षेमेन्द्र स्वभाव से ही बातूनी प्रवृत्ति का कवि था। उसने धार्मिक स्थलों का अनावश्यक रूप से विस्तार किया है।[२२]

कश्मीरी वाचनाओं की कृतियों वृहत्कथा मंजरी और कथासरित्सागर दोनो के लिए उपजीव्य हम कह सकते हैं। इसका पूर्णत आधार गुणाढ्य की वृहत्कथा ही है।

दोनों में से कौन-सा कवि अधिक सीमा तक मूलकथा के सन्निकट पहुँच सका है, कहना अति कठनि ही नही असंभव सा है।[२३] दोनों ही कश्मीरी वाचनाओ के अध्ययनोंपरान्त निष्कर्ष अवधारणा दृढ़ होती है कि मूलग्रन्थ की प्रकृति और कथा निहितार्थ किसमें एवं किस सीमा तक सुरक्षित रह सका, संशयग्रस्त ही है। 'कश्मीरी लेखको के सामने वृहत्कथा का हाड़-पंजर मात्र था। किन्तु वसुदेव हिण्डी और वृहत्कथा श्लोक संग्रह इन दो रूपांतरो के रचयिताओं के सामने मूल वृहत्कथा का एक अत्यन्त रस पूर्ण जीवन्त और अतीत की सामग्री से भरा हुआ स्वरूप था।

कश्मीरी रूपान्तरो की त्रुटियों के कारण अब इसकी छानबीन होना कठिन है कि बुध स्वामी में गुणाढ्य के मूलग्रन्थ की वस्तु-संघटना और उसकी प्राणवत्ता का किस हद तक उत्तराधिकार सुरक्षित है। यहाँ बुध स्वामी के विषय में अपना विश्वास बहुत अंश में दृढ़, होता है।[२४] बुध स्वामी की कृति 'वृहत्कथाश्लोकसंग्रह' कवि संघदास मणि, धर्मदास मणि द्वय की कृति 'वसुदेव हिण्डी' एवं महाकवि क्षेमेन्द्र विरचित 'वृहत्कथा मंजरी' में से कौन वृहत्कथा के मूल को सुरक्षित रख सकी है; यह विवाद का विषय है किन्तु यह अस्वीकार्य कथमपि नही कि इन रचनाकारों ने संस्कृत कथा साहित्य के विकास-क्रम में वह सुदृढ़ सोपान प्रस्तुत किया है जिस पर अवस्थित हुए बिना कथा साहित्य के अक्षयकोष के मणिरत्नों की आभा को साक्षात् करने में सफलता प्राप्त नहीं हो सकी।

इस तारतम्य मे पंचतंत्र (तंत्राख्यायिका), वेतालपंचविंशतिका, सिंहासनद्वात्रिंशतिका और शुक सप्तति का उल्लेख होना अनिवार्य है। इन रचनाओं का उपजीव्य वृहत्कथा है अथवा उससे ये अभिप्रेरित है, अथवा वृहत्कथा और इन चारों का ही स्रोत एक ही है? कुछ भी प्रकृति, कथा-निहितार्थ, परिवेश आदि की दृष्टि से कतिपय अंशो तक समान प्रतीत होती हैं। पैशाची प्राकृत मूल सेवित वृहत्कथा की रचना प्रथम ई० अथवा उससे पूर्व हुई। पंचतंत्र गुप्तकाल की रचना मानी जाती है, जिसका उल्लेख पूर्ववत् किया जा चुका है। शेष तीन का परिचय कथा-विकास-क्रम की दृष्टि से प्रस्तुत करना अपेक्षित है-

वेतालपंचविंशतिका

इस कृति में वेताल द्वारा नृप विक्रम को सुनायी गयी पच्चीस कथाएं है। यह अद्भुत, कौतूहलमयी एवं अत्यन्त रोचक है। कथा-क्रम यह है- विक्रमसेन अपने पूज्य सिद्ध पुरुष के सिद्धि-हेतु प्रारम्भ अनुष्ठान की सफलता चाहता है। तदर्थ विक्रम पराक्रम बल से सिंसपा वृक्ष से वेताल को उतार कर अपने कंधे पर रखकर ले जाता है। वेताल सशर्त चलने की स्वीकृति देता है- नृप मार्ग में मौन रहेगा। मार्ग में वेताल नृप को ऐसी कथा सुनाता है, साथ ही प्रश्न करता है, जिससे न्यायप्रिय विक्रम नृपति मौन भंग कर बैठते है। वेताल पुनः वृक्ष पर लौट जाता है। नृप पुनः लेकर चलते हैं। वेताल अन्ततः पचीसवीं कथा सुनाकर ऐसा प्रश्न करता है कि नृप

को उत्तर स्वरूप न्याय की कोई सूझ मिलती ही नहीं, मौन हो जाता है। परिणामतः नृप को वेताल को कंधे पर लादे हुए सिद्ध–साधना की भूमि श्मशान तक पहुँचने में सफलता प्राप्त हो जाती है। वेताल द्वारा सुनायी गयी पच्चीस कथाएँ नीति, न्याय, व्यवहार में अद्‌भुत एवं अनुपम है। दिव्य जीवन के तत्वों को उजागर करने वाली मंगलायतन है। ये कथाएँ वृहत्कथा से ही उद्‌गमित प्रतीत होती है। वृहत्कथा के द्वितीय कश्मीरी वाचना 'सरित्सागर' के लम्बतंरग के वेताल प्रकरण में समायोजित है।

सिंहासनद्वात्रिंशतिका

बत्तीस कथाओं के इस संकलन का अपरनाम विक्रम चरित भी है। इसके प्रणेता जैन लेखक क्षेमकर मुनि है। इसकी भी दो वाचनाएँ है- उत्तर की तथा दक्षिण की। विक्रम चरित नाम दक्षिण की वाचनिका है। इसका समय तेरहवीं शती अनुमानित हो सकती है। कथा-क्रम इस प्रकार है- बत्तीस पुत्तलिकाओं से जटिल विक्रमादित्य का प्राचीन सिंहासन राजा भोज को मिल जाता है, भोज उस सिंहासन पर बैठना चाहता है। उसके उपक्रम करते ही पुत्तलिकाएं क्रमशः एक-एक करके भोज को उस पर बैठने के अयोग्य बताते हुए नृप विक्रमादित्य के न्याय एवं पराक्रम का कथन करती हैं। अर्थ यह है कि नृप विक्रमादित्य के समान न्यायशील एवं पराक्रमशील हो तभी बैठ सकते हैं, अथवा नहीं। प्रकारान्तर से इस कृति में पुत्तलिकाओं के माध्यम से पराक्रमी विक्रमादित्य का यशगान किया गया है। इस कृति की कथाएँ भी मनोरंजक, अद्‌भुत,

कौतूहलप्रद और जीवन में उदात्त भावों के सौष्ठव का व्याख्यान है। संस्कृत कथा-साहित्य मे यही निहितार्थ समाविष्ट रहता है।

शुकसप्तति

इसके सामान्य और परिष्कृत दो संस्करण प्राप्त है। समान्य संस्करण के रचयिता अज्ञातनामा श्वेताम्बर जैन है, परिष्कृतरूप के कर्ता चिन्तामणि भट्ट है। चौदहवीं शती में सम्पन्न इसका एक फारसी अनुवाद भी कहा जाता है। जिसे हम सामान्य एवं परिष्कृत संस्करण के नाम से उल्लेख करते है। उनको संक्षिप्त और विस्तृत वाचनिका भी अभिहित करते है। विस्तृत वाचनिका के रचनाकार है चिन्तामणि भट्ट। इनका समय बारहवी शती है। इस कृति की कथा वस्तु इस प्रकार है- कुल सत्तर कथाएं है। विषय है कुलवधू को चारित्रिक शिक्षा देने के निमित्त उस समय की कुलटाओं एवं कुट्टनियों के अनेकशः छल -प्रपंचों से पूर्ण कार्य-कलापों का वर्णन है। मदन सेन नामक मूर्ख पुत्र को उसके पिता ने दो गन्धर्व रूप धारी पक्षी भेंट करता है। एक शुक और एक कौवा। मदन सेन विदेश-प्रस्थान के समय अपनी पत्नी को दोनों पक्षियों के संरक्षण मे देता है। पति-प्रवास काल में पत्नी व्यभिचारोंन्मुखी होने लगती है। तोता उसे निष्ठ वचनों द्वारा अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। फिर प्रतिदिन उसे चरित्र संकट की एक कथा सुनाता है। इस प्रकार सत्तर कथाएं सुनाता है और इसी समय उसका पति विदेश से वापस आ जाता है और पत्नी का चरित्र सुरक्षित रह जाता है। इसलिए

इसका नाम शुकसप्तति है। शुकसप्तति की कथाएं संस्कृत एवं प्राकृत के उपदेश प्रद छंदो से संवलित है, तथा रोचकता से परिपूर्ण है।

कथा साहित्य के अक्षयकोष के मणि समूह को दीप्ति प्रदान कराने वाले रत्नो में कतिपय एतिहासिक कथाकाव्य और बौद्ध कथा कृतियाँ भी है। ऐतिहासिक कथा कृतियों में हरिषेणाचार्य रचित वृहत्कथा कोष १५७ कथाओ का संकलन है। इसका रचना समय १०वीं शती है। कथाओं का केन्द्रस्थल गुजरात का वर्धमान नगर है। इसमें प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध इतिहास पुरुषों की कथाएं संस्कृत छन्दों में निबद्ध है। १३०५ ई० मे प्रणित मेरूतुंगाचार्य का प्रबंध चिन्तामणि इस क्रम की दूसरी रचना है। इसमे संकलित कथाओं का केन्द्र भी वही नगर वर्धमान है। यह रचना पद्यमय किन्तु ललित गद्य से संवलित है। इस कृति में विक्रमार्क, सातवाहन, मूलराज, मूंज, भोज, सिद्धराज, जयसिंह, कुमारपाल, वस्तुपाल, तेजपाल, धनपाल, लक्ष्मणसेन, जयचन्द्र, वाराहमिहिर, एवं भर्तृहरि आदि इतिहास पुरुषों तथा कवियो की चारित्रिक औदात्य का वर्णन है। तीसरी कृति है, 'प्रबन्धकोश'। इसका रचनाकाल १३४८ ई० और रचनाकार है राजशेखर सूरि। चौबीस प्रख्यात पुरुषो के उपाख्यान संवलित इस रचना का अपर नाम 'चतुर्विंशतिप्रबन्ध' भी है। कथाएं इतिहास एवं लोक वृतान्तों के समन्वित रूप से संघटित की गयी है। इन चौबीस चरित्रों मे चार कवि, सात राजा, और तेरह जैनधर्म के आचार्य और एक सद् गृहस्थ हैं। हर्ष, हरिहर, अमरचन्द्र तथा मदनकीर्ति, नामधेय

चार कवियों का वर्णन प्रथमवार राजशेखर सूरि ने सम्मिलित किया था। चौथी रचना है- 'विविधतीर्थकल्प'। इसका रचनाकाल १३३२ ई० एवं रचनाकार है जिन प्रभूसूरि। यह कृति राजशेखर सूरि के प्रबंधकोश से अनुप्राणित है। इसमें महनीय पुरुषों का ऐतिहासिक चरित उजागर किया गया है। इनके अतिरिक्त कतिपय बौद्ध ग्रन्थ भी है। जिन्हें इस तारतम्य की श्रृंखला में समायोजित किया जा सकता है।

संस्कृत कथा साहित्य के विकासयुग में कतिपय बौद्ध ग्रन्थों का भी उल्लेख आवश्यक है। इनमें प्रथम स्थान-'अवदान शतक' का है। अवदान का अर्थ है-महनीय कार्यो की कथा। इस कृति में सौवीर पुरुषों के महनीय कार्य वर्णित है। उनके कार्यो की महनीयता बौद्धधर्म के सिद्धान्त, उनके आचार-व्यवहार से अभिप्रेरित है। वस्तुतः इस ग्रन्थ में इन पुरुषों की वीरगाथाओं का सम्यक् आकलन किया गया है। इस कृति का उद्देश्य कदाचित नैतिकता का विवेचन रहा। इस कारण कार्यो की प्रकृति मे नैतिकभाव अतिशयता से अभिव्यक्त एवं प्रतिविम्बित दृष्टिगत होते हैं, नैतिकभावातिशयता के कारण कृति का साहित्यिक महत्व न्यून हो जाता है। दूसरी कृति है दिव्यावदान। यह कृति अवदान शतक की ही भावभूमि पर अवलम्बित एवं वर्णना उसी से अनुप्रेरित है। अवदान शतक में प्रबन्धात्मकता है किन्तु इसमें कथाएं अव्यवस्थित है। दोनों ही कृतियां शतक है। दिव्यावदान शतक का एक भाग महायान-सूत्र के नाम से अभिहित होता है। तीसरी एवं महत्वपूर्ण कृति है जातकमाला। इसके रचनाकार आर्यशूर हैं। यह जातक कथाओं का संकलन है यह

परिष्कृत संस्कृत में है। बौद्ध जातक जिनकी संख्या पांच सौ स्वीकार की जाती है, उनका पालि संग्रह 'जातक पालि' नाम से सुविख्यात है। सम्भवत: यह उसी अनुप्रेरणा पर आधारित संस्कृत संस्करण है। जातकपालि की ही परम्परा में कथांश गद्य में और निहितार्थ पद्य मे है। बोधिसत्व के पूर्वजन्म की कथाएं पालिजातक की ही शैली में ग्रन्थित है। इसका रचना काल ई०पू० ४०० माना जा सकता है। एक अन्य ग्रन्थ का भी नामोल्लेख समीचीन है- कल्पनामण्डितक अथवा सूत्रालंकार। यह कोई स्वतंत्र रचना नही कही जा सकती। यह वस्तुत: जातकों तथा अवदानों का ही गद्य-पद्य मय एक स्वतंत्र रूप से संकलित रूप है। जैन कथा ग्रन्थों की चर्चा इससे पूर्व हो चुकी है। जैन साधुओं से सम्बद्ध उपदेश परक कथाओं का एक संकलन परिशिष्ट पर्व भी है, इसके रचनाकार प्रख्यात जैनाचार्य हेमचन्द्र है। इसका रचना समय ग्यारवीं शती है। इसकी भाषा सरल संस्कृत है। इन सब ग्रन्थो का समुच्चय स्वरूप हमारा संस्कृत-कथा साहित्य विश्व वाङ्मय का प्रदीप्त प्रभाकर है। जिसकी किरणों से ज्योतित मेघा-शक्ति ने विभिन्न कवि-कथाकारों को रचनात्मक अभिप्रेरणा दी है।

कथासरित्सागर

गुणाढ्य की रचना 'वृहत्कथा' (बड्ढकहा) की प्रशस्ति में उद्गीरित, 'तिलकमंजरी' के रचनाकार धनपाल के शब्द 'सत्यंवृहत्कथाम्बोधे बिंदुमादाय संस्कृत: तेनेतर कथा कन्या: प्रतिभान्ति तदग्रत:' का अर्थरूप है यह 'कथासरित्सागर' अर्थ-

आभाषक हैं सोमदेव। गुणाढ्य की पैशाची प्राकृत-निबद्ध ग्रन्थ 'वृहत्कथा' का मूलरूप सम्भवत: ग्यारहवीं शती पर्यन्त विद्यमान रहा है। जिसें पढकर ही कवि क्षेमेन्द्र ने 'वृहत्कथा मंजरी' का प्रणयन किया। दूसरे कश्मीरी कवि सोमदेव ने इस वृहत्कथा को सारस्वरूप समग्रत: संस्कृत रूपान्तर 'कथासरित्सागर' नाम से अभिहित किया। वृहत्कथा के इस संस्कृत रूपान्तर का प्रणयन समय सन् १०६३-१०८९ ई० की कालावधि है। यह काल कश्मीर में नृप अनन्त का राज्य-काल रहा। कवि ने यह रूपान्तर उनकी रानी, त्रिगर्त राजकुमारी सूर्यमती की आज्ञा पर उनके पठनार्थ किया था। यह कृति सार-संग्रह होकर भी क्षेमेन्द्र की वृहत्कथा मंजरी से विशाल कलेवरा है। कथा प्रबंध का यह स्वरूप पार्वती द्वारा किये गये प्रश्नों के प्रदत्त शिव के उत्तर रूप में संकलित रूप है। कवि प्रत्येक लम्बकारम्भ में पार्वती के प्रणयरूप मंदराचल ने शिव के मुखरूपी समुद्र का जो मंथन किया था उससे यह कथा-रूप अमृत प्राप्त हुआ है। जो भी इसका हठात पान करते है, शिव की अनुकम्पा से विघ्नरहित, होकर सिद्धियों तथा दिव्य पद के वे अधिकार-भाजन बनते हैं-

इदं गुरुगिरीन्द्रजाप्रणयमन्दरान्दोलना-

त्पुरा किल कथामृतं हरमुखाम्बुधेरुद्गतम्।

प्रसहय सरयन्ति ये विगतविघ्नलब्धर्द्धयो

धुरं दधति वैबुधीं भुवि भवप्रसादेन ते।।

यह कथासरित्सागर मूल वृहत्कथा (बड्ढकहा) का सार, समुच्चय रुप संस्कृत रुपान्तर है। तथापि मूलग्रन्थ में समाविष्ट सभी कथाएं, इसमें समग्रत: संदर्भित है। वत्सराज उदयन और उसके पुत्र नरवाहनदत्त के नूतन विवाहों के एक-एक संदर्भ यहां भी परस्पर संयोजित है। समस्त भारत, जम्बूद्वीप और सागर पार अवस्थित मनुष्य, पशु, पक्षी, तथा उनके जीवन को प्रत्यक्ष करने वाले अवान्तर सन्दर्भ भी पूर्णत: आकलित है। अतीत काल में सत्य रहे, वर्तमान मे विस्मय बोध कराने वाले, पृथिवी, समुद्र एवं द्वीपों के देश, काल, इतिहास, भूगोल, से सम्बन्धित संदर्भ जो अद्भुत प्रतीत होते है, कथा सन्दर्भ में शृंखला बद्ध किये गये है। कथा-क्रम में हमें यहां अनेकश: कुत्सित, निन्दित, व्यहृतिसूत्र, कठोराति, कठोर, साधना-स्थल और विचित्र लोक के सुघर संदर्भ उपलब्ध होते है। अन्तिम लम्बक मालवा के सम्राट विशमशील का आख्यान तो कथाकार गुणाढ्य के समय का आख्यान है।

यह 'कथासरित्सागर' भारतीय कथा साहित्य-कोष का मणिद्युति प्रभा स्वरूप है। जिसकी दीप्ति से न केवल भारतीय वर्णनासाहित्य अपितु विश्व कथा-साहित्य में अनुपम है। इस ग्रन्थ की विशिष्टता यह है कि- यह वृहत्कथा का सार-संकलन होकर भी ग्रन्थ के विषय को समग्र को समाहित किये हुए है। साररूप होकर भी वृहत्कथा मंजरी की अपेक्षा विशाल कलेवरा है। सार-संग्रह है परन्तु मूलग्रन्थ में संदर्भित कथा यहां यथाक्रम, यथारूप, पूरे भावोद्दीपना संग समायोजित है। कथा संदर्भ कही से भी

विशृंखलित नहीं होने पाये है। कालान्तर मे संस्कृत कथा-कवियो ने अनुप्रेरणा ग्रहण कर कथा-कृतियो का प्रणयन किया- इसी का 'वेताल प्रकरण' 'वेताल पंचविशंतिका' का उपजीव्य है। अतीत का समग्र इतिहास, भूगोल, देश-काल, परिवेश, नद-नदी, पर्वत-कान्तार यहां कथा-संदर्भ में देखा जा सकता है। इस ग्रन्थ के भाषा-प्रयोग एवं कवित्व-सौष्ठव, प्रांञ्जल तथा उत्कृष्ट है। चोर, 'जुआरी' धूर्त, वेश्यागामी, हंसोड़ कपटी, ठग, लुच्चे, लफंगे, रंगीले, भिक्षु आदि की कहानियों की तह जमाने में सोमदेव को अद्‌भुत सफलता मिली है। सोमदेव का गुण इतना ही है कि वे कुछ भी कहने में संकोच का अनुभव नहीं करते। जैसे-बरसाती नदियों की मटमैली धाराओं के ऊपर चारो ओर का खर-पतवार आकर बहने लगता है, वैसे ही सोमदेव की कथाओं की शैली बुराईयों को समेटकर सामने ले आती है। मानव स्वभाव जैसा है, वैसा ही उसे दिखाना यह महान लेखक की विशेषता होती है, और सोमदेव इसमें पिछड़े हुए नही है।[२५] 'कथासरित्सागर' भारतीय मेधा और सुष्ठु कल्पना का एक ऐसा दर्पण कवि सोमदेव ने निर्मित किया जिसमें अतीत कालीन समाज का पूर्ण प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। जिसमें पाठक, प्रेमी-प्रेमिकाओं के साहस, कार्यकलाप, नृप, सामन्त, राजनगर, राजतंत्र, षडयंत्र, छल-प्रपंच, आडम्बर, तंत्र-मंत्र, जादू, टोटका, युद्ध रक्तपायी वेताल, गणिकाएँ पिशाच, यक्ष, प्रेत, पशु-पक्षी, सन्त-असन्त मदपायी, द्यूत कर्मी विट, कुट्टनी को सहज ही साक्षात करता है। अतीत हमारे सामने वर्तमान होकर समुपस्थित हो जाता है। यह कथासरित्सागर पाठक को लोल-तरंग रूप कथा-क्रम की प्रक्रिया में इस प्रकार

रसायित करती उसे कुतूहल-विस्मायित भाव में तिरोहित करके आनन्द सागर मे निमग्न करके ही विरमती है। यह ग्रन्थ वस्तुतः कथासरित्सागर नही अपितु-कथामिण जटित रत्नहार है। जिसकी दीप्ति-रेख से खचित समस्त वाङ्मय ज्योतित है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का आकलन 'सोमदेव का ग्रन्थ वसुधान-कोषों का समूह है, अर्थात् उसमें रत्नों से परिपूर्ण अनेक डिब्बे भरे हुए हैं, चाहे जहाँ से अपनी रुचि के अनुसार हम उन्हें चुन सकते है। कितना समीचीन हैं।[२६]

संदर्भ एवं पाद-टिप्पणी

१. कथासरित्सागर तथा भारतीय संस्कृति : डा० एस०एन० प्रसाद/पृष्ठ २१
It may be to discriminate them as fairy tales, Marchen, or myths or fables in the earlier stages of their development. It was, hwoever, a distinct and important step when the mere story became used for a definite purpose, and when the didactic fable became a definite mode of inculcating useful knowledge.
– History of Sanskrit Literature : Kieth/Page 242

२. एकाकी राष्ट्रनिधि का उपयोग दुस्साहसपूर्ण उपयोग।
अनौचित्य भूमि से उठो हे पणिराट्।
अनाचार, अत्याचार, यह दुर्व्यवहार,
और कलुषित विचार।
राष्ट्र-सम्पत्ति, सार्वजनीन शक्ति
व्यक्ति यदि उठा सका लाभ,
हो गया सम्भव,
निश्चित ही सर्वांगीण पराभव
प्रकट किया सरमा ने था अभिमत-
'स्व' का नही उपभोग्य
समष्टि का हित।
-त्रिपाठी अथ-अनुक्रम: डॉ० शिवशङ्कर त्रिपाठी/पृष्ठ-१०

३. संवत्सरं .... मण्डूका अवादिषु।। - ऋग्वेद ७/१०३-१

४. द्वा सुपर्णा .... अभिचाकशीति।। - ऋग्वेद १/१६४/२० अथर्व० ९/९/२०

५. तस्मै श्वाश्वेत: .... शनायाम वा इति।। - वही/१/१२/२

६. यथाकृताम् विजिता .... भषैतदुप्त इति।। - वही/१/१२/४

७. इण्डिया पास्ट : मैकडानल/पृष्ठ ११७

८. नि:संदेह पंचतंत्र मे कल्पित कथाओ का विस्तार .... नीति-शस्त्रों तथा धर्मशास्त्रो मे प्रतिपादित जीवन के उदात्त विचारो के संकलन का उद्देश्य अर्थशास्त्र का रहा है।
कथासरित्सागर तथा भारतीय संस्कृति : डॉ एस० एन० प्रसाद पृष्ठ/२२

but of the naughty cat which deceived the little mice by an appearance of virtue so that they delivered themselves into her power, and we have a *motif*

which certainly is strongly suggestive of the material whence developed the *Pancatantra.*

–History of Sunskrit Literature · Kieth/Page 242/243

९ ऐतरेय ब्राह्मण · ७-१३

१० The maxin embodying .... the tale.

-History of Sanskrit Literature : Kieth/Page

११. If was a distinctly .... Persons – Ibid/page 244.

१२. History of Indian Literature : Winter nitz/Page 301

१३. कथासरित्सागर तथा भारतीय संस्कृति : डॉ० एस० एन० प्रसाद/ पृष्ठ २९

१४. History of Indian Literature : Winternitz/Page 302

१५ भूतभाषामयी प्राहुरद्भुतार्थां वृहत्कथाम् - काव्यादर्श/१/२१
वृहत्कथा लम्बैरिव सालभंजिकानिबहै:। - वासवदत्ता

समुद्दीपित कन्दर्पा कृतगौरी प्रसाधना।
हरलीलेव नो कस्य विस्माय वृहत्कथा।। - हर्षचरित/पृष्ठ १०

१६. History of Sanskrit Literature : Kieth/Page 316

१७. हर्षचरित। श्लोक १७

१८. सकल कलागमं णिलया सिक्खि विय कइयणस्य मुहयंदा।

कमलसणो गुणड्ढो सरस्सई जस्स बड्ढ़कहा।।

१९. सत्यं वृहत्कथम्मोधे विंदुमादाय संस्कृता:।
तेनेतर कथा: कन्था: प्रतिभान्ति तदग्रत:।। -तिलकमंजरी/प्रस्तावना

२०. देश विशेष वशेन च भाषाश्रयणं दृश्यते/तदुक्तम -
गौडाद्या: संस्कृस्था: परिचितरुचय: प्राकृतेल्लाटदेश्या·
सापभ्रंश प्रयोग: सकल मरुभुवष्ढक्क भादानकाश्च।
आवन्त्या: पारियात्रा: सह दशपुरजै र्भूतभाषा भजन्ते
यो मध्येमध्यदेशं निवसति स कवि: सर्वभाषानिषण्ण:।।

-काव्यमीमांसा राजशेखर/अध्याय १०

२१. सुव्वह य किस वसुदेवेणं वाससतं परिभमंतेणं हमम्मि भरहे विज्जाहरिंवणखतिवाण-रकुलवंससभवाणं कण्णाणं सतं परिणीत, तत्यय सामावियमादियाणं रोहिणीपज्जवसाणामं एगुणतीस लमता संघदासवायएणं उवणिवद्धा। एगसत्ररिं च विल्यारभीरूणा कहामज्झे छड्डिता, ततो हं भो लोइयसिंगारकहापसंसणं अह्माणो आयरियाया से अवधारेऊणं पक्यणाणुराग्रेणं आयरियनिओएण य तेसिंह मज्झिल् ललंभआणं गंथणत्थ अब्यमुज्जजो हे तं सुणह इतो पुव्वकहाणुसारेण चेव। -वसुदेव हिण्डी, मध्यम खण्ड।

२२. मिथिक जनरल/जिल्द ५/ पृष्ठ ६ से
कथासरित्सागर तथा भारतीय संस्कृति : डॉ० एस० एन० प्रसाद/ पृष्ठ ५१/पाद-टिप्पणी

२३ कथासरित्सागर तथ्य भारतीय संस्कृति : डॉ० एस० एन० प्रसाद/ पृष्ठ ५१/ की पाद-टिप्पणी ४ (मिथिक जनरल/जिल्द ४/पृष्ठ ८५ के अनुसार कश्मीरी वाचनाओ ने सीधे गुणाढ्य की मूल वृहत्कथा से अपने स्रोत ग्रहण किया है।)

२४ वासुदेवशरण अग्रवाल : कथासरित्सागर/भूमिका/पृष्ठ १७

२५. वासुदेवशरण अग्रवाल : कथासरित्सागर/भूमिका/पृष्ठ २४-२५

२६. वासुदेवशरण अग्रवाल : कथासरित्सागर (भूमिका)/पृष्ठ २६

द्वितीय अध्याय

सोमदेव
एवं
उनके ग्रन्थ का परिचय

सोमदेव एवं उनके ग्रन्थ का परिचय

विश्वकथा धारा से उच्छरित सुधा-बूंदो द्वारा सहृदय-रसिको को रसायित एवं संतृप्त करने वाले सोमदेव कश्मीरी पण्डित राम के पुत्र, नृपति अनन्त के आश्रय में रहने वाले कवि रहे। क्षेमेन्द्र भी इसी राज्य सभा के कवि थे। जिस पैशाची मे महाकवि गुणाढ्य द्वारा निबद्ध (बड्ढकहा) वृहत्कथा का कवि क्षेमेन्द्र ने वृहत्कथा मंजरी नाम से संस्कृत में सार प्रस्तुत किया, उसी बड्ढकहा का कश्मीरी वाचना कहकर अभिहित किया जाता है। प्राचीन भारतीय राजकुलों के रनिवास विलास भूमि होते रहे है। राज सभाओं में रसवर्णी कवियों की प्रतिष्ठा थी। अमरूक शतक जैसी श्रृंगार रचनाऍं राजकुलों के अन्तःपुरों मे अत्यन्त प्रिय रही। अमरूक शतक जैसी संस्कृत रचनाओ के साथ-साथ प्राकृत आदि भाषा निबद्ध कृतियो में गाहा कोष अर्थात् गाथा सप्त शती तो राजकुमारियों और रानियों के मनोरंजनार्थ अतिशय प्रमुख साधन रहे। तात्पर्य यह है कि नृप अनन्त के राज सभा में भी श्रृंगार के रस धार वाही कवि एवं कथा कार रहे। उनका अन्तःपुर भी ऐसी रचनाओं से रसायित

होने का अभ्यस्त रहा। शृंगारपूर्ण प्रणय कथाएँ प्राय: उनके अन्तस को रसासिक्त करती थी। बड्ढकहा (वृहत्कथा) में निबद्ध विविध प्रणयाख्यान लोकविश्रुत हो चुके थे और कवि क्षेमेद्र की वृहत्कथा मंजरी के सौरभ से रनिवास सुवासित हो रहा था। कालान्तर मे कवि सोमदेव को अवसर प्राप्त हुआ, और इस प्रकार उन्होने कश्मीर राजकुल के अन्त:पुर में सरस-काम-रसाद्रेक के निमित्त अमर रचना कथासरित्सागर का प्रणयन किया कवि सोमदेव ने नृपति अनन्त की रानी सूर्यमती के आदेशानुसार 'कथासरित्सागर' की रचना की थी। यह सूर्यमती कुल्लुघाटी अर्थात त्रिगर्त नरेश की राजकुमारी थी। 'कथासरित्सागर' की रचना १०६३-१०८९ के मध्य किसी काल में हुई। इससे पूर्व कवि क्षेमेन्द्र 'वृहत्कथा मंजरी' का प्रणयन कर चुके थे। नाम से ही स्पष्ट है कि परवर्ती काल में रचित सोमदेव की कृति क्षेमेन्द्र की पूर्वकृति से विशाल है- एक कथामंजरी और दूसरी 'कथा सरित्सागर'।

'वृहत्कथा मंजरी' एवं 'कथासरित्सागर' दोनों ही कृतियों के लिए प्रेरणासूत्र कवि गुणाढ्य की कृति 'वृहत्कथा' ही है। दोनों ही कवि निज-निज मति और कल्पना-गति एवं ग्रहण-सामर्थ्यानुकूल इन्हें आत्मसात कर अपनी-अपनी कृतियों को प्रस्तुत किया। विश्वकथा धारा 'वृहत्कथा' मूलत: प्रेमाख्यानों की छोटी-बड़ी ऋजु एवं तिर्यक गति से, प्रवाहित होने वाली सरित धारों का संगम है। इन कथारूप सरिताओं का उद्गम भारतेतर द्वीप-उपद्वीप भी हैं, और इन आख्यानों में तद्देशीय भूगोल,

इतिहास, समाज, संस्कृति तथा धर्म को भी संदर्भित करती प्रतीत होती है, इसमे अतीतकालीन भूप्रदेशों, वहाँ की बस्तियों, निवासियों, का अद्भुत आख्यान-समाहित है। तात्पर्य यह कि विश्व की कथा धारा अनायास ही इसमें संगमित हो उठी है। मूल केन्द्र विन्दु भारत भूखण्ड है और यहीं का आख्यान, विभिन्न आख्यानों के आगमन का उत्प्रेरक है। और वह उत्प्रेरक तत्व है, वत्सदेशीय लोक रंजक सम्राट् वत्सराज उदयन, फिर उसके पुत्र नरवाहन दत्त के विविध विवाहों के आख्यान जिनमे से क्रमशः आख्यान निकलते तथा समागमित होते गये है। इन्ही कौतुकोत्पादक आख्यानों की भूमि वृहत्कथा ही सोमदेव के कथा सरितसागर का उपजीव्य है। कवि सोमदेव ने स्वयं घोषित किया है कि 'समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाली सरस्वती की प्रणामकर 'वृहत्कथा के सार का संग्रह कर रहा हूँ [१]। वृहत्कथा को गुणाढ्य ने सात लाख श्लोकों में निबद्ध किया था। छह लाख श्लोक की कथाएँ कवि ने पशु पक्षियों को सुनाकर अग्नि मे हवन कर दिया, और शेष एक लाख श्लोकों की एक कथा जो अवशिष्ट रही, उसे नृप सातवाहन को सौप दिया। यही एक लक्षीय श्लोक निबद्ध आख्यान ही कवि क्षेमेन्द्र और उसके पश्चातकवि सोमदेव के लिए उपजीव्य बना[२]। इसी का साररूप है यह 'कथासरित्सागर' जैसा एक विशाल आख्यान ग्रन्थ। 'कथासरित्सागर' जैसा कि कवि सोमदेव ने स्वयं उसको वृहत्कथा का सार संग्रह स्वीकारा है। वह स्वयं कवि (गुणाढ्य अथवा सोमदेव) की कल्पित

कथा नहीं, अपितु पूरी की पूरी कथा शिव द्वारा प्रणयानुराग के वशीभूत होकर पार्वती को सुनायी गयी है। और वृहत्कथा के अनुसार गुणाढ्य शिव का माल्यवान् नाम का गण रह। शापवश वह मनुष्य योनि में अवतरित हुआ। 'वृहत्कथा' का निबन्धन उसी ने किया। स्पष्ट है कि यह कथा मानवीय नही दैवीय रचना है। आख्यान के पात्रो में इसीलिए मनुष्य से इतर विद्याधर तथा गन्धर्व भी है। नरवाहन दत्त जिसके विवाह के रुचिकर आख्यान गुच्छ इस ग्रन्थ मे संगुम्फित है वह भी तो 'विद्याधर' का अवतार रहा। उसी विद्याधर चक्रवर्ती नरवाहनदत्त को केन्द्र बनाकर नारी विषयक, रागानुराग-रससिक्त शतशः आख्यान गुणाढ्य ने निबद्ध किया। उसी का संस्कृत रूपान्तर है- यह सोमदेव कृत 'कथासरित्सागर'। सत्यतः कथासरित्सागर शिवपार्वती के पावन प्रणायाख्यान के ही विविध भावभूमि का विस्तार है, जिसमें कही सृष्टि का शिव, कही अशिव तो कही, शिव-अशिव की उभयपक्षीय भावधारा और इसके अतिरिक्त विस्तृत मानवीय संस्कृति, का विस्तार भी समाहित है। कथासरित्सागर के प्रत्येक लम्बक का प्रारम्भ एतद्विषयक कथा से ही होता है। नगेन्द्र नन्दिनी पार्वती के प्रबल प्रणय-मन्दराचल के मन्थन द्वारा शिव जी के मुखरुपी समुद्र से निकले हुए इस कथारूपी अमृत का जो लोग आदर और आग्रहपूर्वक पान करते है, वे शिव जी की कृपा से निर्विघ्न सिद्धियों को प्राप्त कर, दिव्य पद लाभ करते हैं।[३] (लम्बक २/तरंग १/५७-६५) के अनुसार शिव का माल्यवान् नामक

गण ही गुणाढ्य के रूप में अवतरित हुआ था। उसी ने इस विश्व कथा धारा को प्रथमत: प्रवहमान होने का उपक्रम किया। सोमदेव के कथासरित्सागर के लम्बकारम्भ में 'इंद गुरु------भव प्रसादेन तेन' से निश्चयत: वर्तमान मे उपलब्ध यह वृहत्कथा का ही रूपान्तर मान्य हैं।

पैशाची भी कभी साहित्य-भाषा रही, इसका प्रमाण है 'वृहत्कथा'। आज पैशाची भाषा का कोई भी साहित्य प्राप्त नहीं है। 'मृच्छकटिकम्' में एक छन्द अवश्य उपलब्ध है। हॉ यह निर्विवाद है कि ग्यारहवीं शती तक गुणाढ्य द्वारा पैशाची भाषा निबद्ध कथा कृति अस्तित्व में थी, तभी तो ये दो कश्मीरी वाचनाएँ आज संस्कृत में न केवल प्राप्त हैं अपितु लोकप्रिय भी हुई। वृहत्कथा मंजरी एवं कथासरित्सागर के रचयिताओ के समक्ष निश्चय ही मूल वृहत्कथा रही होगी। कवि सोमदेव ने स्पष्ट लिखा है- 'मूल वृहत्कथा में जो कुछ है उसी का इस ग्रन्थ में संग्रह किया गया है, मूलग्रन्थ से इसमें तनिक भी अन्तर नहीं है। हॉ विस्तृत कथाओं को संक्षिप्त मात्र किया गया है, और भाषा का भेद भी है। मैंने यथासम्भव मूल ग्रन्थ की औचित्य परम्परा की रक्षा की है और कुछ नवीन काव्याशों की योजना करते हुए भी मूलकथा के रस का विघात नहीं होने दिया है। मुझसे यह ग्रन्थ निर्माण का प्रणयन पाण्डित्य–प्रसिद्धि के लोभ में नहीं किया गया है, किन्तु अनेक लम्बी कथाओं के जाल को स्मरण रखते हुए सुविधानुसार किया गया है।[४] जैसा कि पूर्व में कहा

गया है कि इस वृहत्कथा-पटल के अक्षरांकन का आधार प्रणयानुरागासक्त शंकर द्वारा पार्वती को सुनाया गया आख्यान है। यह अधिक विस्तार से दिया गया रहा होगा। कवि गुणाढ्य ने विभिन्न सार्थवाहों द्वारा कही गयी निज-निज देशीय जनो एवं उनकी भाषा में निबद्ध, उन-उन देशों के लोक-कवि द्वारा भाषा निबद्ध लोक कथाओं को संयोजित कर संकलनात्मक रूप में, वृहत्कथा की रचना की थी। कथा की उत्पत्ति के विषय में सोमदेव ने लिखा है-

"एक समय शिव ने पार्वती से सात विद्याधरों की विस्मित करने वाली कथाओं का वर्णन किया। यद्यपि शिव पार्वती का यह संवाद एकान्त स्थान मे चलता रहा, तथापि उनके अनुचर पुष्पदन्त ने उस कथात्मक संवाद को सुन लिया तथा अपनी पत्नी जया को उन समस्त श्रुत कथाओ को सुना दिया। जया ने उन सभी कथाओ को अपनी सखियों को सुना दिया। सयोगत: यह सब पार्वती को ज्ञात हो गया, वह रुष्ट हो गयी और पुष्पदन्त को मृत्युलोक में जन्म ग्रहण करने का शाप दे दिया। ऐसी स्थिति में पुष्पदन्त के भाई माल्यवान ने उनकी ओर से विनम्रता पूर्वक क्षमायाचना की। परिणाम विपरीत रहा और वही शाप माल्यवान को भी मृत्युलोक में जन्म लेने का प्राप्त हुआ। पार्वती की सखी जया पुष्पदन्त की पत्नी थी, जो उन्हें बहुत प्रिय थी। पुष्प दत्त के शापित होने की घटना से वह शोकाभिभूत हो

गयी । सखी को शोक संतृप्तावस्था में देखकर पार्वती जी करूणार्द्र हो उठीं। उन्होने परिचारिका जया के हित में अपने शाप का परिहार कर दिया। तद्नुसार विध्यपर्वत पर पुष्पदन्त की भेट काणभूति नामक एक पिशाच से होगी। पुष्पदन्त को उस मनुष्य योनि में भी पूर्वजन्म की सभी स्मृतियाँ यथावत बनी रहेंगी। अपनी स्मृति के बल पर वह सभी कथाएँ काणभूति को सुनायेगा, तो उसे शाप मुक्ति प्राप्त हो जायेगी। इसी प्रकार माल्यवान् भी काणभूति से इन सभी कथाओं की सुनेगा एवं कथाओं का लोक में प्रचार कर देगा तो वह पुन: स्वर्ग वापस आ जायेगा[५]। इस विधानानुसार वह शापग्रस्त पुष्पदन्त वररुचि-कात्यायन रूप में कौशाम्बी में अवतरित हुआ, यह नन्दवंश के अन्तिम नृप योगानन्द का मंत्री बना। वह महान् वैयाकरण भी था। अन्तत: वह वनवासी हो गया एवं विंध्यपर्वत वासिनी विंध्यवासिनी देवी की यात्रा की अवधि मे उसकी भेंट काणभूति से हो गयी। तत्क्षण उसे पूर्व स्मृति साक्षात् हुई फिर उसने काणभूति को उन वृहत्कथाओं को सुनाया। पश्चात् वह शापमुक्त होकर स्वर्ग गया। उसका भाई माल्यवान् प्रतिष्ठानपुरी में गुणाढ्य के रूप में जन्मा। वह वहाँ के नृपति सातवाहन का मंत्री बना। गुणदेव एवं नन्दिदेव उसके दो शिष्य थे, जिनके साथ वह काणभूति के पास गया। काणभूति से उसे पिशाच भाषा में सात कथाएँ प्राप्त हुई। उसने उन सात कथाओं को अपने रक्त से एक-एक लाख अर्थात् कुल सात लाख श्लोकों में निबद्ध कर डाला।[६]

इस प्रकार वृहत्कथा का एक स्वरूप निर्मित हुआ। किन्तु वृहत्कथा के स्वरूप निर्माण मे वस्तुतः अन्य स्रोत भी थे। उन स्रोतो का सही निरूपण हमे संस्कृत साहित्य-रचना का इतिहास में प्राप्त होता है- 'काव्य के लक्षण ग्रन्थो मे निरूपित-कथा परिभाषा से, विलक्षण यह अद्भुत कथा ग्रन्थ हैं। कवि गुणाढ्य ने इन कथाओ को अनेक स्रोतो से ग्रहण किया है। वस्तुतः इस ग्रन्थ में लोक जीवन में प्रचलित प्रेम-कथा जिनमें राजकुमारों-राजकुमारियों के तथा अन्य के प्रेमाख्यान है। गन्धर्वो, वेतालों, पिशाचों की अद्भुत कथाओं, द्वीप-द्वीपान्तर में प्रचलित राजलोक-अप्सरा लोक की कथाएँ, जन्तुओं और विविध पशु-पक्षियो के आख्यान एवं भूगोल के अद्भुत कथा-पटल विद्यमान हैं। दूसरे शब्दो में कथा के ऊंचे गिरि-शिखर, लम्बे कुसुमित कान्तार, तरंगवती नदियॉ, हरी-भरी धरती, धरती पर ही तारा लोक-जैसा अद्भुत दृश्य गुणाढ्य ने वृहत्कथा की रचना में रच डाला है। इसमें कवि ने वर्तमान, तथा अतीत से अतीत की पृथ्वी के रहस्यपूर्ण सामाजिक इतिहास को भी छिपा दिया है। वह युग भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग था। देश में दिन रात व्यापारियो के सार्थवाह चलते रहते थे तथा देश के बाहर समुद्री मार्ग से विशाल नौकाऍं द्वीपान्तरों में जाती थी। इनमें काम करने वाले सार्थवाहों को ले जाने वाले और समुद्र की लहरों पर नौकाओं को खेने वाले शत-सहस्र कर्मचारी अपनी थकान को तथा रात्रि के सूनसान निस्तब्ध लम्बे मार्ग को तब भूल जाते थे जब वे आनन्द-

कौतूहल पूर्ण इन कथाओं को सुनते थे। कथा सुनाने वाले लोकभाषा (प्राकृत या पैशाची प्राकृत) के सहज रसिक कवि होते थे। उन्होने इन कथाओं को अपने देश की आती हुई परम्परा से तथा द्वीपान्तरों से टूट कर अपनी भाषा में छन्दोवद्ध किया। श्रमिको के साथ चलने वाले ये लोक कवि उनकी भाषा के ही ठेठ कवि थे। ये भाषाएँ प्राकृत और पैशाची प्राकृत आदि थी। पैशाची बोलने वाले मध्यदेश के जनपद के होते थे। देश वशेन च भाषाश्रयणं दृश्यते। तदुक्तम्- गौडाद्या: संस्कृस्था: परिचित रुचय: प्राकृते लाटदेश्या:, सापभ्रंश प्रयोग: सकल मरु भुवष्ढक्क भादानक्काश्च। आवन्त्या: पारियात्रा: सह सदपुरजैर्भूत भाषा भजन्ते। यो मध्ये मध्यदेशं निवसति स कवि: सर्वभाषा निषण्ण:।। - काव्यमीमांसा/राजशेखर/अध्याय १०/ महान रचनाकार गुणाढ्य इन कथाओं की ओर आकृष्ट हुआ और श्रमजीवियो के कथा गायक इन ठेठ कवियों से उसने सारी कथाओं को एकत्रित करने का विपुल श्रम किया और उसने अपनी वृहत्कथा (बड्ढकहा) संस्कृत मे न लिखकर इन कथा गायकों की भाषा (पैशाची भाषा) में निबद्ध किया।[७] स्निग्ध मिथकीय आस्तरण पर कथा-कलिका का प्रस्फुरण-प्रत्येक लम्बकारम्भं इदं गुरु गिरीन्द्रजा----भवप्रसादेन ते'' इस शिव स्तुति से समन्वित होना, कवि के शिवोपासक होने की प्रतीति मात्र मानना ही उचित है। लोकास्था की प्रतिस्थापना के अतिरिक्त, कथाक्रम में कौतूहल विशेष की ओर भी संकेत है। कवि सोमदेव शिवाराधक पहले है, कवि कथाकार बाद में कश्मीरी

शैव पण्डित, सोमदेवभट्ट, क्षेमेन्द्र के कुछ बाद हुए थे।[८]

वृहत्कथा के कलेवर निर्माण विषयक विद्वानों के विवेचन में कथा-स्रोत संयोजन मे इस छन्द की चर्चा कदाचित प्राप्त नहीं होती। वस्तुस्थिति यही है कि समस्त कथाएँ उदयन एवं उसके पुत्र नरवाहन दत्त के विवाह संदर्भो के साथ संगठित होती है। इस अनुक्रम प्रक्रिया मे ही अनेकशः अवान्तर कथा सन्दर्भ, संयोजित होते चलते है। ये अवान्तर संदर्भ जम्बूद्वीप और समस्त भारत, समुद्रपार के द्वीपों के निवासियों मनुष्य, पशु,पक्षी, उनके जीवन क्रम भी साथ-साथ साक्षात होते परिलक्षित हैं। धरती, सागर एवं द्वीपों की स्थिति, परिवेश जीवन के ऐसे संदर्भ भी उजागर होते है, जो विस्मिति भाव उत्पन्न करते है। पढ़ने से अतीत काल में उनके होने की संभावना भी प्रतीत होती है। लगता है कदाचित यह सत्य रहा होगा। यत्र तत्र, विभिन्न लोकों, के दृश्य भी अनायास संदर्भित हो जाते हैं। यह कहना भी असंगत न होगा कि 'कथासरित्सागर' के रचनाकार का वर्तमान भी है। अतीत एवं पुराणकाल तीनों, आख्यान- संदर्भो में प्रतीति, का संकेत मिलता है। पाटलिपुत्र नगर की स्थापना का सम्यक् इतिहास इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है। कुमार पुत्रक ने रानी पाटली और अपने नाम पर इस नगर को बसाया था[९]। हमारे कथन का सीधा अर्थ यह है कि कथा सरित्सागर-जम्बूद्वीप सहित वैश्विक ही नहीं अपितु ब्रह्माण्ड अवेति क्रम, अनुक्रम, भूगोल, इतिहास के सूत्रों में गुम्फित सुर, असुर, गन्धर्व, वेताल, मनुष्य

की प्रवृत्ति, वृत्ति एवं आचरण की शिवोन्मुखी लड़ियां ज्योतिस्मती हो रही है। पाश्चात्य समालोचक और टानी द्वारा अनूदित 'कथासरित्सागर' के भूमिका लेखक पेजर का आकलन सर्वथा समीचीन है-

इस कथासरित्सागर में विविध प्रकार की कथाएं संकलित है- द्युलोक और पृथ्वी के निर्माण से सम्बन्धित ऋग्वेद कालीन कथाएं भी प्राप्त होती है। तथैव रक्तपात की प्रवृत्ति वाले वेताल कथाएं, सुन्दर काव्य निबद्ध प्रेमकथाएं, देवता, मनुष्य और असुरो की युद्ध कथाएं भी संग्रहीत हैं। यह भी स्मरणीय है कि भारतवर्ष कथा साहित्य का वास्तविक उद्‌गम स्थल है। इस संदर्भ में भारतीय कथा-साहित्य ईरान तथा अरब से उत्कृष्ट है। भारत के इतिहास की कथा भी तो तद्‌रुप एक कथा ही है। इसका अतिशयोक्तिपूर्ण रूप इन आख्यानों से कम रुचिकर नही है। इन आख्यानों का संकलक कवि सोमदेव विलक्षण प्रतिभावान् व्यक्ति रहा। स्पष्ट रोचक और आकर्षक रीति से कथा, कथायित, करने की अद्‌भुत क्षमता उसमें परिलक्षित होती है। कथा विषय की व्यापकता और चातुर्यपूर्ण उक्तियाँ अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। दूसरी ओर जैसा कि प्राय: विशेष रूप से भारतीय कथाओं में प्राप्त होता है, वहाँ एक विशिष्टता यह भी है कि नव-नवाति कथाएं, पूर्ववर्ती कथाओं अथवा उनके संदर्भो के गर्भ में समाहित है। वह सभी कथाएँ वर्णना की गति में क्रमश: अनुक्रमित उपस्थित दृष्टिगत होती है। ऐसी स्थिति में पाठक कथाओं

के इस जाल से मुक्ति हेतु सहायक सूत्र के अन्वेषणार्थ उत्सुक हो उठता है।[१०] दूसरे शब्दों में यदि हम कहें कि जैसे कथा सिन्धु से उच्छरित तरंगों के समूहाच्छन्न तट पर स्थित कोई मौक्तिका भिलाषी, सीप-वाही तंरग की प्रतिक्षा मे अनुकूल पवनान्दोलित ज्वार का अभिज्ञान कर रहा हो। अथवा जैसे निविडकान्तार का पथी तर्वादि के मध्य सुखवाही छाया की भूमि ढूढ़ रहा हो।

कथासरित्सागर में कथाकार कवि ने प्रथम लम्बक/प्रथम तंरग/ श्लोक ३ मे वृहत्कथायाः सारस्य समूह रचनाम्यह्य' को विस्तार देते हुए प्रशस्ति में पुनः स्पष्ट किया है कि 'भगवान् शंकर के पूजन-हवन-कर्म तथा नाना प्रकार के दान किया में संकल्पबद्ध एवं तत्पर रहने वाली एवं शास्त्रान्तर्गत नित्य और विहित कर्मो के सम्पादनार्थ सतत सलंग्नता वश परिश्रान्त राज्ञी, 'सूर्यमती' के क्षणिक मनोरञ्जनार्थ श्रेष्ठ ब्राह्मणों के पुण्य गण-संयुक्त श्री राम के पुत्र श्री सोमदेव भट्ट ने विविध कथा रूप-अमृत से परिपूर्ण, वृहत्कथा के सार का संग्रह किया है जो सहृदय सज्जन समूह के हृदय-सागर निमित्त पूर्ण चन्द्रमा के सदृश है। विस्तृत तरंगों के विलासों से पूर्ण यह कथासरित्सागर जिसे निर्मलमति सोमदेव भट्ट ने प्रणीत किया, सज्जन-जन-मानस के लिए आनन्द-भूमि सम है।[११] 'नाना कथा भूतमस्य' से स्पष्ट संकेत है कि रचनाकार ने इस कृति में विविध कथाओं को समाहित किया है। विविध अर्थात जैसे विभिन्न प्रकृति, प्रवृत्ति, वृत्ति, चरित-कार्य-कलाप, देश-देशान्तर-जन-जीवन,

इतिहास, भूगोल, धर्म-समाज संस्कृति, नद, नदी, पर्वत, कान्तार, परिवेश भेष आदि को व्याख्यायित करने वाले कथा गुच्छ, संयोजित किये गये है। इस प्रकार 'कथासरित्सागर' में वृहत्तर भारतीय परिवेश अक्षर विन्यस्त है, जहाँ भारतीय अतीत ग्यारहवीं शती के वर्तमान संग संश्लिष्ट होकर, जनमानस को संपृक्त करता संदर्भित हो उठता है। यही कारण है कि कथाकार ने समस्त ग्रन्थ को लम्बकों एवं तरंगों मे विभाजित किया हैं। इस प्रकार के विभाजन मे भी रचयिता ने एक विशिष्ट कल्पना दृष्टि का परिचय दिया है। 'लम्बक' अर्थात् 'कथाविश्राम भूमि' एवं तरंग अर्थात गतिमान एवं कथाधार में संगम करने वाली अवान्तर कथा रूप, विभिन्न स्रोत प्रथम लम्बक/प्रथम/तंरग। मंगलाचरणोपरान्त प्रस्तावनान्तर्गत परिचय देते हुए लिखा गया है- प्रथम लम्बक का नाम कथापीठ, उसके अनन्तर दूसरे का नाम कथामुख लम्बक, और तीसरे का नाम लावानक लम्बक है। इसके पश्चात् नरवाहन दत्त नामक चौथा लम्बक है। चतुर्दारिका नामक पाचवाँ लम्बक है। तथा मदन मंजुका नामक छठा। तत्पश्चात् रत्नप्रभा नामक सातवां लम्बक और सूर्यप्रभा नामक आठवां है। तदन्तर नंवा अलंकारवती लम्बक, दसवाँ लम्बक शक्तियशा एवं तदोपरान्त ग्यारहवां बेला नामक लम्बक है। पश्चात् बारहवां शशांक वती लम्बक, तेरहवां मदिरावती लम्बक चौदहवां लम्बक महाभिषेकवती नामक लम्बक है। पन्द्रहवाँ लम्बक का नाम पंच है। तत्पश्चात् सोलहवां लम्बक सूरतमंजरी, सतरहवां पद्मावती लम्बक एवं अठारहवें लम्बक

का नाम विषमशील है।[१२] सर्वाधिक विस्तृत छत्तीस तरंगों से समन्वित बारहवां लम्बक है और सर्वाधिक संक्षिप्त है, (तरंग नाम की दृष्टि से) तेरहवां लम्बक, मात्र एक तरंग, कुल दो सौ उन्नीस श्लोकात्मक। प्रथम लम्बक मे आठ, द्वितीय में छः तृतीय में छः, चतुर्थ में तीन, पंचम में तीन, षष्ठ में आठ, सप्तम, में नौ, अष्टम मे सात, नवम् में छः, दशम् दस, एकादश मे एक, द्वादश में छत्तीस, त्रयोदश मे एक, चर्तुदश में चार, पंचदश में दो, षोडश में तीन, सप्तदश में छः एवं अष्टादश मे पांच तरंगे है। प्राय: तरंगे अवान्तर कथा का बोध कराती है। प्रत्येक कथा परस्पर इस रूप में संश्लिष्ट है कि मूल कथा बिन्दु का निर्णय दूभर हो जाता है। तरंग की भी मुख्यकथा को विस्तार देने वाली उस कथा-विषय विवेचक प्रकृति-प्रवृत्ति पोषित अवान्तर कथाएँ इस त्वरिता से संगमित हो उठती है कि परस्पर पुष्पमाल के सदृश गुम्फित प्रतीत होती है। कौन सी कथा किस क्रम पर रखी जाय यह विनिश्चय उसी प्रकार बुद्धि-व्यायाम सुलभ है जैसे गुम्फित पुष्पकाल में प्रथमत: गुँथे सुमन की पहिचान करना। कृति की ख्याति कथाकृति के रूप में है; जबकि समग्र ग्रन्थ श्लोक निबद्ध है। कवि सोमदेव भट्ट ने वृहत्कथा के संस्कृत रूपान्तर को 'कथासरित्सागर' नाम से अभिहित किया है।

वस्तुत: कवि वे न केवल नाम परिवर्तन ही किया है, अपितु कथाओ के क्रम-अनुक्रम को भी, मूलगत औचित्य का निर्वाह करते हुए, रसात्मकता की संस्थिति

स्थिति-निमित्त, तथा कथाओ का संघटन स्वतंत्र रूप से किया है। यह तो साधिकार कहना सहज नही है कि कवि सोमदेव अपनी इस परिवर्तन प्रक्रिया मे कथा, कथ्य कथित एवं कथ्यात्मकता, अथवा कथा रुप को, किस सीमा तक अक्षुष्ण रख सके है। किन्तु निर्विवादत: यह कहा जा सकता है कि उन्होने कथाओ को शैलीगत सौन्दर्यात्मकता प्रदान की है- 'सोमदेव ने सरल और अकृत्रिम कहते हुए आकर्षक और सुन्दर रूप मे ऐसी कथाओ की वृहत्संख्या को प्रस्तुत किया है जो सर्वथा विभिन्न रूपो मे हृदयावर्जक, आनन्दकर, कथानक, अथवा प्रेम सम्बन्धी, जल और थल के अद्‌भुत दृश्यो के प्रति हमारे मन मे, अनुराग उत्पन्न करने के निमित्त आकर्षक अथवा वाल्यकाल की परिचित कथाओ का सादृश्य उपस्थित करने वाले, रूपो में हमारे लिए अति ही रुचिकर है। क्षेमेन्द्र मे कही अत्यधिक संक्षेप और कही अस्पष्टता के कारण, कथाओ का सारा आकर्षण एवं उनकी रोचकता ही नष्ट हो जाती है[१३]। इतना ही नहीं पाश्चात्य संस्कृतेतिहास के विज्ञान लेखक ने कथा संघटन परआधिकारिक और सूक्ष्म आकलन भी प्रस्तुत किया हैं-

'कथासरित्सागर' में मूलग्रन्थ के कथाक्रम में परिवर्तन किया गया हैं और इस परिवर्तन का अभिप्राय कथा रस को अक्षुष्ण रखना हैं। पहले पांच लम्बकों में कोई परिवर्तन नहीं हैं। शेष लम्बकों मे सोमदेव पर काव्य-प्रभाव की रक्षा करने का अभिलाष प्रधान रहा। इसी कारण सोमदेव को पंच और महाभिषेक नामक लम्बकों

के मध्य की दीवार को समाप्त करने के लिए विवश किया। उनके ग्रन्थ में इन लम्बको का संक्रमण दोष पूर्ण नही है। पंच नामक लम्बक की समाप्ति राजकुमार के निर्णय,- उसे एक भावी सम्राट के राज्याभिषेक हेतु आवश्यक रत्नो को उपलब्ध करना है, के साथ होती है। यह प्रस्ताव आगे के लम्बक में गतिशील होता है। आकस्मिक ढंग से ग्रहण करती गतिशीलता को सोमदेव, किञ्चिदपि नियंत्रित नहीं कर सकें। किन्तु इसी कारण रत्नप्रभा, अलंकारवती एवं शक्तियशश् नामक तीनों लम्बकों को सोमदेव यथास्थान संयोजित करने में सफल हुए। इसी कारण प्रारम्भिक काव्य-भाग, अत्यधिक गम्भीर न हो, इस दृष्टि से पूर्णरूप से आमूल परिवर्तन की आवश्यकता कवि को स्पष्टतः परिलक्षित हुई। राजकुमार से सम्बंधित और उसके सम्राट होने से पूर्व के वृतान्तों को समाधान-निमित्त आधार बनाया गया है- पंच लम्बक को प्रथम स्थान दिया गया, नायक से असम्बद्ध तथा उसे सुनायी गयी, कथाओं से सम्बन्ध रखने वाले, पद्मावती एवं विषमशील, लम्बको को ग्रन्थ के प्रारम्भिक विषय से पृथक-रखा गया है। यद्यपि उसे परिशिष्ट रूप भी संयोजित होना उचित कहा जा सकता है। पंच नामक लम्बक से पूर्व वाली कथा वस्तु को कलापूर्ण ढंग से क्रमित किया गया है, यद्यपि उसमें प्रमुखतया प्रांसगिक उपकथाओं से सम्बद्ध लम्बकों को, नायक के आकस्मिक होकर भी, महत्वशाली कार्य-सम्पादन करने वाले, लम्बकों के बीच-बीच में समागमित करने का प्रयास किया है। प्रारम्भिक कथा सूत्र
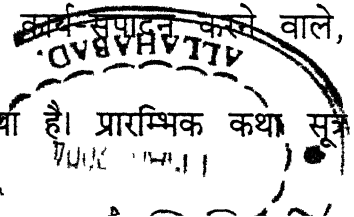
से सम्बन्धित पांचवे लम्बक के उपरान्त मदनमंचुका नामक महत्वपूर्ण लम्वक रखा गया है। तदोपरान्त रत्नप्रभा नामक सांतवा लम्बक है। नवे लम्बक अलंकारवती से पहले क्रमित 'सूर्यप्रभा' नामक लम्बक वस्तुतः उपकथाओ से सम्बद्ध है। आकस्मिक कथाओ से सम्बद्ध दसवां शक्तियशस् नामक लम्बक सहजतया अलंकारवती लम्बक के पश्चात् अनुक्रमित हुआ। तत्पश्चात् बेला, शशांकवती, मदिरावती एवं सर्वथा महत्वशाली पंच और महाभिषेक नामक दसवां, ग्यारहवां, बारहवां, तेरहवां, चौदहवां, तथा पन्द्रहवां लम्बक क्रमित किये गये है। तदोपरान्त सूरतमंजरी पद्मावती तथा विषमशील-सोलह और अठारहवां लम्बक, क्रमित किये गये । एक लम्बक के वास्तविक विषय में एक परिवर्तन आवश्यक था। क्षेमेन्द्र मे तथा सम्भवतः मूलग्रन्थ में भी बेला का सम्बध केवल प्रारम्भिक कथाओ से ही नहीं था, उसके अन्त में मदनमंचुका के तिरोहित होने का आवश्यक अंश समाविष्ट था। उसके आधार पर हम अगले लम्बकों में सूचित राजा के शोक को समझ सकते है। परन्तु इस प्रकार का वर्णन रत्नप्रभा, अलंकार वती तथा शक्तियशस् इन लम्बकों के सम्बन्ध में सोमदेव की योजना, से मेल नहीं खाता था, इसी कारण उक्त आवश्यक अंश को पृथक कर देना पड़ा, तो भी सोमदेव के लिए अपने क्रम मे पंच के पहले लम्बकों में, मदनमंुका के पूर्व ही तिरोहित हो जाने के लिए, यत्र-तत्र चिन्हो को हटा देना सम्भव नही था।[१४]

उफनते सिन्धु की क्रमशः उठती तरंगो के सदृश एक में अन्य आख्यान सहज ही उभरते रहते है। पाठक उनके आनन्दातिरेक मे जो निमग्न हुआ तो तृप्ति की सीमा का परिज्ञान तक वह नही करना चाहता, उसमे डूबता ही जाता है। आख्यानो को अनुक्रमित कर, शृखंलायित रूप देने मे कवि सोमदेव भट्ट अति विलक्षण है। सोमदेव का गुण इतना ही है कि वे कुछ भी कहने मे खुटक का अनुभव नही करते। जैसे बरसाती नदियो की मटमैली धाराओ के ऊपर चारो ओर का खर-पतवार आकर बहने लगता है, वैसे ही सोमदेव की कथाओ की शैली बुराइयो को समेटकर, अच्छाइयो को सामने ले आती है। मानव स्वभाव जैसा है, वैसा ही उसे दिखाना किसी भी महान लेखक की विशेषता कही जा सकती है। सोमदेव इसमे पिछड़े हुए नही है। सोमदेव की अनेक कहानियॉ मन पर एक बार छप जाने के बाद फिर भुलायें नहीं भुलायी जा सकती। कहानी के विस्तार और संक्षेप की कला में, सोमदेव सिद्धहस्त थे। वे उतने ही परिमित शब्दों का प्रयोग करते हैं, जितने से पाठकों की रुचि पर विघात न पड़े और कहानी का रस भी अच्छी तरह अनुभव में आ सके। जब ग्यारहवीं शती में समासबहुल शैली का बोलबाला था, उस समय सोमदेव ने जिस शैली का प्रयोग किया, उसे देखकर आश्चर्य होता है। उन्होंने मानों बिना समासों के सरल वाक्यो का धड़ल्ले से निर्माण किया हैं [१५]। मूर्खो एवं धूर्तो के आख्यान की विषयवस्तु को बोध कराने के लिए

कवि ने सर्वथा सहज पदावली एवं सरल शब्दो का प्रयोग अति निपुणता के साथ किया है।

एक आख्यान- किसी मूर्ख गंवार ने भूमि खोदते-खोदते उसमें बहुत से आभूषण पाये जिन्हे चोरों ने रात में राजभवन से चुरा कर वहॉ गाड़ दिया था। उसे पाते ही उसने अपनी स्त्री को वही ले जाकर सजाना प्रारम्भ किया। कमर की करधनी को उसने स्त्री के सिर पर बाधा और हार को कमर में। पैरों की पायजेब हाथो मे पहनायी। हाथो के कड़े उसके कानो मे लटका दिये। यह देखकर हंसते हुए लोगो ने चारो ओर कोलाहल किया। राजा ने यह जानकर उसे पकड़वा लिया और उससे आभूषण ले लिये। अन्त मे उसे 'महामूर्ख' समझकर मुक्त कर दिया[१६]। यह आख्यान न केवल हास्य उत्पन्न करने वाला, अपितु शिक्षाप्रद भी है। परिहास जनक इस कारण कि गंवार ने आनन्दातिरेक वश उतावली मे आभूषणो को अनुपयुक्त अंगो पर धारण कराया। शिक्षाप्रद इसलिए कि निर्मल अनजान व्यक्ति कभी-कभी घोर संकट में भी अनभिज्ञ ही रहकर मुक्त हो जाता है। साथ ही यहभी कि 'सम्पत्ति प्राप्त होने पर संयम नही तोड़ना चाहिए।' सोमदेव की भाषा तो नितान्त सहज अकृत्रिम प्रवाहमयी है ही, साथ ही उनके कथापात्र भी सर्वथा सहज मानवीय सहज प्रकृति-वृत्ति सनाथ है, कवि ने कुत्रापि उनके स्वभाव कार्य कलाप, चिन्तन, अनुचिन्तन में कवि कल्पना का समावेश नहीं होने दिया है। कथा-परिवेश अथवा

काल जहाँ कही भी अंकित हो गये है, वह कथा वस्तुगत सापेक्षवश ही कथाकार-बुद्धिकी अपेक्षागत कथमपि नही। पर सोमदेव सहृदय, संवेदनशील कवि के रूप अवश्य प्रतीत होते है। ऐसे स्थानो की वर्णना मे तो वह अद्वितीय है।

रस एव अलंकारों के दर्शन, कथावस्तु गत पात्र चरितांकन और घटना सापेक्ष अनायास ही समाविष्ट हो गये है। रस निष्पत्ति भले ही कम हो किन्तु रसाभास की स्थितियाँ प्राय सर्वत: परिलक्षित होती है। प्रमुखत: हास-परिहासपरक रस एवं शृंगार रस की स्थितियाँ दृष्टिगत होती है। काम रसोद्रेक की सृष्टि ही वस्तुत: ग्रन्थ रचना का प्रयोजन है, क्योंकि महारानी सूर्यमती की अभिलाषा संपूर्ति हेतु कवि ने ग्रन्थ का प्रणयन उनके एकाकीपन, रसायित भावयोजना, एवं मनरंजनार्थ किया था। इसी कारण आख्यानों मे रागानुराग भाव ही गुम्फित है। वत्सराज उदयन एवं उनके पुत्र नरवाहन दत्त से सम्बद्ध प्रणय कथाओं से संदर्भित जितनी भी कथाएं प्रधान आख्यान संगमित होती हैं, उनकी कथा वस्तु कथा विशेष मे भावों को अधिक उदीप्त तथा प्रकट करने का ही कार्य करती है। वर्णना पटु कवि सोमदेव घटना क्रम-सन्निविष्ट परिवेश को पहिचान घटित एवं घटिति की रसमय सृष्टि करने मे कथमपि नही चूकते, ऐसी स्थितियाँ सहज ऋतुगत-वर्णना समाविष्ट हो गयी है। एक स्थल-

श्रावस्ती मे एक गांव का स्वामी एक राजपूत रहता था। नाम था शूरसेन। वह नृप का सेवक था। पूर्ण स्वामिभक्त। नृपादेश पर वह सेना मे जाने के लिए

उद्यत हुआ। पत्नी सुषेणा मालव की थी, उसे अत्यन्त प्रिय। इस समाचार से वह दु:खी मन से उसको रोकना चाहा। शूरसेन ने प्रेमपूर्वक उससे कहा हे कोमलांगी। क्या तुम समझती हो, नृप के आदेश पर न जाना उचित है? मै राजपूत हूँ, पराधीन होकर काम करने वाला राजा का सेवक हूँ। अश्रूपूर्ण नेत्रो से उसकी प्रिया ने तब कहा 'यदि आप का जाना अनिवार्य ही है तो किसी प्रकार मै सहन करूगी, आग्रह है कि आप वसन्तऋतु का एक भी दिन वहाँ व्यतीत न करे। शूरसेन ने वचन दिया- 'प्रिये! मै यह निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि मै नौकरी छोड़कर (यदि परिस्थिति आयी) तो भी चैत्र की पहिली तिथि को यहाँ आ जाऊंगा। संयोगत: सुषेणा का पति शूरसेन राजपूत वसन्त काल में वापस न आ सका।पत्नी प्रतिक्षारत रही। सुषेणा पति पर चित्त लगाये। 'हाय यह मेरी मृत्यु का समय (बसन्त) तो आ गया। परन्तु वे नहीं आये। जो दूसरों की सेवा में लगा हो वह अपने लोगो से क्या स्नेह करेगा? तभी कामदेव रूपी दावानल में जलते हुए से उसके प्राण निकल गये। शूरसेन किसी प्रकार अवकाश प्राप्त कर श्रेष्ठ ऊंट पर सवार होकर दुर्गम मार्ग लांघता हुआ पहुंचा तो देखा कि श्रृंङ्गार किये हुए उसकी प्रिया मरी पड़ी है, 'जैसे खिले' फूलों से पूर्ण लता को तूफान ने उखाड़ फेंका हों। वह व्याकुल हो गया और उसे गोद में उठाकर प्रलाप करने लगा, तभी उसके प्राण क्षण भर में निकल गये। कुल देवी ने दोनों को जीवित कर दिया।[१७]

इस आख्यान में कथावस्तु सापेक्ष बसन्त ऋतु की भी वर्णना सुन्दर है 'बसन्तोत्सव का दिन आ गया। केलि करते हुए कोकिल, कामदेव के आह्वान-मंत्र की भांति कुहू-कुहू करने लगी। फूलों की गंध से मत्त भ्रमरो का गुंजार सुनाई पडने लगा, मानो कामदेव के धनुष चढ़ाने का शब्द हो[१८]। बसन्त ऋतु से आनन्दित प्रकृति के सुन्दर वर्णन अन्यत्र भी है। 'दक्षिण से आने वाला कोमल मलय-पवन स्पर्श द्वारा आनन्ददायक है। दशो दिशाएँ स्वच्छ है पग-पग पुष्पाच्छन्न वन-कान्तार मह महा रहे है, कोकिल वृन्द के स्वर मधु रस घोल रहे है। इस बसन्त ऋतु मे कौन वस्तु सुखकरी नही होती? केवल प्रियजन का वियोग ही इस बसन्त काल मे असहनीय बन जाता है। कवि काव्य रस की सृष्टि करने मे प्रवीण है, उसे अवसरानुकूल नद-नदी, पर्वत-कान्तार-वृक्ष, पवन एवं ऋतु सम्पदा परिपूर्ण प्रकृति दर्शन कराने मे सफलता प्राप्त हुई है। नृपकनकवर्ण के प्रकृति विहार-व्याज से शरत्काल का मनोरम रूप अंकित किया है- एक समय जब प्रकृति मे कुछ उष्मता रहती है, हाथी मदोन्मत्त हो उठते है, राजहंसो के परिवार अपनी प्रसन्नता से प्रजाजनों को आनन्दित करते रहते है, ऐसे अपने गुणों के समान गुणवाले शरतकाल में विहार करने के लिए चित्र महल मे गया, जो कमल के पराग से सुगन्धित और शीतलवायु से रमणीय हो रहा था।[१९]

कुशल काव्य रचनाकार सोमदेव ने अपनी काव्योन्मेषशालिनी भावयित्री एवं

कारयित्री उभयप्रतिभासंयोगात् पाठको के लिए काव्य रस-समन्वित कथागत वस्तु, घटना, परिवेशोद्भूत आनन्द सृष्टि कर दी है। कवि कथासरित्सगार मे वस्तुवर्णना, दृश्य वर्णना एवं रूप वर्णना के साथ-साथ शृङ्गार वर्णना के विप्रलम्भपक्षीयवर्णन को समुपस्थित करने मे विचक्षण है। उसे नारी सौन्दर्य की सृष्टि करने मे सम्यक् अभिरुचि है। ऐसे अंकनो मे अलंकारो का सन्निवेश भी दर्शनीय है। रणभूमि, रणभूमि मे गजाश्व, सैनिकों का उत्साह, संग्राम में निहत सैनिकों के रक्त प्रवाह आदि को नदी-प्रवाह संग उपस्थित किया है। नीचे भूमि पर काटे गये हाथी घोड़ो के, वीरो के रक्त की नदियां बह चली । वीरों के शरीर रूपी ग्राह उस नदी मे बह रहे थे। नाचते, कूदते तथा रक्त की नदी में तैरते और चिल्लाते हुए शूरो-वीरों पर टूटते हुए सियारों और भूत-प्रेतो के लिए वह युद्ध अत्यन्त उत्सव और आनन्द का कारण बन गया था[२०]। इसी प्रकार का दृश्य उस रणोत्सव के दर्शक-समूह का वर्णन अत्यन्त ही मनोरम है 'दर्शको के कारण आकाश जैसे मेघाच्छन्न हो गया है। शस्त्रों की खन-खनाहट से भीषण और महान कोलाहल, दोनो ओर के सैन्य दल में व्याप्त हो गया। सारी दिशाओ में आकाश बादलो के समान बाणो के जाल से छा गये। दोनो ओर से चलते हुए वाणो के परस्पर टकराने से अग्नि रूप विद्युत दीप्तिमान होने लगी[२१]। उससे भी विलक्षण रणक्षेत्र का वर्णन जहाँ उपमा, उत्प्रेक्षा की सन्निविष्ट से सनाथ उत्कृष्ट कवि कल्पना संदर्शित है- सैनिको के चलने

से उत्थित रज-राशि मेघ सदृश फैल गयी। शस्त्रास्त्र विद्युत प्रभा के समान दीप्त होने लगे। समर भूमि मे कटे सैनिको का रक्त पानी के समान बरसने लगा। इस प्रकार वह समर वर्षाकालीन दुर्दिन सदृश प्रतीत होने लगा। ऐसा परिलक्षित होता था, मांनो रण के रूप मे उन्होने अनेकशः प्राणियो के मारे जाने वाले भूत महायज्ञ आयोजित कर दिया गया हो। जो शोणित रूप आसव से परिपूर्ण हो, जहाँ बलि के रूप में शत्रुओं के मुण्ड दृष्टिगत होते है।[२२]

एक अनोखा चित्रण दृष्टव्य है- सहसा स्तम्भ का मध्य भाग कटता है, और उसमे से एक देव निस्सृत होता है- भयावह स्वरूप 'शरीर इतना विशाल था कि सम्पूर्ण गगन मण्डल ही उससे व्याप्त ही गया, सूर्यविम्ब आछन्न हो गया। देव का वर्णस्वरूप अंजन जैसा कसा'' नेत्र प्रभा विद्युत-सदृश चंचल तथा दीप्ति मान। दंत पक्तियो की आभा ऐसी प्रतीत होती थी मानो बलाका समूह पंक्तिबद्ध उड़ रहा हों। उसे देखकर-प्रलयकालीन गरजन करते मेघ का आभास होता था।[२३] इस अंकन को पढ़ने मात्र से एक भयानक स्वरूप नेत्रों के समक्ष साक्षात् हो उठता है।

नृपति वत्सराज के युद्धाभियान का वर्णन कवि अप्रस्तुत प्रशंसा के माध्यम से तथा शरत्काल का अंकन एवं सैनिक दल, गजाश्वारोहियों का साक्षात् चित्र

उपस्थित किया है। इस वर्णन में उपमा आदि अलंकार भी अवतरित हो उठते हैं- 'उत्थित छत्रालंकृत विशाल गजपीठ पर आरुढ़ नृपति ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे पुष्पित वक्ष-पर्वत-शिखर पर मदोन्मत सिंह विराजमान हो गया हो। साफल्य दूतिकासदृश अवतरित, जलाशयो को शोषित कर, नदियों को सुखाकर मार्गो को सुखद एवं सुगम बनाती हुई, शरद ऋतु मे राजा को अत्यधिक उत्साह का अनुभव हुआ। विविध शब्द पूर्ण कोलाहल उत्पन्न करती हुई सेनाओ से भूतल व्याप्त हो गया। ऐसे वातावरण मे विजयाभियान-हेतु अग्रसर नृप ने अकाल मे वर्षा ऋतु का भ्रम उत्पन्न कर दिया। उसकी सेना के कलकल तथा भीषण शब्दो की प्रतिध्वनियो द्वारा मानो दिशाएँ उसके आगमन की सूचना देने लगी।[२४] स्वर्ण सज्जित, स्वर्णमान आभा से प्रदीप्त उसकी सेना के घोड़े ऐसे प्रतीत होते थे मानो नीराजन-विधि से प्रसन्न अग्नि का अनुगमन कर रहे है। दोनों क़ानों के निकट लम्बायमान् लटकते चामरो से शोभित और दीप्तिमान मस्तक पर तिलकायित सिन्दूर के कारण लाल मद-जल बहाते हुए उसके हाथी, मार्ग पर चलते हुए ऐसे सुन्दर मालूम पड़ते थे, मानो- राजा के भय से भयभीत पार्वती ने शरत्कालीन मेघखण्डो से मण्डित एवं धातु रसो के झरने बहाते हुए अपने पुत्र की सेना की सहायता के लिए भेजे हों। वह राजा अपने सामने फैलते हुए दूसरे के तेज को सहन नहीं कर सकता। इसीलिए मानों सेना से उड़ी हुई धूल ने, सूर्य के तेज को आन्छन्न कर लिया।[२५]

कवि सोमदेव की वर्णना शैली सहज, प्रकृत, यथावत, चमत्कृत, काल्पनिक तथा अलौकिक विविध रूपा है। स्वाभाविक चित्रण प्रमुख रूप से प्राप्त होते है। नृप वत्सराज के मृगया-वर्णन मे आखेटक एवॅ आखेट पशु की स्वाभाविक क्रिया-कलापो तथा तदनुकूल परिवेश-निर्मित कथन मे अनुपम सफलता प्राप्त है। विलास-क्रीड़ा के मध्य कभी-कभी नृपति व्याघ्रो के साथ हरे पत्तो का-सा वेष धारण किये हुए एवं धनुष लिए हुए मृगवनों का भी भ्रमण करता था। अर्थ यह है कि मृगया अवसर पर नृप पूर्णत: आखेटक रहता है न कि नृप। इस क्रीड़ा में कीचड़ में सने हुए सूकर-समूह को वाणों से वेध देता है। उसके पीछा करने पर इधर-उधर रक्षार्थ भागते हुए कृष्णसार मृग ऐसे मालूम होते थे, मानो पूर्वकाल मे विजय की हुई दिशाएं उस पर कटाक्षपात कर रही हो। वनमहिषो के वध के कारण उनके रक्त से रंजित वन प्रान्तर ऐसा मालूम होता था, जैसे बन कमलिनी नृप की सेवा हेतु उपस्थित हो गयी हो।[२६]

नगरी उज्जयिनी का वर्णन भी अत्यन्त मनोरम एवं परिष्कृत हैं। 'नगरी महाकाल की वास-स्थली है'। मानो शिव की सेवा के लिए आये हुए कैलाश-शिखरों के समान उतुंग धवल भवन सुशोभित है। सागर सदृश गंभीर उस नगरी की विस्तृति चक्रवर्ती रूप जल से पूर्ण रहता है। चक्रवर्ती सम्राट से सनाथ रहता है। सेना रूपी शतश: सरिताएं इसमे सदा प्रवहमान रहती है। अपने पक्ष वाले महीधरों

के लिए वह आश्रय भूमि है। इस नगरी मे विक्रमसिह नाम का यथार्थ नाम धारण करने वाला नृपति राज्य करता था। उसके सम्मुख कही भी शत्रु रुपी मृग नही थे। यह वर्णन रूपालंङ्कार की सृष्टि करता है- नगरी महासमुद्र है। चक्रवर्ती सम्राट सिन्धु मे उठने वाले चक्रवात, समुद्र मे संगम करने वाली सरिताएं, यहाॅ शतशः सैन्यदल है। पक्षधारी मेरू, मैनाक आदि पर्वत रूप चक्रवर्ती सम्राट के पक्षधर भूपति (महीधर) इसमे निवास करते है। अविजित नितान्त संरक्षित नगरी। यहाॅ कभी युद्धोत्सव आयोजन का अवसर उपस्थित नहीं हुआ, क्योकि शत्रुओं का सर्वथा अभाव था।[२७] मृगया-भूमि का कितना यथार्थ और अलंकारिक वर्णन मनोरम है -

कवि सोमदेव ने मृगया को क्रीड़ारूप सुख देने वाली, सुन्दरलता कहा है। वह मृगया भूमि को बड़े-बड़े हाथियों के कुम्भस्थलों को विदीर्ण करने वाले, निहत सिहों के नखों से गिरे हुए मोतियो से ऐसी मालूम हो रही थी, मानो उसमें बीज-वपन किया गया हो। व्याघ्रों के विदीर्ण खुरों से अंकुरित सी प्रतीत होती थी। निहत हरिणों के शरीर से प्रस्रवित रक्त से रक्तवर्णी पल्लवो से युक्त प्रतीत हो रही थी। वाण द्वारा विधे गंये सूकर-समूह के गुच्छो से परिपूर्ण शरभवृन्द के पतित शरीर से फलवती परिलक्षित हो रही थी। उस भूमि से भंयकर एवं सन-सन स्वर में ध्वनित वाणछूट रहे थे। इस प्रकार वह मृगया भूमि विलक्षण रूप मे शोभा धारण कर रही थी।[२८] एक विवाहोत्सव अवसर परकौशाम्बी नगर की शोभा कितनी मोहक

है- विभिन्न एवं दूरस्थ देशों से आगत गणिकाओं तथा नृत्यांगनाओं, बन्दीजन एवं चारणो के गीतो एवं स्तुतियो से उस नगरी के समस्त वातावरण मे संगीत मुखरित हो रहा था। नगर की स्त्रियो द्वारा सजायी एवं संवारी गयी अलङ्कृत वायु से आन्दोलित पताकाओ से विभूषित गज-समूह से पूर्ण नगरी नर्तनशीला रमणी के सदृश प्रतीत हो रही थी।[२९] ऐसे अनेकश: वस्तु वर्णनो से यह ग्रन्थ आनन्दरस की सृष्टि एवं कवि की सौन्दर्य दृष्टि का परिचय देता है।

'कथासरित्सागर' कथाग्रन्थ होते हुए भी प्रकारान्तर से काव्य-प्रबन्ध की छटा विखेरता प्रतीत होता है। नायक उत्तम कुलोद्भूत चक्रवर्ती सम्राट है। उसकी उदात्त जीवन गाथा का निबन्धन। ग्रन्थ में नद-नदी, वन, पर्वत, ऋतुगत नैसर्गिक चित्रण, नायक का मृगया वन विहार एवं लास-विलास विषयक कथन कवि ने अत्यन्त मनोज्ञतापूर्ण रूप मे उपस्थित किया है। यह ग्रन्थ रसालंकारो से भी वंचित नहीं है। श्रृंगार एवं वीररसो की छटा-नरवाहन दत्त की विलास क्रियाओं तथा विविध युद्ध वर्णनों मे उत्कृष्ट भाव भूमि पर अवतरित हुआ है। नरवाहन दत्त का विभिन्न सुन्दरियों के संग वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने का क्रम ही कृति को शृङ्गार रसान्विति की भूमि बना देता है। एक चित्रण दृष्टव्य है-'नरवाहन दत्त उस दिन मन्दारगुच्छ सदृश स्तनों वाली, शिरीष-सुमन के समान सुकोमल, विकसित कमल के समान मुखवाली, और प्रफुल्ल कुमुदो के समान नेत्रो वाली, दुपहरिया के फूलों की भांति लाल होंठो

वाली, मानो जगद्विजय के लिए निर्मित कामदेव के एक वाण के समान उस मदन मंचुका के साथ उद्यान मे विहार करता रहा[३०]। रूप सौन्दर्य के अंकन मे भी कवि सोमदेव ने अत्यन्त मनोज्ञ शैली प्रयुक्त की है। नारी के अंग-प्रत्यंगों के वर्णन मे अन्य संस्कृत कवियों की ही भाँति उन्होंने प्रकृति के विविध उपादानों का ही सहारा लिया है- चमकती हुयी विद्याधारियों के मध्य नरवाहन दत्त ने एक कन्या को देखा-मानों तारक मण्डल के मध्य दीप्त नेत्रहारिणी चन्द्रमा दृष्टिगत हो गया हो । उसका मुखकमल प्रफुल्लित था। उसके चंचल नेत्र भ्रमर के तुल्य घूम रहे थे। हंस सदृश लीलायुक्त गति में गमन करती हुयी, उसके शरीर से कमल की सी सुगंधि निकल रही थी। तंरगायित विदुल्लता से उसका कटि सुशोभित था। प्रतीत होता था कि काम रूपी तडाग की वह मूर्तिमती अधिदेवता हो। कामदेव की संजीवनी विद्या सदृश तथा उत्कण्ठित चन्द्रमा की मूर्ति-सदृश थी।[३१] एक अन्य स्थल जहां नारी सौन्दर्य की अलौकिक सृष्टि को चिन्हित किया गया है- 'नृप कनकवर्ण स्नानार्थ अपनी सभी रानियो के संग गोदावरी नदी मे प्रवेश कर जल विहार करने लगा। रानियो के सौन्दर्य का अंकन-मुखो से नदी के कमलो को, नेत्रो से कुमुदो को, कुचो से चक्रवाक युगल को, अपने-अपने नितम्बों से गोदावरी के तटो को, नृप की रानियों ने विजित कर लिया था। अत: गोदावरी नदी क्रोध करके अपनी तरंग रुप वक्र भृकुटियों द्वारा देखने लगी।[३२] कवि ने यहॉ नारी अंगों

के साथ नदी के कमल, कुमद, और उसमे विचरणशील चक्रवाक-युग्म को मुख, नेत्र, कुच से उपमित कर तथा नितम्ब को सरित तट कहकर नारी को नदी-सदृश प्रवहमान रसधारवाही कहकर गोदावरी को इर्ष्यालु बना दिया। यह कवि की अनूठी कल्पना है- तरंग को ईष्याभिभूत, क्रोधान्विता नारी की भृकुटि उपमित कर डाला इस वर्णन से स्पष्ट संकेत है कि कवि सोमदेव नारी प्रकृति का मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करने मे निपुण रहे।

'कथासरित्सागर' समग्रत: शृंगार रस प्रधान प्रेमरसधारवाही, कामरसोद्रेक से परिपूर्ण, सहृदय-रसिक जनो में रागानुरागोद्भावक काव्य है। शृंगार के वियोग पक्ष का भी चित्रण कवि ने यथावसर उपस्थित किया है- एक रागासक्त परन्तु प्रणयी से विंमुख प्रिया की दशा क्या हो जाती है, इसका दृश्यांकन इस प्रकार द्रष्टव्य है- शरीर पर चन्दन का लेप किये एवं मृणाल का हार धारण किये हुए, कमल पत्र रचित शय्या पर पड़ी करवटें बदलती, सखियॉ कदली-पत्रो का व्यजन डुलाती हुई, पाण्डुवर्णा, कृशतन, कामज्वर से संपीडित वियोगिनी, सखियो से कह रही है- चन्दन लेप, कदली पत्रों का व्यजन शीतल होकर भी मुझे दुग्ध कर रहे है, सभी उपचार व्यर्थ है, यह सब बन्द करो। ऐसे असफल प्रयासो से कथमपि लाभ नहीं।[३३]

कवि ने न केवल नारी सौन्दर्य ही, अपितु पुरुष रूप को भी वर्णित किया है। एक राजकुमारी अपनी सखी से एक सुन्दर युवक के रूप का कथन कर रही

है 'उसकी सुन्दरता हिमयुक्त चन्द्रमा के समान थी। उसे देखकर कामना उदीप्त हो जाती थी, वह आलोक की क्रीड़ा से युक्त उपवनों वाले बसन्त ऋतु के समान था। उसके मुखचन्द्र की शोभा-सुधा पान करने वाले मेरे नेत्र उसके मुखचन्द्र का चकोर हो रही थी। इसी मध्य आकाश में उमड़े हुए काले मेध के सदृश एक विशाल हाथी चिग्घाड़ता हुआ वहां आया। उसने अपना बन्धन तोड़ दिया था, उसके मस्तक से मदजल बह रहा था।[३४] वियोगिनी के समान वियोगी की अवस्था इस प्रकार दृष्टव्य है- निश्चय ही विरह से व्याकुल मेरे लिए चारो ओर सन्ताप की सृष्टि करते हुए कामदेव ने इस बर्फ मे अंगार डालदिया है। चन्दन मे भूसे की आग भर दी है, एवं पंखे की हवा मे दावानल भर दिया है। अत: हे मित्र। इस प्रकार अपने को व्यर्थ कष्ट क्यो दे रहे हो?[३५]

इस वर्णनाक्रम मे एक अद्भुत बसन्त की छटा का संकेत इस प्रकार है- 'समय प्राप्त कर पुष्पित कुन्दलता की दन्तपंक्ति वाले एवं कमलिनी-वन को मथने वाले हेमन्त रूपी गज को निहत करके बसन्त रूपी सिंह आ पहुंचा, सुमन मंजरियॉ उसके सर के सदृश तथा रसाल के बौर उसके नख के समान जान पड़ती थी और वह बन में क्रीड़ा रत था।[३६] बसन्त को सिंहमय कल्पित करना कवि की अदभुत उद्भावना है। ऐसे ही मनोरम वर्णन एवं कल्पनाओं से गद्गद हृदय पाश्चात्य विद्वान आलोचक विण्टरनित्स ने ठीक ही टिप्पणी किया है - 'यह निर्विवाद रूप

से कहा जा सकता है कि सोमदेव नि:सदेह भारतीय कवियो मे प्रथम श्रेणी के कवि है।[३७]

कथासरित्सागर वस्तुत: कथार्णव है, विशाल गम्भीर, तरंगायित परन्तु स्वच्छ-अच्छ रेणुवर्ण जलरूप-सदाचार, छल-छद्म, कपट-वञ्चकता-भाव-भावित-कथारुप सरित-सराशि संगयित होकर, उच्छरित नीति-उपदेश रूप-सुधा बिन्दु से तृप्ति रसार्द्रकर अतीत-संग वर्तमान को संयोजित कर अविच्छिन्नता प्रदान करता है। जिससे जीवन का सत्य, शिवम्से संश्लिष्ट होकर दिव्यभावो से उद्बोधित करने का क्रमानुष्ठान संदर्शित होता है। कथा-क्रम-अनुक्रम एवं विविधता से वस्तुत: महासागर की लघु उत्ताल तरंगों का परिदृश्य सहजत: समुपस्थित होता है। तरंग तरंगित तथा तरंगायित क्रमानुरूप, कथा कथित एवं कथायित क्रमानुक्रमित नैरन्तर्य विशृंखलित नही होता। गुम्फित पुष्पमाला- के सदृश अविशृंखलित रहता है। जिस प्रकार प्रत्येक सुमन गुँथे हुए एक समान प्रतीत होते है उसीप्रकार कथासरित्सागर में सभी आख्यान अनुक्रमित है।

जिस प्रकार हार से एक फूल के पृथक होने पर सभी विखर जाते है, वैसे ही कथासरित्सागर मे एक कथा को पृथक करने पर सभी कथाएँ विशृंखलित हो जाती है, और कथारस का प्रभाव अवरुद्ध हो जाता है। एक आख्यान का अन्त पश्चात् की अनुक्रमित कथा का सूत्र एवं दूसरा आख्यान पूर्ववर्ती का पोषक

बनकर उपस्थित होता है-

सम्प्राप्तमपि नेच्छन्ति स्वर्गभोगं महाशयाः।
तथा च श्रूयतामत्र कथां वःकथयाम्यहम्।।

-लम्बक ८ तरंग२/८२

(और वह उदाराशय प्राप्त हो रहे स्वर्ग-सुख की भी अभिलाषा नही रखते। मै इससे सम्बन्धित एक कथा कहता हूँ सुनो-)। इसी रूप मे काव्य की समस्त कथाएँ परस्पर अनुक्रमित है। जीवन के मुधर-मधुर कटु-कषायित सभी वृत्ति-प्रवृत्तियों की उपस्थापिका एवं उद्‌वासिका कथाएं यहां उपलब्ध होती है। उदाहरण स्वरूप कर्णाट देश के एक-वीर ने युद्ध में शौर्यपूर्वक अपने स्वामी नृप को प्रसन्न किया। राजा ने भी प्रसन्नता पूर्वक उससे अभिलषित माँगने के लिए आग्रह किया। उस योद्धा ने स्वामी नृप से उसका नापित वरदान स्वरूप मांग लिया। प्रत्येक व्यक्ति अपने चित्त के प्रमाण से अपना भला या बुरा चाहता है। अब कुछ न मांगने वाले मूर्ख की कथा सुनो-मार्ग पर चलते हुए एक मूर्ख से गाड़ी पर बैठे व्यक्ति ने कहा- 'मेरी गाड़ी को कुछ बराबर कर दो। उस मूर्ख ने कहा यदि मै बराबर कर दूँगा तो तुम मुझे क्या दोगे? गाड़ी वाले ने कहा 'कुछ नहीं दूंगा' तब उस मूर्ख ने मुझे कुछ न दो', इस प्रकार कहकर उसकी गाड़ी को ठीक कर दिया और 'कुछ न दो मांगा' गाड़ीवान हंसने लगा। 'स्वामिन् मूर्खजन इस प्रकार सदा हंसी के पात्र, तिरस्कृत, निन्दनीय और विपत्तियों के शिकार रहते हैं और बुद्धिमान समाज में सम्मान पाते

है इस प्रकार गोमुख के मुख से कही गयी कथाओ के विनोद को मंत्रियो के साथ सुनकर युवराज नरवाहन दत्त रात मे समस्त संसार को विश्राम देने वाली नीद में सो गया।[३८]

कवि सोमदेव ने कथासरित्सागर मे जहॉ कथा, कथक और कथित के उद्गम स्थलो का मनोरम चित्र उपस्थित किया है, वही वह निज जन्म भूमि कश्मीर का भी वर्णन किया है- हिमालय के दक्षिण की ओर कश्मीर नाम का देश है, जिसे मानो ब्रह्मा ने मनुष्यो के लिए स्वर्ग का कौतूहल दूर करने के लिए बनाया है। जहां कैलाश एवं श्वेतद्वीप के सुखद निवास को तज शिव एवं विष्णु शतश. स्थानो पर स्वयमेव, प्रार्दभूत होकर निवसते है। जो देश वितस्ता नदी के जल से पवित्र और शूर, विद्वान जनो से परिपूर्ण रहता है। वह सर्वदा छल-कपट आदि दोषो से अजेय है अर्थात जहॉ पर छल-कपट आदि का नाम नही रहता तथा जिसे बलवान शत्रु भी विजित नहीं कर सकते।[३९] समाज नीति, धर्मनीति एवं राजनीति का सुन्दर संदर्भ छोटे-छोटे आख्यानो के माध्यम से विवेचित है। नरवाहनदत्त ने वार्तालापावधि में अपने अमात्यों से राजनीति विषयक चर्चा की है। अमात्यों ने कहा 'आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर जनपद, देश आदि की उन्नति करने वाले मंत्रियों तथा अथर्ववेद के ज्ञाता निपुण और तपस्वी पुरोहित की नियुक्ति करनी चाहिए। तदनन्तर राजा को भय की स्थिति में, क्रोधातुर स्थिति में, लोभ एवं धर्म में, उन लोगों

की कपट परीक्षा करके तथा उनके हृदय को पूर्णतः समझकर फिर यथायोग्य कार्य निमित्त नियुक्त करें। उनके कथनो की भी परीक्षा इसी रीति से करनी चाहिए कि वे आन्तरिक स्नेह वश कह रहे है या स्वार्थभाव से यह परीक्षा भी पारस्परिक वार्तालाप के माध्यम से करणीय है। सत्य कथन पर हर्ष के भाव होने चाहिए, और असत्य के लिए दण्ड दिया जाना चाहिए। अलग-अलग गुप्तचरो के माध्यम से उनकी चारित्रिक पवित्रता का भी ज्ञान करना चाहिए। इस प्रकार आंखे खोलकर सावधान रहकर, राज्य के कार्यो को देखते हुए विरोधी समूह को उन्मूलित कर, कोष तथा सैन्य बल का संग्रह करके अपनी जड़ सुदृढ़ कर लेनी चाहिए। तत्पश्चात् प्रभाव, उत्साह एवं मंत्र-इन तीनो शक्तियों से युक्त होकर अपने तथा शत्रु के बलाबल को भलीभांति समझकर अन्य देशो पर विजय प्राप्ति की अभिलाषा संजोनी चाहिए।[४०]

उल्लेखनीय तथ्य यह है कि 'कथासरित्सागर' में भारतीय अतीत का भौगोलिक इतिहास एवं ऐतिहासिक भूगोल के संक्षिप्त, परन्तु सम्यक् अंकन प्राप्त होता है। समुद्रशूर वैश्य की कथानुसार वह पूर्व में कटाहद्वीप, कर्पूर द्वीप तथा स्वर्ण द्वीप पर्यन्त यात्रा समाप्त कर लौटते हुए नारिकेल द्वीप पहुँचता है। और वहाँ से चलकर सिंहलद्वीप में उतरता है। राजेन्द्र चोल के अभिलेखों में निक्कवर का उल्लेख हैं जो कदाचित वर्तमान (निकोवार) है और सुमात्रा ही कदाचित सुवर्ण द्वीप है। जहाँ

पर शैलेन्द्रवंशीय नृपति शासन करते थे। सम्भवत: तीन शती-पर्यन्त काल तक वहाँ उनका विजयशाली साम्राज्य स्थापित था। कवि सोमदेव शैलेन्द्रवंशीय नृपतियो के यश से अवश्यमेव अवगत थे। परिणामत: उन्होंने स्वर्णद्वीप का उल्लेख किया।[४१] एक अन्य आख्यान में चन्द्रस्वामी नामक सार्थवाह अपने खोये हुए पुत्रों को ढूढ़ता हुआ सर्वप्रथम वह नारीकेल द्वीप जाता है वहाँ से जहाज पर बैठकर समुद्र मार्ग द्वारा कटाहद्वीप, पुन: कर्पूरद्वीप तक की यात्रा करता है। पुन: कर्पूरद्वीप से स्वर्णद्वीप, वहां से सिंहल द्वीप लोटता है। फिर उसकी यात्रा चित्रकूट (चित्तौड़) पर्यन्त होती है।[४२] यह भी मालूम होता है कि नारिकेलद्वीप, कटाहद्वीप की यात्रा के मार्ग मे स्थिति एक विश्रान्ति-स्थल रहा।[४३] कटाहद्वीप का उल्लेख कवि कुमारदास के सुप्रसिद्ध महाकाव्य 'जानकी हरणम्' मे भी उपलब्ध है।[४४] यही नही दीपान्तर के मलयपुर का भी नामोल्लेख मिलता है। यही की ही राजकुमारी थी मलयवती जिसके संग नृप विक्रमादित्य ने विवाह किया था।[४५] इस प्रकार कथासरित्सागर के अध्ययन से हमें न केवल भारतवर्ष अपितु वृहत्तर भारतीय ऐतिहासिक भूगोल तथा भौगोलिक इतिहास की सम्यक जानकारी प्राप्त होती है, जो अन्यत्र प्राप्त होना कठिन है।

'कथासरित्सागर' मे भारतवर्ष और वृहत्तर भारत का इतिहास-भूगोल ही नहीं अपितु वृहत्तरभारत का समाज-समग्र रूप से प्रतिविम्बित है, जो अतीत की स्वर्णाभा से हमें आज भी गौरवान्वित कर देता है। यह सुख समृद्धि का समय था। जब

हमारे सार्थवाह निर्वाध मार्ग से निरुपद्रव द्वीपो मे व्यवसायिक यात्राएं करते रहे। विश्रान्ति क्षणो मे पारस्परिक वार्तालाप के माध्यम से अन्यान्य देशों की संस्कृति का विनिमय, लोक मे व्याप्त एवं प्रिय, लोक कथाओं के माध्यम से करते थे। इन आख्यानो में मानव जीवन के मधुर-मधुर, तिक्त एवं कषायित क्षणों के अनुभव संरक्षित है। ये अनुभव जीवन को उदात्त, गति प्रदानकरने वाले है। ये आख्यान निश्चयत: रससिद्ध लोक कवियो की रचनाएँ रही होगी, जो कर्णपरम्परया प्रसारित होकर अन्तत: संकलन रूप कथाकाव्य बन गये। सत्-रजस् एवं एवं तमस् रूप मनुष्य की त्रिगुणात्मक प्रवृत्ति का शिवाशिव विस्तार है- ये आख्यान। फलस्वरूप आख्यानों में अनेकश: कथन ऐसे भी हैं जो मनोरम सूक्तियाँ रूप है। एवं कतिपय आख्यान ही स्वयं में जीवन के लिए दिग्वोधक है। किसी सज्जन का नौकर था- मूर्खस्वामी ने उसे तेल क्रय करने के लिए बनिए के यहाँ भेजा। वह गया और तेल लेकर लौटा। मार्ग में उसके किसी मित्र ने देखा और कहा देखो, तो तुम्हारे तेल का पात्र नीचे से .चू रहा है। नौकर ने तेल पात्र का निचला भाग-देखने के लिए पात्रको उलटा कर दिया। परिणाम पात्र में रखा सारा का सारा तेल गिर गया। देखकरलोग उस पर हंसने लगे नौकरी से वह निकाल दिया गया। मूर्ख की अपनी बुद्धि ही अच्छी होती है, उसे उपदेश देना उचित नहीं।[४६]

इसी प्रकार एक कृपणका आख्यान- एक धनवान, अत्यन्त कृपण, एक समय

उसके हिताभिलाषी मंत्रियो ने उससे कहा- 'स्वामिन इस लोक मे किया गया दान परलोक मे होने वाली दुर्दशा से मुक्ति दिलाता है।' अतएव 'दान दो' क्योकि जीवन एवं धन दोनो नाशवान् है। राजा कहने लगा 'मै' दान तब दूंगा, जब मरकर स्वय को कष्ट से घिरा हुआ देख लूंगा। मंत्रिगण हंसपड़े और चुप हो गये। मूर्ख धन तो तब तक नही छोड़ता, जब तक धन स्वयं उसे नही छोड़ देता।[४७] लोभप्राणियो के लिए अत्यन्त हानि पहुॅचाने वाला है।[४८] इसी प्रकार उपदेशात्मक कथन तथा सूक्तियो का यह कथासरित्सागर अक्षयकोष है- 'सत्य है जब धीरपुरुष साहसपूर्वक महानकार्य का संकल्प लेते हैं तब विधाता प्रसन्न होकर स्वयमेव उसकी सफलता के लिए उपयोगी उपकरण जुटा देता है।'[४९] ऐसी स्त्रियाँ विरली हो होती है जो सत्कुलोत्पन्न, मौक्तिक सदृश उज्जवल तथा निष्कपट मानस रह धरती का आभूषण बनती है।[५०] अनुराग के वशीभूत रमणियॉ क्या नहीं कर सकती।[५१] धन ही कृपणों का दूसरा प्राण होता है।[५२] निर्धनजन के लिए निधन श्रेयस्कर है, श्रेष्ठ है। परन्तु अपने सम्बन्धियों के सम्मुख दीनता का प्रदर्शन करना सहन नहीं।[५३] धन हीन जन देह का भी विक्रय कर सकता है। स्त्रियो की बात ही और है, जिनका जीवन विद्युत सदृश चंचल होता है।[५४] स्त्रियों का चित्त भीतर से विषमय और बाहर से स्वच्छ दिखाई देता है।[५५] धर्म का आचरण करो। सत्य मार्ग पर रहने से अवनति कदापि नहीं होती।[५६] लक्ष्मी भरे हुए को ही भरती है और निर्धन की आंखों के

सामने भी नही आती।[५७] बाहरी शिष्टाचार करने वाले मित्र दूसरे होते हैं और सच्चे मित्र दूसरे। चिकनाहट समान रहने पर भी तेल, तेल है और घी-घी है। इस जन्म या पूर्व जन्म के कृत स्वयं के ही अच्छे बुरे कर्मों के प्रभाव से सुरों और असुरों सहित संसार कर्मानुसार भोगो का भोग करता है।[५८] इसके अतिरिक्त भी अनेकश: सूक्तिकथन भरे पड़े हैं।

प्रकृति मनुष्य की संवेदनशीलता का स्निग्धभावोद्रेक, सन्ताप, समरसता आदि मे सतत् सहायिका होती है, वह उसके अर्न्तमन की स्थिति -परिवेशगत तादात्मयता-संग संश्लिष्ट होकर उसके भावो को भी उदीप्त करती है। मनुष्य और प्रकृति के तादात्म्य स्थिति का कवि सोमदेव ने सूक्ष्मांकन करने मे सफलता प्राप्त की है। नृप विक्रमादित्य, मलयवती के अनुराग मे विह्वल चित्रकार द्वारा चित्र-लिखित उसके नगर मलयपुर (मलयद्वीप) को खोजने के लिए अपने सेवकों की नियुक्ति करता है। स्वयं राजकुमारी के अनुराग में अपने हृदय को धीरज देना चाहता है, परन्तु प्रकृति इसके विपरीत उसके उद्‌वेग को अभिवर्द्धित कर देती है। ग्रीष्म का अवतरण हो पाता है-इसी समय ग्रीष्म ऋतु के वन मे बेलाके फूलों से पवन सुरभित हो उठा, गुलाब के सुमन विकसित हो गये और पथिक वृक्षों की छाँव में विश्रान्ति ग्रहण करने लगे।[५९] कवि ने यहा एक ही संदर्भ में ग्रीष्म, प्रावृड् और शरद् को अवतरित कराकर नृप विक्रमादित्य के अनुरागासक्त हृदय को अरोहावरोहित गति में आन्दोलित

कर देता है- उसी समय पावस रूपी मत्तग़ज आ पहुँचा जो मेघ क़ी तरह श्यामलवर्ण था। गम्भीर घोष पूर्ण गर्जना कर रहा था। केतकी पुष्परुप उसके धवलदन्त चमक रहे थे। ऐसे वातावरण में नृप का वियोग-रूप सन्ताप दावानल अभिवर्द्धित हो गया। जैसे पुरवा वायु-प्रभाव से वह उद्दीप्त हो गया हो। बिजली की दीप्ति के कारण दु:खदायिनी पावस काल तो शनै: शनै: व्यतीत हो गया। परन्तु नृप विक्रमादित्य का वियोगजनित ज्वालामुखरूपीकामज्वर शान्त न हुआ,कारण तत्पश्चात् ही विकसित कमल-मुखवाली एवं बांस के पुष्पों से हास विखेरती हुयी, कल हंसों के मधुर कूंजन द्वारा संदेश-प्रसारित करने लगी। प्रवासीजन (अपने घर की ओर जाने वाले मार्ग की ओर अग्रसर हो। दूरस्थ स्थित प्रियजनों के लिए प्रेमसन्देश दिये जाये तथा ऐसे जनो का मधु-मधुर सम्मिलन हो।[६०] ऐसे नैसर्गिक चित्रण संम्प्रक्त काव्य रस की सृष्टि से पाठक अनायास ही आनन्दित हो उठता है।

'कथा सरित्सागर' गुणाढ्य रचित 'वृहत्कथा' का रूपान्तर होने के कारण अद्यावधि अप्राप्त मूल कथा के ही रूप में स्वीकार्य ग्रन्थ है। वृहत्कथा का संस्कृत रूपान्तर यह कथासरित्सगार ही संस्कृत कथा-रचना-साहित्य के लिए अभिप्रेरक रुप से जीवन सदृश है। कुवलममालाकहा के प्रणेता का उद्घोष है- गुणाढ्य ब्रह्म है, तथा सभी कलाओं एवं गुणो का निकर वृहत्कथा साक्षात् सरस्वती सदृश है। कवि जनों को इससे काव्य रचना की शिक्षा मिलती हैं।[६१] धनपाल का कथन है- वृहत्कथा

समुद्र है, उससे एक बूँद लेकर रचित अन्य कथाग्रन्थ उसके सामने कथा-सदृश प्रतीत होते है।[६२] वृहत्कथा का ही संस्कृत रूपान्तर है कथासरित्सागर। अत कथासरित्सागर को विश्वकथा धारा की संज्ञा से अभिहित करना अनुचित नही होगा। इसी प्रवहमानधारा मे उच्छरित बूंदो से संचयरूप विश्वकथा साहित्य के विविध स्रोत उद्गमित हुए। न केवल भारत के कथा रचनाकार अपितु विश्व के कथालेखको की प्रेरणा भूमि भी इसी की कथाऍ है। संस्कृत साहित्य का कथा रत्न 'कादम्बरी' काव्य का मूल यही है। महाकवि बाण ने बीज रूप मे कथा ग्रहण कर उसे पल्लवित कर कल्पना-विस्तार दिया। कादम्बरी के कथापात्र यहीं कथासरित्सागर में है, नामान्तर से वाणद्वारा कथित कथा में कथा रस वाही बने है। इसमें का पात्र[६३] शुक, वैशमपायन (कादम्बरी में) सोम प्रभ (कादम्बरी में चन्दापीड)[६४] प्रभाकर शुकनाश (कादम्बरी में)[६५] आशुश्रवा, इन्दायुध (कादम्बरी)[६६] मनोरथ प्रभा, महाश्वेता (कादम्बरी मे)[६७] रश्मिमान, पुण्डरीक (कादम्बरी में)[६८] मकरन्दिका, (कादम्बरी की नायिका) है[६९] सहस्त्ररजनीचरित (अरवेयिन नाइट्स) में 'कथासरित्सागर' में संग्रहीत 'उपक्रोशा की कथाएँ, जैसी अनेक कथाएँ किञ्चित् परिवर्तन के साथ काव्य में संप्राप्त होती है।[७०] यही नही यदि पूरी नहीं तो अनेक कथाओं में परिवेश और पात्रों को ग्रहीत किया गया है- राजकन्याओं एवं घोड़े का वर्णन।[७१] सिंदबाद जहाजी की कथा में तीन फकीर और बगदाद की तीन तरुणियों की कथा में, तीसरे फकीर की कथा, और

उसमे चर्चित पक्षी का साम्य।[७२] शहरयार के अन्त:पुर मे सभी स्त्रीवेशधारी पुरुषो की संयोजन-का मूल यही है।[७३] श्रीहर्ष के प्रसिद्ध नाटक नागानन्द का आधार भूत कथानक, यही जीमूतवाहन की कथा है- कथासरि०/लम्बक४/तरंग २/१।

सुप्रसिद्ध 'वेतालपचीसी' कथासरित्सागर मे एक सुसंघटित कथागुच्छ के रूप मे समायोजित है (लम्बक १२/तरंग ८-३२ पर्यन्त)। पंचतंत्र की विभिन्न कथाओं के कथानक मूलत: इसी ग्रन्थ मे संप्राप्त है, हां किसी का प्रारम्भिक अंश भिन्न है तो किसी मे पात्र नामान्तरित है। उदाहरणार्थ-संजीवक बैल और पिंगलक सिह[७४] सिंह और शशकी कथा।[७५] कौआ, कहुआ, मृग और चूहे की कथा[७६] चतुर्दन्त नामक एक हाथी और खरगोशो की कथा।[७७] इसी प्रकार अन्य बहुत सी पंचतंत्रीय कथाओ का मूल कथासरित्सागर में ही समाविष्ट प्राप्त होता है।[७८] लम्बक प्रथम/तरंग तृतीय/ मे संगृहीत कथा, राजा ब्रहमदत्त की कथा के समान ही कथा सहस्त्ररजनी चरित (अरेवियन नाइट्स) में प्राप्त है- जहॉ शाहजादा मुहम्मद तथा परीवान की कहानी में ऐसा प्रसंग आता है, कि तीन शहज़ादे नूरनिहार से विवाह करने के लिए ऐसी ही तीन चीजे लाये थे। निर्णयार्थ तीन तीर फेंके गये। यहाँ कथासरित्सागर के आख्यान में- इन वस्तुओं की प्राप्ति के लिए युद्ध करना उचित नहीं,दौड़ने में जो अधिक बलवान् प्रतीत हो, वह इन वस्तुओं को ले लें।[७९] निश्चयानुसार दोनों मूर्ख असुर पुत्र दौड़ पड़े और पुत्रक उस छड़ी एवं पात्र को लेकर खड़ाऊ पहिनकर

आकाश मे उड़ गया। दोनो मूर्ख बन गये।[८०] संस्कृत कवि विशाखदत्त ने भी महान ग्रन्थ कथासरित्सागर से सूत्र ग्रहण कर महान नाटक 'मुद्राराक्षस' की रचना की।[८१] कथासरित्सागर में समाविष्ट कील उखाड़ने वाले वानर की कथा' पर ही आश्रित आख्यान पंचतंत्र में भी है।[८२]

निष्कर्षत: कथासरित्सागर कथाकाव्य ही नहीं, अपितु काव्य की ऐसी अनुपम रचना है, जहॉ भारतीय काव्याचार्यो द्वारा निरुपित काव्य-कोटि की सम्यक् संनिहिति संदर्शित है। प्रत्येक लम्बक ही नहीं एक-एक तरंग और कथाएं पूर्णत: संघटित एवं संयोजित है। प्रबन्धात्मकता कथमपि विशृंखलित नही। दशम लम्बक/तृतीय तरंग/की प्रबन्धात्मकता ने ही महाकवि बाणभट्ट को कादम्बरी-सदृश उत्कृष्टतम् कथा काव्य की रचना हेतु उत्प्रेरित किया था। काव्यलक्षणानुसार प्रत्येक लम्बक का प्रारम्भ मंलाचरण से और अन्त प्राय: छन्द परिवर्तन से होता है। छन्द रचना में तो कवि सिद्धहस्त है। अलड्कारो की छटा भी मनोरम है। नैसर्गिक वर्णन में कवि सूक्ष्म दृष्टि सम्पत्र है। एवं मानव मन की परख मे भी कवि उत्कृष्ट है। ऐसे स्थल प्राय: विक्रमादित्य के वियोगावस्था में संदर्भित होते है। प्राय: उपमालड्कार बहुतायत से अवतरित है- यदि सूर्य उदयाचल के साथ आकाश में गमन करे तो हाथी पर बैठे हुए राजा उदयन की उपमा उससे दी जा सकेगी। ऐसी अदभुतोपमा के उदाहरण साहित्य में नगण्य है।[८३]

अन्ततः यह कहना असंगत न होगा कि - 'वृहत्कथा (संस्कृत रूपान्तर कथासरित्सागर) संस्कृत साहित्य रचना संसार मे रामायण और महाभारत के समान ही उपजीव्य कृति है। इस कृति मे हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक भारतवर्ष की एक रूपता देखने को मिलती है। इस एकरूपता का प्रबल रूप शिव-पार्वती संवाद में द्रष्टव्य है। इसके अतिरिक्त देव, दानव, असुर, विद्याधर-गन्धर्व, सभी जातियों का जो विभिन्न द्वीपो या पर्वतभूमियो के निवासी है, उनका सुरुचिपूर्ण वर्णन कवि ने अपनी प्रीतिकरी लेखनी से किया है। इस प्रकार महाकवि सोमदेव ने न केवल भारत अपितु विश्व एकता की कामना करते हुए अपने ग्रन्थ प्रणयन में लोकोत्तर सुख एवं समृद्धि की कामना की है।[८४] महाकवि सोमदेव ने भरतीय संस्कृति और समाज के अतीत का सम्पृक्त चित्र संदर्शन प्रस्तुत करने के प्रयास में सफलता

ट । । ट त ।

किया है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

१ प्रणम्य वाचं नि.शेषपदार्थोद्योतदीपकिम् ।
बृहत्कथाया: सारस्य संग्रह रचयाम्यहम् ।।

कथासरित्सागर/लम्बक १/तरंग १/३

२ तथैव च गुणाढ्येन पैशाच्या भाषया तया।
निबद्धा सप्तभिर्वर्षैर्ग्रन्थलक्षाणि सप्त स।।

मैता विद्याधरा हार्षुरिति तामात्मशोणितै·।
अटव्यां मष्यभावाच्च लिलेख स महाकवि ।।

इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक १/तरंग ८/२-३ तथा ३२-३४

३ इद गुरुगिरीन्द्रजाप्रणयमन्दरान्दोलना-
त्पुरा किल कथामृतं हरमुखाम्वुधेरुद्गतम् ।
प्रसह्य सरयन्ति ये विगतविघ्नलब्धर्द्धयो
धुरं दधति वैबुधी भुवि भवप्रसादेन ते।।

- लम्बक/२/पृष्ठ ११८

४. यथामूलं तथैवैतन्न मनागप्यतिक्रम:।
ग्रन्थविस्तरसंक्षेपमात्रं भाषा च भिद्यते।।

औचित्यान्वयरक्षा च यथाशक्ति विधीयते।
कथारसाविघातेन काव्यांशस्य च योजना।।

वैदग्ध्यख्यातिलोभाय मम नैवायमुद्यम:।
किन्तु नानाकथा-जाल-मृति-सौकर्य-सिद्धये।।

कथासरित्सागर/प्रथम लम्बक/ प्रस्तावना/१०-१२

५. निष्कारणं निषेधोऽद्य ममापीति कुतूहलात्।
अलक्षितो योगशक्त्या प्रविवेश स तत्क्षणात्।।

प्रविष्ट: श्रुतवान् सर्व वर्ण्यमानं पिनाकिना।
विद्याधराणां सप्तानामपूर्व चरितादभुतम्।।

श्रुत्वाथ गत्वा भार्यायै जयायै सोऽप्यवर्णयत्।
विद्याधराणां सप्तानामपूर्व चरितादभुतम्।।

सापि तद्विद्यायाविष्टा गत्वा गिरिसुताग्रत:।
जगौ जया प्रतीहारी स्त्रीषु वाक्संयम: कुत:।।

ततश्चुकोप गिरिजा नापूर्वं वर्णितं त्वया।
जानाति हि जयाप्येतदिति चेश्वरमभ्यधात्।।

श्रुत्वेत्यानाययद् देवी पुष्पदन्तमिति क्रुधा।
मर्त्यो भवाविनीतेति विह्वलं तं शशाप सा।।

माल्यवन्तं च विज्ञप्तिं कुर्वाणं तत्कृते गणम्।।
विध्याव्यां कुबेरस्य शापात्प्राप्त: पिशाचताम्।

सुप्रतीकाभिधो यक्ष: काणभूत्याख्यया स्थित·।।

तं दृष्ट्वा संस्मरन् जातिं यदा तस्मै कथामिमाम्।
पुष्पदन्त! प्रवक्तासि तदा शापाद् विमोक्ष्यसे।।

काणभूते: कथां तां तु यदा श्रोष्यसि माल्यवान् ।
काणभूतौ तदा मुक्ते कथां प्रखयाप्य मोक्ष्यसे।।

इत्युक्त्वा शैलतनया व्यरमत्तौ च तत्क्षणात्।
विद्युत्पुञ्जाविव गणौ दृष्टनष्टौ बभूवतु:।।

कथासरित्सागर/प्रथम लम्बक/ तरंग १/५०-५४, ५६-५७. और ५९-६२

६. कृष्णामाचारी : हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर/ पृष्ठ ४१४-१५।

७. आचार्य जयशङ्कर त्रिपाठी : संस्कृत साहित्य रचना का इतिहास/ पृष्ठ ४३१-३२।

८. दि ओसन आफ स्टोरी/ जिल्द १ प्राक्कथन : आर० सी० टेम्पुल/ पृष्ठ १२

९. कथासरित्सागर/ लम्बक १/तरंग ३/शलोक ७६-७८

१०. Turning to the work it self..................... exetution.
On the otherhand .... of the Labyrinth
— Mr. Tawncy's · The Ocean of the Stories. Vol I
[I Preaface : by N.N. Penzer] Page 10

११. तस्या: तदैव गिरिशार्चन होमकर्म नाना प्रदान विधिबद्ध सग्रन्थमाया:।
शास्त्रेषु नित्यापि निहित श्रवणा श्रमाया देव्या· क्षणं किमपि चिन्ताविनोदवेर्तो ।।

नाना कथामृतमस्य वृहत्कथाया· सारस्य सज्जन मनोम्बुधि पूर्णचन्द्र.
सोमने विप्रवर पूरी भ्रठनभिराम रामत्यजेन विहित· श्वक खड्ग होडपम्।।

प्रविततततरंगमङ्गि कथासरित्सागरो विरचितोडपम् ।
सोमेनामलमतिना हृदयानन्दाय भवतु सताम्।।

- ग्रन्थकर्तु: प्रशस्ति/ ११-१३,

१२. आद्यमत्र कथापीठं कथामुखमत परम् ।
ततो लावानको नाम तृतीयो लम्बको भवेत् ।।

नरवाहनदत्तस्य जननं च तत· परम् ।
स्याच्चतुर्दारिकाख्यश्च ततो मदनमञ्चुका॥

ततो रत्नप्रभा नाम लम्बक सप्तमो भवेत् ।
सूर्यप्रभाभिधानश्च लम्बक. स्यादथाष्टम् ॥

अलङ्कारवती चाथ तत शक्तियशा भवेत् ।
वेलालम्बकसज्ञश्च भवेदेकादशस्त ॥

शशाङ्कवत्यपि तथा तत स्यान्मदिरावती।
महाभिषेकानुगतस्तत. स्यात्पञ्चलम्बक·॥

ततः सुरतमञ्जर्यप्यथ पद्मावती भवेत् ।
ततो विशमशीलाख्यो लम्बकोऽष्टादशो भवेत् ॥

आदि-आदि/कथासरित्सागर/प्रथम लम्बक/ प्रस्तावना/३-११

13. Soma deva has ... . to the readers

- Hisotryof Sanskrıt Lıterature . Kieth/Page 282-83

कथासरित्सागर : भूमिका वाशुदेवशरण अग्रवाल/पृष्ठ २४।

१४. We have .... been lost

– Hisotryof Sanskrıt Lıterature : Kıeth/Page 281-82

१५ कथासरित्सागर : भूमिका : वासुदेवशरण अग्रवाल/पृष्ठ २४-२५

१६. ग्राम्यः कश्चित्खनन्भूमिं प्रापालङ्करणं महत् ॥

रात्रौ राजकुलाच्चौरैर्नीत्वा तत्र निवेशितम् ।
यद्गृहीत्वा स तत्रैव भार्या तेन व्यभूषयत्॥

बबन्ध मेखलां मूर्ध्नि हारं च जघनस्थले।
नूपुरौ करयोस्तस्याः कर्णयोरपि कङ्कणौ॥

हसद्भिः ख्यापितं लोकैर्बुद्ध्वा राजा जहार तत् ।
तस्मात् स्वाभरणं तं तु पशुप्रायं मुमोच सः॥

कथासरित्सागर/दशम् लम्बक/तरंग ५/२४-२७

१७. तत्रैको राजपुत्रोऽभूद्ग्रामभुग्राजसेवकः॥

शूरसेनाभिधानस्य तस्य मालवदेशजा।
अनुरूपा सुषेणेति भार्याभूज्जीविताधिका॥

स जातु भूपेनाहूतः कटकं गन्तुमुद्यतः।
शूरसेनोऽनुरागिण्या जगदे भार्यया तया॥

आर्यपुत्र न मुक्त्वा मामेककां गन्तुमर्हसि।
नहि शक्ष्याम्यहं स्थातुं क्षणमत्र त्वया बिना॥ इत्यादि/कथा०/षोड्श लम्बक/तरंग १/२४-४५

१८. सुखस्पर्शो मृदुर्वातो दक्षिणो विमला दिशः।
पुष्पितानि सुगन्धीनि काननानि पदे पदे॥

मधुराः कोकिलालापाः पानलीलासुखानि च।
सुखं किं न मधौ प्रेयोवियोगस्त्वत्र दुःसहः॥

अन्यस्यास्तां तिरश्चामप्यत्र कष्टा वियोगिता।
तथा च विरहक्लान्तामेतां पश्यत कोकिलाम्।।

वही/वही/१९-२१

१९ स कदाचिच्छरत्काले सोष्मण्युन्मदवारणे।
राजहंसपरीवारे सोत्सवानन्दितप्रजे।।
आत्मतुल्यगुणे रन्तुं चित्रप्रासादमाविशत् ।
आकृष्टकमलामोदवहन्मारुतशीलतम् ।।

कथासरित्सागर/नवम् लम्बक/तरंग ५/३३-३४

२० शस्त्रक्षतगजाश्वौघरक्तधारावपूरिता.।
वीरकायवहद्ग्राहा निर्युयुः शोणितापगाः।।
नृत्यतां तरतां रक्ते नदतां चोत्सवाय स।
शूराणां फेरवाणा च भूताना चाभवद्रण :।

कथासरित्सागर/लम्बक ८/तरग ४/५२-५३

२१. तैरावृते नभोभागे शस्त्रसम्पातदारुण :
प्रावर्त्तत महानाद. संग्राम सेनयोस्तयो
दिक्चक्रे बाणजालेन घनेनाच्छादिते तदा।
अन्योन्यशरसङ्घर्षजातानलतडिल्लते।।

कथासरित्सागर/लम्बक ८/तरग ४/५०-५१

२२ सैन्यरेणुघनाकीर्णं शस्त्रज्वालातडिल्लतम् ।
पतद्रक्ताम्बु तदभूद्घोरं समरदुर्दिनम् ।।
शोणितासवसम्पूर्ण कीर्णशत्रुशिरोबलिम् ।
चक्रुर्भूतमहायागमिव चित्राङ्गदादयः

कथासरित्सागर/लम्बक १४/तरंग ३/१०२-१०३

२३ व्याप्ताम्बरोञ्जननिभश्च विनिह्नुतार्को विद्युल्लतातरलदीप्रविलोचनार्चिः।
दन्तप्रभावितितपङ्क्तिपतद्बलाको गर्जन्महाप्रलयमेघ इव प्रचण्डः।।

कथासरित्सागर/लम्बक १४/तरंग २/१८२

२४. आरूढः प्रोच्छ्रितच्छत्रं प्रोतुङ्गजयकुञ्जरम् ।
गिरिं प्रफुल्लैकतरुं मृदेन्द्र इव दुर्मदः।।
प्राप्तया सिद्धिदूत्येव शरदा तत्तसंमदः।
दर्शयन्त्यातिसुगमं मार्ग स्वल्पाम्बुनिम्नगम्।।इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक३/तरंग५/३-६८

२५. शरत्पाण्डुपयोदाङ्काः सधातुरसनिर्झराः।
यात्रानुप्रेषिता भीतैरात्मजा इव भूधरैः।।
नैवैष राजा सहते परेषां प्रसृतं महः।
इतीव तच्चमूरेणुरर्कतेजस्तिरोदधे।। - कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरंग ५/६९-७०

२६. अन्तरा च मिलद् व्याधः पलाशश्यामकञ्चुकः।
स सबाणासनो भेजे स्वोपमं मृगकाननम्।।

जघान पङ्ककलुषान्वराहनिवहान्शरैः।
तिमिरौघानविरलैः करैरिव मरीचिमान्।।

इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक ४/तरग १/११-१४

२७ सच्चक्रवर्त्तिपानीय. प्रविशद्वाहिनीशतः।
यदाभोगोऽब्धिगम्भीरः सपक्षक्ष्माभृदाश्रित·।।
तस्यां विक्रमसिंहाख्यो बभूवान्वर्थयाख्यया।
राजा वैरिमृगा यस्य नैवासन्सम्मुखा. क्वचित्।।
स च निष्प्रतिपक्षत्वादनाप्तसमरोत्वसः।
अस्त्रेषु बाहुवीर्ये च सवाङ्गोऽन्तरतप्यत।।

कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरंग १/१३६-१३९

२८. तत्र भिन्नेभकुम्भानां नखोदरपरिच्यूतैः।
सिंहानां हतसुप्तानामुप्तबीजेव मौक्तिकैः।।
व्याघ्राणां भल्ललूनानां द्रंष्ट्राभिः साङ्करेव च।
सपल्लवेव क्षतजैर्हरिणानां परिस्रुतैः
निमग्नकङ्कपत्राङ्कैः क्रोडैः स्तबकितेव च।
शरीरैः शरभाणां च पतितैः फलितेव च।।
बभूव तस्य निपतद्घनशब्दशिलीमुखा।
प्रीतये मृदयालीलालता शोभितकानना।।

कथासरित्सागर/लम्बक ७/तरंग ८/३-६

२९ वरचारणनर्त्तकीसमूहैर्विविधदिगन्तसमागतैस्तदात्र।
परितः स्तवनृत्तगीतवाद्यैर्बुबुधे तन्मय एव जीवलोकः।।
वातोद्धूतपताकाबाहुलता चोत्सवेऽत्र कौशाम्बी।
सापि ननर्त्तेव पुरी पौरस्त्रीरचितमण्डनाभरणा।।

कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरंग ८/२६२-२६३

३० ततस्तद्गतधीस्तस्मिन्नुद्याने व्यहरद्दिनम्
नरवाहनदत्तस्तां पश्यन् मदनमञ्चुकाम्।।
उत्फुल्लपद्मवदनां दलत्कुवलयेक्षणाम्।
बन्धूककमनीयौष्ठी मन्दारस्तबकस्तनीम्।।
शिरीष सुकुमाराङ्गी पचपुष्पमयीमिव।
एकामेव जगज्जैत्री स्मरेण विहितामिषुम् ।।

कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरंग ८/२३०-२३२

३१. तासां मध्ये च दीप्तानां ददर्शैकां स कन्यकाम् ।
ताराणामिव शीतांशुलेखां लोचनहारिणीम्।। - इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरंग ३/३-६

३२. मुखैः पद्मानि नयनैरुत्पलानि पयोधरैः।
रथाङ्गनाम्नां युग्मानि नितम्बैः पुलिनस्थलीः।।

इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरंग ५/११६-११७

३३ तत्रापश्यहं ता च चन्दनार्द्रविलेपनाम्।
मृणालहरां बिसिनीपत्रशय्याविवर्त्तिनीम्।।

इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरंग ५/६२-६५

३४ हिममुक्तेन्दुसश्रीकं दर्शनोद्दीपितस्मरम् ।
मधुमासमिवालोकक्रीडालङ्कृतकाननम् ।।

आदि-आदि/कथासरित्सागर/लम्बक १२/तरग २२/४०-४२

३५ अङ्गारास्तुहिने न्यस्ता. कुकूलाग्निश्च चन्दने।
मारुते दाववह्निश्च स्मरेण मम निश्चितम्।।

आदि-आदि/कथासरित्सागर/लम्बक १७/तरंग ४/९२-९३

३६ याति काले च जात्वत्र हत्वा हेमन्तहस्तिनम् ।
फुल्लकुन्दलतादन्त मथिताम्बुजिनीवनम्।।

आदि-आदि/कथासरित्सागर/लम्बक १२/तरंग २४/२०-२१

३७. कथासरित्सागर तथा भारतीय संस्कृति : डॉ० एस० एन० प्रसाद/पृष्ठ २०७

३८. श्रयूतां नापितस्यार्थी मुग्धोवत्र च पुमानयम्।
कर्णाट: कोऽपि भूपं स्वं रणे शौर्यादतोषयत्।।

आदि-आदि/कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरंग ५/३२३-३२९

३९. हिमवद्दक्षिणो देश: कश्मीराख्योऽस्ति यं विधि:।
स्वर्गकौतूहलं कर्तु मर्त्यानामिव निर्ममे।।

इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरंग ७/५३-५५

४०. जयेदात्मानमेवादौ विजयायान्यविद्विषाम्।
अजितात्मा हि विवशो वशी कुर्यात्कथं परम्।।

इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरंग ८/१९२-१९८

विशेष : इसी प्रकार परीक्षाम् विषयक उल्लेख कामन्द/अध्याय ४/ ३५ मे है। याज्ञवल्लय स्मृति/अध्याय १/३३८

४१. स वणिज्यावशाद् गच्छन् सुवर्णद्वीपमेकदा।
आरुरोह प्रवहणं तटं प्राप्य महाम्बुधे:।।

इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरंग ४/१००-१०४

४२ गता: कटाहद्वीपं तु तद्युक्त: स इतोऽधुना।।
तच्छ्रुत्वा स ततो विप्रो वणिजा दानवर्मणा।
पोतेन गच्छता साकं कटाहद्वीपमभ्यगात् ।।

इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरंग ६/५९-६३

४३. अस्ति मध्ये महाम्भोधे: श्रीमद् द्वीपवरं महत्।।

इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरंग ४/१४-१६

४४. समुद्रमुल्लंघ्य गतस्तदीयस्तेजो............ नृपं कटाहे।। - जानकीहरणं/सर्ग १/१७

४५. दृष्टं मया तन्मलयपुरं नाम महापुरम् ।
भ्रमता भुवमुत्तीर्य वारिधिं द्वीपमध्यगम् ।।

इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक १८/तरंग ३/८९ तथा ११०-१११

४६. मुग्धोऽभूत् पुरुष. कश्चिद् भृत्य: शिष्टस्य कस्यचित्।।
स तेन स्वामिना तैलमानेतुं वणिजोऽन्तिकम्।
प्रेषिता जातु तत्तस्मात् पात्रे तैलमुदपाददे।। इत्यादि/कथा०/लम्बक१०/तरंग५/१८८-१९२

४७ मूर्ख· कश्चिदभूद्राजा कृपण· कोषवानपि।
एकदा जगदुश्चैव मन्त्रिणस्तं हितैषिण·।।
इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरंग ५/२१५-२१८

४८ इह मे मूषक शत्रुरुत्पन्नोऽथ सदैव य।
अपि दूरस्थमुत्प्लुप्य नयत्यन्नमितो मम।।
इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरग ५/९५-९७

४९ चित्रं धातैव धीराणामारब्धोद्दामकर्मणाम्।
परितुष्येव सामग्री घटयत्युपयोगिनीम्।। कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरग ४/३५९

५०. वास्तुकाश्चन सद्वशंजाता मुक्ता इवाङ्गना।
या: सुवृत्ताच्छहृदया यान्ति भूषणता भुवि।। कथासरित्सागर/लम्वक १/तरग ४'१८

५१. सापि सेहे तदत्युग्रराक्षसांसाधिरोहणम्।
अनुराग-परायत्ता: कुर्वते किं न योषित·।। कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरग ४/३८१

५२. धनापहारमेवास्य वधं मेने च पाप्मन।
कदर्याणा: पुरे प्राणा: प्रायेण ह्यर्थसञ्चया।। कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरग ४/३८७

५३. वरं हि मानिनो मृत्युर्न दैन्यं स्वजनाग्रत·। कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरग ५/२२

५४. धनहीनेन देहोऽपि हार्यते स्त्रीषु का कथा।
निसर्गनियतं वासां वद्युितामिव चापलम्।। कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरंग ५/२८

५५. अगाधमन्त: सविषं स्वच्छशईतं बहि: सर:।
रागिन् स्त्रीचित्तमेतादृगित्यर्केण निदर्शनम्।। कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरंग ३/८५

५६. धर्मेण चरतां सत्ये नास्त्यनभ्युदय:।। कथासरित्सागर/लम्बक ८/तरंग २/१५९

५७. 'पुरयति पूर्णमेषा तरङ्गणीसंहति: समुद्रमिव।
लक्ष्मीरधनस्य पुनर्लोचनमार्गेऽपि नायति'। कथासरित्सागर/लम्बक९/तरंग ३/३२

५८ इत्यैहिकेन च पुराविहितेन चापि
स्वेनैव कर्मविभवेन शुभाशुभेन।
शश्वद् भवेत्तदनुरूपविचित्रभोग:
सर्वो हि नाम ससुरासुर एष सर्ग:।। कथासरित्सागर/लम्बक६/तरंग १/२०९

५९. अत्रान्तरे ग्रीष्मवनं मल्लिकामोदिमारुतम्।
छायाषिण्णपथिकं दृष्ट्वा पुष्पितपाटलम्।। कथासरित्सागर/लम्बक१८/तरंग ३/६५

६०. आजगामाम्बुदश्यामो गुरुगम्भीरगर्जित:।
केतकोद् दामदशन: प्रावृट्कालमदद्विप:।। आदि-आदि/कथासरित्सागर/लम्बक१८/तरंग ३/६६-७२

६१ सयलकलागमणिलया सिक्खावियकइयणस्स मुहयंदा।
कमलासणो गुणड्ढो सरस्सई जस्स बड्डकहा।। (कुवलयमाला, पृ०३, पंक्ति २२)

६२ सत्यं वृहत्कथाम्भोधेर्बिन्दुमादाय संस्कृता।
तेनेतरकथान्या: प्रतिभान्ति तदग्रत:।। तिलकमञ्जरी धनपाल

६३ तत: स बाष्पमुत्सृज्य वदति स्म शुक शनै। कथासरित्सागर/लम्बक१०/तरंग ३/३६

६४. तेन सोमप्रभं नाम्ना तं चक्रे स्वसुतं नृप:। कथासरित्सागर/लम्बक१०/तरंग ३/६१

६५. प्रभाकराभिधानस्य तनयं निजमन्त्रिण:। कथासरित्सागर/लम्बक१०/तरंग ३/६४

६६. तेन चाशुश्रवा नाम शक्रेणोच्चै·श्रव:सुत:।। कथासरित्सागर/लम्बक१०/तरंग ३/६६

६७. तस्य हेमप्रभादेव्यां राज्ञ: पुत्राधिकप्रियाम्।
मनोरथप्रभां नाम विद्धि मां तनयामिमाम्।। कथासरित्सागर/लम्बक१०/तरंग ३/८७

६८. रश्मिमानिति नाम्ना च कृत्वा संवर्ध्य च क्रमात्।
उपनीय समं सर्वा विद्या: स्नेहादशिक्षयत्।। कथासरित्सागर/लम्बक१०/तरंग ३/९८

६९. सिंहविक्रम इत्यस्ति नाम्ना विद्याधरेश्वर:।
तस्यानन्यसमा चास्ति तनया मकरन्दिका।। कथासरित्सागर/लम्बक१०/तरंग ३/११७

७० उपकोशा हि मे श्रेय: कांक्षन्ती निजमन्दिरे।
अतिष्ठत्त्रत्यहं स्नान्ती गङ्गयां नियतव्रता।।
कथासरित्सागर/लम्बक१/तरग ४/२८ (किचिद् परिवर्तन से सहस्त्ररजनी चरित मे)

७१. कथासरित्सागर/लम्बक ५/तरंग /३

७२ तत्र दृष्ट्वा च तच्चर्म निपत्यामिषशङ्कया।
हृत्वाब्धे: पारमनयत्पक्षी गरुडवंशज:।। कथासरित्सागर/लम्बक२/तरंग ४/११३

७३. सर्वत्रान्त: पुरे ह्यत्र स्त्रीरूपा: पुरुषा· स्थिता·।
हन्यतेऽनपराधस्तु विप्र त्यिहसत्तिमि:।। कथासरित्सागर/लम्बक १/तरग ४/२४

७४. पंचतंत्र के कथा का प्रारम्भ- (मित्रभेद)
वर्धमानो महानस्नेह: .... . विनाशिता

७५ पंचतंत्र के कथा का प्रारम्भ-
बुद्धिर्यस्य बलमतस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्।
पश्य सिंहौमदोन्मत: शशकेन निपातित:।। इसी का अर्थ का बोधक -
एवं प्रज्ञैव परम वल न तु पराक्रम:।।
यतप्रभावेण निहत: शशकेनापिकेसरि।। कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरंग ४/१०७

तृतीय अध्याय

कथासरित्सागर में प्रतिबिम्बित सामाजिक संगठन

- वर्ण एवं जाति
- आश्रम
- पुरुषार्थ
- संस्कार

कथासरित्सागर में प्रतिबिम्बित सामाजिक संगठन

भारतीय संस्कृति तथा सामाजिक संगठन सनातन है। सामाजिक संगठन का मूलाधार वर्ण-व्यवस्था, आश्रम-व्यवस्था एवं जीवनोन्नयन की प्रतिष्ठा हेतु पुरुषार्थ चतुष्ट्य की अवधारणा है। इसी का परिणाम है कि अनेकशः सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, संक्रान्तियो, वैदेशिक आक्रान्तक झंझावतो को झेलकर भी सामाजिक संस्कृति एवं सांस्कृतिक समाज की उदात्त तथा शिवमय सुधाधार अद्यावधि अविच्छन्नतः प्रवह्मान है, जो जैन-बौद्ध सम्प्रदाय के विरोधी सिद्धान्तों से भी विश्रृंखलित न हो सका। सामाजिक संगठन के मूलाधार वर्ण-विभाजन, जीवन के चार आश्रम और जीवन को सार्थक परिणति के आधार पुरुषार्थ चतुष्ट्य का प्रतिपादन प्राचीनकाल से ही होता आया है। इस व्यवस्था की सनातन-प्रतिष्ठा के प्रमाण हमें विदेशी यात्रियों के विवरणों मे भी उपलब्ध होते हैं। वर्ण व्यवस्था-संपोषित इस सामाजिक संगठन की दैवी प्रतिष्ठा रही है। अतः विरोधों का कथमपि प्रभाव नहीं पड़ा। यदि कभी

किञ्चित् शिथिलता आयी भी तो वह पुनः सुदृढ़ से सुदृढ़तर होती गयी। इस वर्ण व्यवस्था के चिर-स्थायित्व का प्रमुख आधार है, सार्वजनिक सामंजस्य एवं लोक कल्याण की भावना। इस वर्ण व्यवस्था के चिर स्थायी होने मे धार्मिक विचारधारा का भी योगदान रहा है - भारतीय सदैव धर्म प्राण रहे है। उनके लिए जीवन और धर्म दो पृथक वस्तुएं नहीं थी। उनका जीवन, धर्म का व्यावहारिक रूप था और धर्म जीवन संग्रहीत तथ्य। दोनों का अविच्छेद्य तथा अन्योन्याश्रित सम्बंध था। दोनो एक दूसरे से ओत-प्रोत थे। इस प्रकार की भावना का परिणाम यह हुआ कि भारतीयो के समक्ष जो भी वस्तु धर्म का अंग बनकर आयी, वह मान्य बन गयी, चिरस्थायी हो गयी। भारतीय परम्परा के अनुसार वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति मानवी न होकर दैवी है। इस दैवी आधार ने कालान्तर मे इस व्यवस्था की लोकमान्यता को दृढ़तर किया। वर्णव्यवस्था को पाकर भारतीय समाज एक सुदृढ़ इकाई बन गया। उसके अन्तर्गत समाज का प्रत्येक व्यक्ति पारस्परिक अधिकार एवं कर्तव्य के आधार पर एक-दूसरे से सम्बद्ध था। सबका कुछ न कुछ कर्तव्य था। उस कर्तव्य का आधार, वर्तमान और आगामी जीवन सम्बंधी स्वार्थ था। आवश्यक था कि प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों का उपभोग करने से पूर्व अपने कर्तव्यों को भी पूर्ण करे।[१] कर्तव्य सापेक्ष एकाधिकार प्रयोग ही प्रकारान्तर से भारतीय वर्ण व्यवस्था का मुख्यतम लक्ष्य रहा। यह कर्म-विभाजन, समाज के प्रति सामूहिक दायित्व-बोध का प्रतिपादन था।

'सर्वेसन्तु सुखिन:' के प्रतिपादन विस्तार ने वर्ण-व्यवस्था का रूप धरा, इसीलिए भारतीय समाज सुसंगठित हो सका। इस सुसंगठित प्रक्रिया को हम चाहे तो समाजवाद की संज्ञा भी दे सकते है। यह हमारी वर्णव्यवस्था की सुचिन्तित अवधारणा है, जिससे मानव निज व्यक्ति से आगे बढ़कर इतर के योग-क्षेम की ओर उन्मुख बने। मनुष्य प्रकृत्या, प्रवृत्तया और वृत्या ऐसे ही कार्यकलापों में रुचि लेता है, जिसमे उसके निज का कल्याण निहित हो अर्थात् मनुष्य स्वार्थ-तत्पर है। भारतीय समाज ऋषि परम्पराबोधी है। ऋषि विश्व कल्याण के लिए सतत् तपश्चरणरत रहता है। 'स्व' को संतप्त करके समष्टि के हितार्थ सूत्रान्वेषण मे संलग्न रहता है। तथैव हमारी वर्णव्यवस्था, मनुष्य का व्यक्ति मात्र व्यष्टि नही अपितु समष्टि का अविभाज्य अंग प्रतिपादित करने का आधार बनी। तदनुसार मनुष्य वैयक्तिक हित में संलग्न रहकर भी सार्वजनिक स्वरूप की ओर उन्मुख होकर लोक कल्याणभावी बना। इस वर्ण-व्यवस्था ने अत्यन्त सहज रूप से व्यष्टि एवं समष्टि के अन्योन्याश्रित सम्बंध को प्रतिष्ठित किया। वर्ण व्यवस्था ने व्यक्ति की पृथक् सत्ता को प्रतिष्ठा दी और अन्तत: उसका समावेश समष्टि में कर दिया। अनेकश: जनों का एक समूह वर्णव्यवस्था के अर्न्तभूत होकर स्वयं मे एक अंग बना। यह भली भांति सुसंगठित सबल संगठन हो गया। समाज की सभी शृंखलाएं परस्पर पुष्पमाला में गुम्फित सुमन के सदृश सूत्रबद्ध हो गयीं। एक-दूसरे की पृथक् सत्ता एकीकृत होकर अत्यन्त सबल सत्ता

का रूप धारण कर लिया; इसी का परिणाम था कि शतियो के अनेकानेक घात-प्रतिघात भी इसे विश्रृंखलित न कर सके। वर्ण-व्यवस्था ने हमारे समाज को एक बल दिया जिससे वह अनेकानेक वाह्य आक्रमणो एवं आन्तरिक परिवर्तनो के समक्ष भी विश्रृंखल न हुआ। इसका मुख्य कारण वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत हमारा कार्य-विभाजन था। चारो वर्णो के अपने अपने कार्य थे। वे दूसरे के कार्यो की चिन्ता किये बिना अपने कार्यो एवं व्यवस्थायो को अग्रसर करते रहते थे।[२]

ईसापूर्व छठी शताब्दी धार्मिक उथल-पुथल का काल था, जब अनेक पंथ और सम्प्रदाय विकसित हुए, और लगभग सभी ने इस सनातन सुसंगठित समाज-व्यवस्था के आधार, वर्ण व्यवस्था को नष्ट करने का प्रयास किया, किन्तु ये प्रयास निष्फल रहे।[३] प्राचीन ऋग्वेद काल से समग्र भारतीय समाज चार वर्णों के अर्न्तगत समाहित है, और वे चार वर्ण है - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। यह वर्ण-व्यवस्था पर आधारित सामाजिक संगठन मानवी न होकर दैवी परम्परानुसार अवधारित, अवतरित, यह प्रतिपादित एवं प्रतिष्ठित होकर अद्यावधि प्रतिष्ठित तथा लोकादृत है। ऋग्वेद के कथनानुसार- यह समस्त दृश्यमान जगत् परम पुरुष का रूप है, जो परम पुरुष सहस्त्रशीर्ष, सस्त्रनयन, सहस्त्र चरणों वाला है और समग्र पृथिवी को व्याप्त किये हुए हैं। भूत, भविष्यत् सब कुछ वही पुरुष है, वही अमरता का अधिपति है। जो कुछ भी भोग्य वस्तु हैं अर्थात् सब उसके प्रभाव से अभिवर्धित होता है;

वह भी वही परमपुरुष है। इसी प्रकार समाज संगठन के आधारभूत चार वर्ण भी उसी के आंगिक चार रूप है- इस परम पुरुष का मुख ब्राह्मण, दोनो बाहु क्षत्रिय, जंघाएं वैश्य एवं दोनों चरण शूद्र है, अर्थात् उस परम पुरुष के मुख से ब्राह्मण की, बाहु से क्षत्रिय, जांघ से वैश्य एवं चरण से शुद्र की उत्पत्ति हुई।[४] अर्थ यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शुद्र चारों वर्ण समाज की इयत्ता, अधिसत्ता तथा समग्रता के आधार है जो अपने-अपने लिए नियत, विनिश्चित कार्यो- व्यवसायों को सम्पादन करते और सामाजिक अभ्युत्थान के साथ-साथ जीवन्तता के उत्तरदायी है। समाज एवं राष्ट्र का सम्पूर्ण दायित्व इन्ही चारो वर्णो मे सन्निहित रहा है।

ब्राह्मण

ऋग्वेद का पुरुषसूक्त जहाॅ चार वर्णो का कथन करता है, वहाॅ प्रथम स्थान पर ब्राह्मण है, अर्थात् सर्वश्रेष्ठ को परम पुरुष के मुख से उद्भूत कहा। परन्तु तैत्तरीय संहिता ने साक्षात् देवता रूप प्रतिपादित किया है।[५] ब्राह्मण को विद्वान्, वेद-विद्, देवगणों[६] की निवास भूमि एवं नमस्कार्य, दिव्यवर्णी और क्षत्रिय से उच्चतर कहकर प्रथम-श्रेष्ठ प्रतिपादित किया गया है। धर्मशास्त्र के व्याख्याकारों द्वारा ब्राह्मण को सर्वगुण समन्वित समाज का सर्वाधिक सुयोग्य प्राणी कहा गया है। वेदों के अध्ययन, अध्यापन, सदाचरणरत, सत्यभाषी, अहिसंक निष्कुलष-वृत्ति धारण करने वाला

एवं यम-नियमो का पालक प्रतिपादित किया गया है। महामति चाणक्य के मत मे ब्राहमण का स्वधर्म, अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन, दान और परिग्रह है।[७] ब्राह्मण समाज का नियन्ता स्वीकार किया गया है। मेगस्थनीज का कथन है कि ब्राह्मण दार्शनिक, यद्यपि अन्य वर्गो की अपेक्षा संख्या मे अल्प थे, तथापि समाज के सबसे अधिक आदरणीय थे। वे सभी राजकरों से मुक्त थे और अनेकानेक दानों एवं प्रतिग्रहों के अधिकारी थे।[८] महाभारत मे ब्राह्मण को सर्वप्रथम उद्भूत एवं अन्य वर्णो की उसके पश्चात् उत्पत्ति बताकर द्विपदो मे सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। इतना ही नहीं उसे पृथिवी पर देवता के तुल्य वर्णित किया गया है।[९]

ब्राह्मण देवता सम सर्वश्रेष्ठ वर्ण सम्माननीय और पूज्य रहा है, यह अकारण अथवा निराधार नहीं है। ब्राह्मण अकारण ही सभी वर्णो में मूर्धन्य नहीं, ब्राह्मण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य वह समाजोन्नयन-निमित्त सम्पादित करता था-त्याग, संयम और साधनापूर्ण जीवनयापन में वह स्वेच्छा से निरत रहता था। समाज के लिए अध्यापन एवं यज्ञादि सम्पादन के महत्त्वशाली दोनों कार्यो का निर्वहन वही करता रहा। प्राचीन सामाजिक व्यवस्था मे ये दोनो कार्य सर्व प्रधान रहे हैं ऐसे महत्त्वपूर्ण दायित्वों के सम्पादन एवं निर्वहन के प्रतिसतत् और सर्वदा सक्रिय रहने के परिणामस्वरूप उसे प्रतिग्रह का अधिकार प्रदान किया गया था। ऐसा कथन आपस्तम्भ गौतम एवं बौधायन सूत्रों मे समान रूप से उपलब्ध होता है।[१०]

उल्लेखनीय तथ्य यह है कि ब्राह्मण समाज मे सर्वोपरि स्थान पर प्रतिष्ठित था वह चाहे कोई भी व्यवसाय स्वीकार जीविकोपार्चन करे। शिक्षा, दीक्षा और ज्ञान का एकमात्र आस्पद यह ब्राह्मण ही प्राचीनकाल से मध्यकाल पर्यन्त माना जाता रहा। इतना ही नही पठन-पाठन के क्षेत्र से अतिरिक्त वह प्रशासनिक क्षेत्र मे भी श्रेष्ठ सहयोगी स्वीकार्य था। राजामात्य प्राय: ब्राह्मण ही रहते थे धर्म एवं विज्ञान के क्षेत्र में प्रयासरत रहना उनका सर्वप्रमुख कर्तव्य था। ऐसा मत विदेशी इतिहास लेखक भी व्यक्त किये हैं।[११] ब्राह्मण जन्मत: अनुशासन, ज्ञान और संस्कार के कारण सभी वर्णों और संसार का स्वामी है। संसार के समग्र धन-धान्य का स्वामी ब्राह्मण है। ब्राह्मण सर्वदा एवं सर्वथा देवतुल्य पूज्य है चाहे वह अधीत, विद्वान् हो अथवा अनधीत। ब्राह्मण चाहे दस वर्ष का ही क्यों न हो, किन्तु वह शतवर्षीय क्षत्रिय से भी अधिक उच्च श्रेष्ठ एवं सम्मान्य है।

ब्राह्मण को नृप न तो शारीरिक दण्ड देने का अधिकार रखता है तथा न उस पर किसी प्रकार का कर ही आरोपित कर सकते हैं। ब्राह्मण का धन राजा अधिग्रहीत नही कर सकता। ब्राह्मण अबध्य है, उसका वध महत्तर पाप परिगणित है। ब्रह्महत्या से बढ़कर, संसार में अन्य कोई जघन्य पाप नहीं माना गया है। ऐसे पाप के लिए किसी प्रायश्चित का भी विधान नहीं है। ब्राह्मण के प्रति राजकीय दण्ड विधान की प्रक्रिया भी पक्षपातपूर्ण है। यदि कोई क्षत्रिय ब्राह्मण के प्रति दुर्वचनों

का प्रयोग करे तो उसे शत् कार्षापण से दण्डित किया जाता, परन्तु उसी के समान अपराध करने वाले ब्राह्मण के लिए मात्र पचास कार्षापण का दण्ड-विधान है। श्रोत्रिय ब्राह्मण के भरण-पोषण का दायित्व नृपति पर छोड़ा गया है।[१२] इतने प्रकार के जो विशेषाधिकार ब्राह्मण के लिए निर्धारित किये गये तो उसके समकक्ष ही दायित्वभार भी उसे सौपे गये। उसके लिए शासन तथा अनुशासन की भी व्यवस्था की गयी- ब्राह्मण का प्रभाव धर्म वेदाध्ययन एवं अन्य समस्त धर्मो को गौण विनिश्चत किये गये। सतत् एवं सदैव वेदाध्ययन कार्य मे संलग्न तथा साधनारत रहना परमधर्म है। उसके लिए ऐसे किसी भी व्यवसाय को वर्जित किया गया है जो उसके वेदाध्ययन साधना मे व्यवधान उपस्थित करे।[१३] पंतजलि के अनुसार जन्मत: ब्राह्मण के लिए श्रेष्ठता की कोटि होने के साथ-साथ तप एवं वेदाध्ययन मे रत होना आवश्यक है। उसका जीवन तप त्याग का है। ब्राह्मण के लिए जहाँ प्रतिग्रह का अधिकार प्रदान किया गया, वही उसे नियंत्रित भीं किया गया है। उसके जीवन को त्यागमय विनिश्चित किया गया और विहित हुआ कि वह उतना ही धन संचय करे कि उसका एवं कुटुम्ब का भरण पोषण होता रहे, अधिक नहीं।[१४]

कालान्तर में सामाजिक संगठन तो यथावत् रहा, किन्तु उसके नियमादि में शैथिल्य ने प्रवेश किया, परिणामत: चारों वर्णों के लिए पूर्व विहित्, अधिकार-कर्तव्यों में अभिवृद्धि और न्यूनता आयी। तद्नुसार प्रथम एवं श्रेष्ठ वर्ण व्यवस्था

के कार्यकलाप, कृत्य, कर्म, दायित्व, धर्म, साधना भी कही दृढ़ अभिवर्द्धित और कही शिथिल, न्यून हुए। यद्यपि इस शैथिल्य तथा परिवर्तन का बीजारोपण इससे पूर्व ही हो चुका था। स्मृतियो, गृहसूत्रो में भी इसके संकेत परिलक्षित होते है। कौटिल्य के मत में राजद्रोह का अपराध करने वाला ब्राह्मण कथमपि क्षम्य नही है। ऐसे अपराधी ब्राह्मण को जलसमाधिस्य कर देना चाहिए।[१५] वर्णो के लिए पृथक-पृथक विनिश्चित कर्म अथवा व्यवसायानुसरण का भी विधान व्यवस्थाकारों ने किया था। तद्नुसार स्वयं से निम्नवर्ण के लिए चिन्हित व्यवसाय के ही अनुसरण को संगत माना गया। उच्चतर वर्ण के व्यवसाय का अनुसरण अधर्म है। यत्र-तत्र पर वर्ण के व्यवसायानुसरण आपत्कालीन व्यवस्था स्वरूप वर्णित है। इतना ही नहीं अपितु, आपातकालोपरान्त विकर्म का परित्याग कर प्रायश्चित भी करणीय है, और विकर्माजित धन का भी त्याग कर देना उचित है।[१६]

व्यवस्था निर्णायको के मत में दान लेने का अधिकार, अधीत, विद्वान् ब्राह्मण की ही है और प्रदानदाता को भी ऐसे ही पात्र को ही दान देना चाहिए, यही श्रेयस्कर है। यदि अनधीत व्यक्ति स्वर्ण, भूमि अश्व, गौ, अन्न, वस्त्रादि को दानस्वरूप ग्रहण करता है तो वह भस्मसात् हो जायेगा।[१७] आवश्यकतानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का भी धर्माचरण करने का अधिकारी रहा है- वर्णाश्रम धर्म की स्थापना और संरक्षण निमित्त न केवल ब्राह्मणों अपितु समस्त द्विजाति वर्गीयजनों को शस्त्र

ग्रहण करना संगत है।[१८] एक स्थान पर ब्राह्मण को वणिक धर्म अंगीकार करने की भी कतिपय प्रतिबंधो सहित अधिकार दिया गया है। ब्राह्मण द्रव, पदार्थो, पकवान, मृगचर्म और घुले वस्त्र, दुग्ध, फल-फूल, मांस जल औषधियो, पशु-मनुष्यो, भूमि, भेड़ बकरियों घोड़ों एवं बैलो का विक्रय नही कर सकता।[१९] अर्थ यह है कि ब्राह्मण वर्णाश्रमधर्म का प्रथम एवं सर्वोच्च नियन्ता है। वह अध्ययन अध्यापन के अतिरिक्त क्षत्रिय कर्म करने वाला ब्राह्मण, कुलोत्पन्न मात्र कहा जाता था, वेद का ही एकमात्र का अध्ययन करने वाला ब्राह्मण की संज्ञा पाता था, एक वेद वेदांगो का अध्ययन करने वाला तथा ब्राह्मणो के लिए विहित एवं शास्त्रो के धर्मो का सविधि सम्पादन करने वाला क्षत्रिय, ब्राह्मण कहा जाता रहा। शुद्ध मानस, शास्त्रों में वर्णित अग्निहोत्र आदि सम्पादन करने वाला वेद-वेदांगों के अर्थ से पूर्णत: अवगत ब्राह्मण की अनुचान् संज्ञा थी। अनुचान् के सभी गुणों सं तथा यज्ञों का सम्पादन करने वाला भ्रूण कहा जाता था। वैयक्तिक एवं वैदिक दोनों प्रकार का ज्ञान रखने वाले की संज्ञा ऋषि कल्प तथा सन्यास आश्रम का जीवन व्यतीत करने वाला, वरदान अभिशाप देने मे समर्थ ब्राह्मण की संज्ञा परम ऋषि थी। जंगल में निवसते हुए कन्दमूल, फल का अशन करते हुए जीवन व्यतीत करने वालों को 'मुनि' नाम से अभिहित किया जाता था।[२०]

कथासरित्सागर का रचना काल ग्यारहवी शती का उत्तर भाग [१०६३-८९]

है। इस कालावधि पर्यन्त, भारतीय समाज, उसके संघटनात्मक स्वरूप और वर्ण-व्यवस्था में किंचित् शैथिल्य अवश्य आया अर्थात् प्राचीन काल मे व्यवस्थित वर्ण-व्यवस्था अद्यावधि यथावत् बनी रही तथापि कतिपय अभिवृद्धि के प्रमाण उपलब्ध होने लगे। अर्थ यह है कि ब्राह्मण, देश, निवास कुल गौत्र और शाखा-प्रतिशाखा के आधार पर भी अभिहित होने लगे। फिर भी ब्राह्मण की श्रेष्ठता पूर्ववत् मान्य थी। ब्राह्मण इस काल मे भी शास्त्र विहित अपने प्रमुख धर्म अध्ययन-अध्यापन का सम्पादन करता था। वह लोक संमानित रहा-देवता और ब्राह्मणो का पूजन कार्य साधनो के लिए कामधेनु के समान है। उसके पूजन से क्या नही प्राप्त हो सकता, अर्थात् सर्ववांक्षित प्राप्त हो जाता है।[२१] ब्राह्मण का परिचय उसके कुल तथा गोत्र के आधार पर जाना जाता था साथ ही उसके व्यवसाय, तथा वेद-वेदांगो के अनधीती होने से भी उसकी पूजा की जाती थी और दान दिया जाता था- देव यदि यह आप की सच्ची इच्छा है तो हंसी या विनोद की बात नहीं है तो मेरे दाता पिता से मुझे मांगे। इसके पश्चात् उसका कुलगोत्र, परिचय आदि पूंछकर उस मुनि ने जाकर उसके पिता सुषेण से मांगा।[२२]

ब्राह्मण को दान देकर स्वस्ति वाचन करने का अधिकार और ब्राह्मण की पूजाकर निज कल्याणार्थ वरदान प्राप्त करने की परम्परा कथासरित्सागर में पूर्ववत् प्रचलित रही। उसने उस पुरुषों को अक्षय देखकर ब्राह्मणों को वेद की संख्या में

दान देना प्रारम्भ किया, अर्थात् जो ब्राह्मण जितने वेद का ज्ञाता था, उतने हाथ उसे दान मे देने लगी। कुछ दिनों मे उसके दान की प्रसिद्ध चारो दिशाओ मे प्रसरित हो गयी। उसकी इस प्रसिद्धि को सुनकर संग्राम दत्त नामक ब्राह्मण पाटलिपुत्र से आया। वह दरिद्र और गुणी 'चतुर्वेदी ब्राह्मण' था। दान लेने के लिए द्वारपालों से निवेदन किये जाने पर वह उसके पास गया। उस मदनमाला ने कृश और विरह से पीले अंगों वाली ने, उस ब्राह्मण का, विधिवत् पूजन करके सोने की चार भुँजाएँ दान स्वरूप प्रदान की।[२३] इस काल मे दान का महत्व अपनी चरमसीमा पर था। पूरा का पूरा धन भी वेदाधीत ब्राह्मण को दान दिया जा सकता था। - राजा के वियोग को महन करती हुई मदनमाला भी अपने देश का त्याग कर और सम्पत्ति ब्राह्मणों को दान करके राजा के साथ पाटलिपुत्र जाने को उद्यत हुई।[२४] पूर्व के पृष्ठों मे यह उल्लेख हो चुका है कि आपत्काल मे अथवा विशेष स्थिति में जीविकोपार्जन हेतु अथवा सामाजिक संगठन और वर्णव्यवस्था एवं राष्ट्र की संरक्षा हेतु ब्राह्मण क्षत्रिय-धर्म का अनुसरण-अधिकारी है। ऐसे दृष्टान्त हमे कथासरित्सागर में भी उपलब्ध है- श्रीदत्त ब्राह्मण होकर भी, क्रमशः युवावस्था-प्राप्ति पर अस्त्र-शस्त्र की विद्याओ में तथा मल्ल विद्या मे अद्वितीय हो गया। तदनन्तर अवन्ति देश में पैदा हुए बाहुशाली तथा बज्र मुष्टि नामक दो क्षत्रिय श्री दत्त के मित्र बन गये। श्री दत्त ने राजकुमारों को मल्ल युद्ध में विजित करने वाले अन्यान्य गुणग्राही दक्षिण

देशवासी और मंत्रियो के पुत्र श्री दत्त के मित्र स्वयं बन गये। श्री दत्त ने राजकुमार को मल्ल युद्ध मे जीत लिया, अत: क्रोधावेग मे राजकुमार ने उसे मार डालना चाहा।[२५] इसी प्रकार एक स्थल 'यह देखते हुए श्रीदत्त ने मृगांक नामक खड्ग को खीचकर उसे मारने के लिए उठा। उधर उस स्त्री ने अपना रूप छोड़कर भीषण राक्षसी का रूप धारण कर लिया।[२६]

इस प्रकार के दृष्टान्त प्राय: ही आख्यानों के घटनाक्रम में अनुक्रमित परिलक्षित होते हैं- वह गुणशर्मा, शूरवीर और अति रूपवान् वेद-विद्याओ का पारगामी, युवक कलाओं तथा शस्त्र विद्याओं का ज्ञाता था। गुणशर्मा ने संयमित होते हुए रानी के साथ राजा को क्रमश: शस्त्रास्त्र विद्या भी दिखलायी। राजा ने कहा यदि तू युद्ध विद्या जानता है तो बिना शस्त्र हाथ मे लिए ही मुझ शस्त्रधारी को परास्त कर दे। तब गुणशर्मा ब्राह्मण ने कहा - महाराज आप शस्त्र लेकर मुझ पर प्रहार कीजिए, आपको मैं अपना कौशल दिखाता हूँ। तदनन्तर राजा ने तलवार आदि अस्त्रों से उस पर प्रहार करना प्रारम्भ किया, राजा जिस-जिस अस्त्र का उस पर प्रहार करता था, गुणशर्मा खेल के ही समान अपनी युक्ति से उसे छीन लेता था। इस प्रकार राजा के हाथ से अस्त्र छीनकर स्वयं अक्षय रहते हुए गुणशर्मा ने राजा को बांध दिया।[२७] पुन: द्रष्टव्य है- ब्राह्मण चन्द्रस्वामी ने दिव्यवाणी श्रवणकर पुत्र-जन्मोत्सव समाप्त होने पर उस शिशु का नाम महीपाल रख दिया, क्रमश: बड़ा होने पर

महीपाल को पिता ने अस्त्र, शस्त्र, वेद तथा अन्यान्य विद्‌याओं में समान रूप से शिक्षिप्त कर दिया।[२८] गुणशर्मा ने अक्षय धन-कोष प्राप्त कर उसके प्रभाव से प्रचुर मात्रा मे गजाश्व और पदाति सेना एकत्र कर एवं अन्य सहयोगी नृपतियो के सैन्यबल का सहयोग लेकर उज्जयिनी नगरी पर घेरा डाल आक्रमण कर दिया। उज्जयिनी पहुँचकर रानी अशोकवती, दुराचार प्रवृत्तिवाली है, यह घोषणाकर युद्ध मे राजा महासेन को पराजित कर राज्याधिकार हस्तगत कर लिया।[२९] वस्तुतः कथासरित्सागर एवं वृहत्कथामंजरी, राजतरंगिणी जैसी साहित्य रचनाएँ लगभग समकालीन है। तीनो में ही दशवीं-ग्यारहवीं शताब्दी के समग्र समाज और तत्समय की राजनीति व्यवस्था का अंकन प्राप्त होता है। घटनाक्रम संबंके सब, समाज और उसकी व्यवस्था से अनुक्रमित होकर अवतरित होते है। ब्राह्मण अध्ययन, अध्यापन के अतिरिक्त मानवोत्थान, लोककल्याण और राष्ट्र-संरक्षण हेतु आवश्यकता पड़ने पर वेदादि, विद्या के साथ ही शस्त्रास्त्र कलाओं में भी विख्यात हुए।

'कथासरित्सागर' गुणाढ्‌यकृत 'वृहत्कथा का संस्कृत भाषान्तर है, अतः इसमे समायोजित आख्यान किसी क्षेत्र विशेष वर्ग विशेष अथवा राजकुल विशेष के न होकर वृहत्तर देश के हैं। वृहत्तर समाज के है। विभिन्न लोकों की कथाएं हैं। इसमें अधिकतर कथा गुच्छ मध्यदेशीय भूमि के लोककथा गायकों की कृतियाँ हैं। बहुत सी कथाएँ विषय एवं प्रत्याख्यापन की दृष्टि के बुद्धकथा, जातक आख्यानों के समुतल्य

है। जातक कथाएँ मध्य देशीय लोकाख्यानो से ही बुद्ध-सिद्धान्तो के प्रतिपादन क्रम मे संयोजित की गयी है। स्पष्ट है कि इन कथाओ मे कथा के घटनाक्रमो मे तत्समय के वृहत्तर समाज का धर्म, उसकी परम्पराएं, तत्कालीन उथल-पुथल का भी सहज अंकन मिलता है। उस काल में ब्राह्मण वर्णव्यवस्था का नियामक, प्रतिस्थापक और संरक्षक के रूप में सर्वमान्य था। उसका दायित्व समाजधर्म, राष्ट्रधर्म दोनों के ही प्रति समान था। तत्कालीन समाज और राजधर्म व्यवस्थापन में ब्राह्मण के बहुपक्षीय कार्यकलापों का सम्यक् विवेचन अपर्णा चट्टोपाध्याय ने सविस्तार किया है, उनका यह विवेचन कथासरित्सागर, वृहत्कथामंजरी दोनों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत हुआ है।[३०] वहाँ ब्राह्मणो के निजधर्म वेदाध्ययन-अध्यापन प्रतिग्रह आदि कार्यो से अतिरिक्त क्षत्रिय, वैश्य आदि के धर्मानुसरण के भी दृष्टान्त है। हम यह उल्लेख कर चुके है कि 'वृहत्कथामंजरी' एवं 'कथासरित्सागर' ही नही अपितु कल्हणकृत 'राजतरंगिणी' समकालीन रचनाएँ है। अत: तीनो ही कृत्यो में समान रूप समान प्रकृति के वर्णन प्राप्त होते हैं।

वृहत्कथामंजरी मे भी अस्त्र-शस्त्र संचालन परिचालन रण-कौशल में ब्राह्मण वर्ग द्वारा दाक्षिण्य सम्प्राप्त करने से सम्बन्धित विलक्षण प्रकृति के विभिन्न घटनाक्रमानुक्रमित आख्यान सहज ही प्राप्त होते हैं। शस्त्राशस्त्र संचालन में पटु ब्राह्मणों की कथाएं अत्यन्त रोचक एवं कौतूहलोत्पादिनी है।[३१] राजतरंगिणी में ब्राह्मण मातृगुप्त के शौर्य

पराक्रम से प्रभावित होकर सचिवो ने उसे राज्याभिषिक्त कर कश्मीर का राज्य शासन दायित्व सौपा था। धीरे-धीरे जनसमूह एकत्र होने लगा, प्रतीत होता था उस स्थान पर मानव समुदाय का क्षुब्ध-सिन्धु लहराने लगा। तद्नन्तर एक सिंहासन पर पूर्वाभिमुख बैठाकर उन मन्त्रियों ने मातृगुप्त का अभिषेक कर दिया। उस समय उसके विशाल वक्षस्थल से बहने वाला अभिषेक-जल विन्ध्यपर्वत के तट से टकराकर गर्जन करते हुए बहने वाले नर्मदा नदी के प्रवाह जैसा सुन्दर प्रतीत हो रहा था। इस प्रकार स्नानोपरान्त उसके शरीर पर दिव्य चन्दन लगाकर सभी अंगो को आभूषणों से अलंकृत किया गया। तत्पश्चात् जब वह राज्य सिंहासन पर विराजमान हुआ तो प्रजाजन ने उद्घोष किया- 'कश्मीर देश के रक्षणार्थ हम लोगों ने महाराज विक्रमादित्य से प्रार्थना की थी- तद्नुसार उन्होंने अपने ही अनुरूप आपको इस कार्य-हेतु नियुक्त किया है। अतएव अब आप सुचारू रूप से इस धरती पर शासन करे।[३२]

इसी प्रकार शस्त्रास्त्र-संचालन में पटु शूर-वीर युद्ध विशारद ब्राह्मणों के अन्य प्रसंगों का भी राजतंरगिणी में उल्लेख है, वीर, शौर्य-मंडित तथा विद्वान् पण्डित तिव्य नामक ब्राह्मण रामदेव तथा कर्नाटक देश निवासी केशी ने तीन बार शत्रु पक्ष वालों के हाथों मारे गये। इनमें से कितने ही लोगो ने हथियार डाल दिये। कितनों ने आत्महत्या कर ली, कितने मार डाले गये। और कितने ही कायर बन्दी बना लिये गये। जब सेना भाग गयी तब सैनिक शास्त्र का परम् विद्वान् कल्याणराज

नामक ब्राह्मण लड़ने लगा और रण मे मारा गया। मंत्री डामरो और सामन्तो तथा राजा सुस्सल की सेना के असंख्य शस्त्रधारियो को पृथवीहर ने बन्दी बना लिया तदनन्तर उसने वितस्ता के तट पर भागी हुई सेना का पीछा किया तथा भोजानन्द आदि ब्राह्मणो को बन्दी बनाकर सूली पर चढ़ा दिया। लवराज तथा यशोराज दोनो ब्राह्मण कसरती थे अत: दो वह, एवं राजा कान्द तीन व्यक्ति सत्यत: अपने पराक्रम प्रदर्शित करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। राजा भोज ने एक दु:खी ब्राह्मण को देखा वह कराह रहा था। रण मे उसके शरीर पर अनेक घाव हो गये थे और उससे स्रवित रुधिर सूख गया था। उसके केश कटे हुए थे, मुँह से फेन फेकता हुआ वह जोर-जोर से क्रन्दन कर रहा था। भोज ने रुदन का कारण पूछा तो उसने कहा विप्लवी डामरों ने मेरा सर्वस्व लूट लिया और मुझे मार-मार कर घायल कर डाला ऐसा कहता हुआ वह आत्मरक्षा मे असमर्थ समझ कर अपनी निन्दा करने लगा[३३] समकालीन इन तीनों- कथासरित्सागर वृहद्कथामंजरी एवं राजतरंगिणी मे सबसे अधिक मल्ल विद्या और अस्त्र-शस्त्र विद्या में निपुण ब्राह्मण साहसी युवकों का उल्लेख हुआ है।

क्षेमेन्द्र की कृति वृहत्कथामंजरी गुच्छक पाचवीं- विदूषक की कथा एवं कथासरित्सागर की तरंग अठारह की वीर विदूषक ब्राह्मण की कथा लगभग समान रूप और समप्रकृति की है। कथासरित्सागर का विदूषक न केवल अस्त्र-शस्त्र संचालन

मे निपुण है, अपितु परम साहसी है जिसने श्मशान में अकेले जाकर तीन चोरो की नाके काट डाली, राजकुमारी की प्राण की रक्षा राक्षस से की, विकराल राक्षस का वध किया और अन्त मे धन संपत्ति और राजकुमारी का पति बना- 'मै यह कार्य करता हूँ रात में श्मशान से उनकी नाक काटकर लाता हूँ। रात आने पर उन ब्राह्मणों से कहकर विदूषक श्मशान मे गया। स्मरण करते ही उपस्थित होने वाले खड्ग को लेकर अपने कार्य के ही सदृश भयावह श्मशान में गया। डाकिनी, शाकिनी आदि के शब्दो से पूर्ण, गीध एवं कागो के शब्दो से भयावह मुंह से उगलते हुए गीदडो की अग्नि ज्वाला से फैलती हुई चिताग्नि के कारण भयोत्पादक उस श्मशान के बीच उसने सूली पर चढ़े हुए, नाक कटने के भय से मानो ऊपर की ओर मुँह किये तीन चोरो को देखा। विद्षक जब उनके समीप पहुँचा तो वेतालाक्रान्त वे तीनों मुर्दे उसे मुक्को से मारने लगे उसी बीच विदुषक ने अपनी खड्ग का प्रहार किया। वेताल छोड़कर भाग गये। विदूषक ने तीनो चोरो की नाक काट ली और एक वस्त्र-खण्ड मे बांध लिया।[३४]

इसी प्रकार अशोकदत्त का आख्यान-अशोकदत्त युवक हो गया एवं मल्ल विद्या की शिक्षा प्राप्त करने लगा। धीरे-धीरे वह मल्लविद्या में निपुण हो गया। संसार में कोई भी मल्ल युद्ध में उसको परास्त करने में असमर्थ रहा।[३५] 'कथासरित्सागर' में संग्रहीत विभिन्न आख्यानों में तत्कालीन समाज व्यवस्था का स्पष्ट रूप चित्रित

हो उठता है। वर्णव्यवस्था के शिव-अशिव दोनो पक्ष अंकित है। वर्ण व्यवस्था के मूर्धन्य ब्राह्मण को सर्वश्रेष्ठ सर्वमान्य, लोकसंपूज्य वर्णित किया गया है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उसमें सभी गुण ही गुण है। ब्राह्मणों को पौरोहित्य कर्मानुष्ठान करनेवाला भीरु, वेदपाठी भी कहा गया है, और काम क्रोध का घर भी कहा है। यत्र-तत्र तो उन्हें हास्य की मूर्ति बना दिया गया है - एक वैदिक ब्राह्मण चतुरिका, वैश्या के यहाँ गया और तुम आज सुवर्ण को लेकर मुझे सांसारिक व्यवहार सिखाओ। कहकर उसने आठ मासा सोना उसे अर्पित किया। यह सुनकर वहॉ बैठे जन हंसने लगे। उन सबको हंसता देखकर, मूर्ख वैदिक ब्राह्मण, दोनो हाथों को गौ के कान सदृश खड़ा करके, उन पर अंगुलियो को नचाता हुआ इतनी ऊंची आवाज में सामवेद पढ़ने लगा कि आस-पास के सभी वेश्या दल्लाल उसका तमाशा देखने के लिए वहां आकर एकत्र हो गये। कहने लगे- यह सियार यहाँ कैसे घुस आया? इसे जल्दी से अर्द्धचन्द् (गरदनिया) देकर बाहर निकालो।[३६] इसी प्रकार यह श्मशान का रक्षक सिपाही है या चोर 'कहकर मठवासी उन ब्राह्मणो को राजा ने अन्दर आने से रोका। इस प्रकार लड़ते-झगड़ते वे लोभी और निष्ठुर ब्राह्मण मठ के बाहर निकल आये क्योकि वेदपाठी ब्राह्मण प्रकृति से ही, भय, निष्ठुरता तथा क्रोध की भूमि होते है।[३७]

ब्राह्मणो के लोभ, भयातुरता, क्रोध आदि स्वभावगत गुणो की चर्चा 'कथासरित्सागर'

मे प्राय: उपलब्ध होते है- जिस प्रकार आंधी निर्मल जलवाले तालावो को क्षुब्ध कर डालती है। उसी प्रकार क्रुद्ध तथा विद्वान् गुरु ने बिना विचारे अति क्रोध मे मेरे विरुद्ध भयंकर व्यवहार किया। यह भी बात है कि इस सृष्टि के आरम्भ काल में ही मोक्ष मार्ग के विरोधी काम और क्रोध ब्राह्मणो मे दैवयोग से प्रकृति-सिद्ध होते है। काम, क्रोध आदि छह शत्रुओ से ठगे हुए ऋषिगण भी जब मोहित हो जाते हैं तो वेदपाठी ब्राह्मण की तो बात ही क्या?[३८] इतना ही नही ब्राह्मण को शिवत्व प्रदान करने वाला भी वर्णित किया गया है- 'धनी धन दत्त पुत्रहीन था अत: उसने बहुत से ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हें प्रणाम करके निवेदन किया कि आप लोग ऐसा उपाय करें, जिससे मुझे पुत्र प्राप्त हो जाय। यह सुनकर ब्राह्मणों ने कहा- यह कोई कठिन काम नही है। ब्राह्मण लोग वैदिक कर्मों से सभी दुष्कर कार्यो को सुकर बना सकते है। प्राचीन काल में एक पुत्रहीन राजा था, उसकी एक सौ पांच रानियॉ थी। पुत्रेष्टि यज्ञ करने के पश्चात् राजा के घर जन्तु नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। जो सभी सौतों की आंखों के लिए द्वितीया के चांद-सदृश था।[३९]

'कथासरित्सागर' तथा तत्समकालीन भारतीय साहित्य के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि भारतीय प्राचीन वर्णव्यवस्था एवं तदनुसार विनिश्चित वर्णो के अधिकार, कर्तव्य, सुविधाएं एवं व्यवसाय आदि में, कतिपय परिवर्तन अवश्य आये, तथापि परम्परा

पूर्णतः शिथिल नहीं होने पायी थी। ब्राह्मण समाज को दिशा निर्देश देने वाला, सर्वश्रेष्ठ, सम्मान्य था। उच्चजन्मा होने के परिणाम स्वरूप उन्हे विशेष सुविधाएँ ही नही विशेषाधिकार भी प्राप्त था। प्राचीन व्यवस्थानुसार ब्राह्मण अवध्य रहा, इसके दृष्टान्त कथासरित्सागर में भी सहज ही उपलब्ध होते हैं- 'राजानन्द' मेरा इन्द्रदत्त नामक मित्र है और ब्राह्मण है। अतः वह भी मेरे लिए बध्य नहीं है।[४०] कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे राज्यापराधी ब्राह्मण को भी न्यायोचित परिसीमा के अन्तर्गत ही मुक्ति अथवा दण्ड देने का निर्देश दिया है। ऐसे दृष्टान्त भी कथासरित्सागर के समसामयिक साहित्य राजतरंगिणी मे मिलते है। मुज्जि' जब पाण्डव राज्य मे था तो वहाँ किसी ब्राह्मण ने उसके प्रति कटुवचन कहा था, अत· उसके अनुयायियो ने उस ब्राह्मण का सर्वस्व लूट लिया तथा सियार की भांति उसे मार डाला। किन्तु वही ब्राह्मण के प्रति लोक प्रतिष्ठा का भी उल्लेख है।- यद्यपि यह कुकर्म उसने नगर के बाहर किया था, तथापि इसमें नगर के लोगो मे उसके प्रति घृणा की भावना भर गयी।[४१] तत्कालीन साहित्य में धूर्त, लोभी, कर्मच्युत, ब्राह्मणों के भी उल्लेख मिलते हैं- 'लोष्ठक नाम का एक ग्राम देवज्ञ (गंवार ज्योतिषी), मूर्ख ब्राह्मण एक-एक मुट्ठी अन्न के लिए भिक्षाटन कर भरण-पोषण करता रहा। सहसा ग्राम क्षेत्रपाल की अनुकम्पा से उसे मुट्ठी में रखी हुई वस्तु का ज्ञान हो गया। इस कारण उसका नाम मुष्ठिलोष्ठक पड़ गया। वह लोगों के सब कार्य कर देता था।

प्राय: रात्रिकाल में भी निशाचर के समान इतस्तत: घूमता रहता था। वह धीरे-धीरे गुरु, देव एवं कुट्टन आदि विशिष्ट गुणों के फलस्वरूप नृपति कलश का अतिप्रिय पात्र बन गया।[४२] ब्राह्मणों को नृपतियो द्वारा उच्च पदो पर प्रतिष्ठित कर उन्हें न्याय, शासन करने के विशिष्ट अधिकार प्रदान किये जाने का भी उदाहरण है। - पार्थ नामक ब्राह्मण अत्यन्त दुर्बुद्धि था, सबको मालूम रहा कि वह अपने बन्धु के पत्नी से अवैध सम्बन्ध रखता है, तथापि अविचारी नृप ने उसे नगराधिकारी पद पर प्रतिष्ठित किया।[४३] कथासरित्सागर एवं तत्सामयिक साहित्य के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन वर्ण-व्यवस्था में विहित उच्च वर्ण ब्राह्मण की स्थिति-परिस्थिति एवं अधिकार-कर्तव्यों की प्रतिष्ठा मे शिथिलता आने लगी थी।

क्षत्रिय

भारतीय सामाजिक-संघटनान्तर्गत वर्णव्यवस्था के क्रम मे दूसरा स्थान क्षत्रिय का है। वैदिक पुरुष सूक्त के सन्दर्भ में कहा गया है 'ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद वाहूराजन्यकृत:' भी यही संकेत देता है। बाहु से उत्पत्ति होने के कारण क्षत्रिय मे शौर्य बल का होना सहज है। सामाजिक अस्तित्व एवं इयत्ता-प्रतिस्थापनार्थ बुद्धि-विवेक और बलपौरुष दोनों का समन्वयात्मक सहयोग परिकल्पित किया गया है। सामाजिक विकास एवं अभ्युत्थान की दृष्टि से दोनो वर्ण ब्राह्मण तथा क्षत्रिय की पारस्परिक सहकारिता प्रारम्भिक

प्राचीन युग मे अनुभव की जा टुकी थी। इस परिकल्पना एवं चिन्तन पर भारतीय राजव्यवस्था का निर्माण और अस्तित्व बना। मनु ने कहा है- जल से अग्नि, ब्राह्मण से क्षत्रिय, पत्थरो से अस्त्र-शस्त्र उत्पन्न हुए। इससे इनका तेज सर्वत्र [illegible] होते हुए भी अपने-अपने उत्पत्ति स्थान मे पहुँचकर शान्त हो जाते है। ब्राह्मणो के बिना क्षत्रिय की और क्षत्रियों के बिना ब्राह्मण की कभी अभिवृद्धि नही होती, परन्तु ब्राह्मण तथा क्षत्रिय के सहयोग से इहलोक एवं परलोक मे उनकी वृद्धि निश्चयतः होती है। अतः नृपति के लिए आवश्यक है कि वह दण्ड से प्राप्त हुआ धन ब्राह्मणों को देकर एवं पुत्र को राज्य सौंपकर रणभूमि में प्राण विसर्जित कर दे।[४४]

क्षत्रिय के स्वाभाविक गुण, शौर्य, तेज, घृति, दान और ईश्वरता है। उनका एक प्रमुख कार्य चर्तुवर्णों की रक्षा करना रहा। धन के हेतु युद्ध करना क्षत्रिय के लिए अत्यन्त श्रेयस्कर है। असाधुओ का नियंत्रण और धर्मचारियों की रक्षा उनका प्रमुख कर्तव्य है।[४५] वर्ण व्यवस्थानुसार सामान्यतः क्षत्रिय, ब्राह्मण, वर्ण के पश्चात् सर्वोच्च वर्ण मान्य था। समाज एवं राष्ट्र धर्म के रक्षार्थ युद्ध करना एवं शत्रु वर्ग पर विजय प्राप्त करना, क्षत्रियों का श्लाध्य कर्म माना जाता था।[४६] कथासरित्सागर के रचनाकाल तक भारतीय समाज एवं राष्ट्र की स्थिति में कुछ परिवर्तन आ रहा था। सभी क्षेत्रों में व्यवस्था शिथिल पड़ रही थी। मुसलमानों की शक्ति में विस्तार आने लगा था। कदाचित् जैन बौद्ध धर्म के अहिंसात्मक सिद्धान्तों के परिणामस्वरूप

क्षत्रियों की युद्ध विषयिणी प्रवृत्ति आघातित होने लगी थी तथापि क्षत्रिय वर्ण ने अपने प्रमुख धर्म अर्थात् समाज एवं राष्ट्र-धर्म रक्षण को विस्मृत नहीं किया। वह उसे संरक्षित किये रहे। इस युग में सामन्तवादी परम्परा पर्याप्त रूप से बढी। यद्यपि भारत मे गुप्तकाल से ही यह प्रथा देखी जा रही थी तथापि हर्षोत्तर काल में ही सामन्तवाद ने विकेन्द्रित करना प्रारम्भ कर दिया। फलत: भारत कथासरित्सागर के समय अनेक लघु राज्यो मे विभक्त हो गया था।

सामन्त अपने संकुचित मनोभावो की सिद्धि के लिए कदाचित् ही किसी गर्हित कार्य को शेष रहने देते थे। उनके राजनय का परम लक्ष्य अपने ही लघु राज्य को सुरक्षित रखना था। इस समय देश मे भक्ति तथा राष्ट्रीय भावना का लोप हो चुका था।[४७] विधिसंग्रह एवं व्यवस्थाकारो ने क्षत्रियो के लिए जो धर्म-कर्तव्य विहित किये थे, उनमे प्रमुख रहे - देवाराधन, वर्णधर्म, समाज व्यवस्था और प्रमुख रूप से ब्राह्मण को संरक्षित करना। वेदाध्ययन तथा यज्ञादि क्षेत्र मे ब्राह्मणो की ही भांति वह भी संलग्न रहे। हां वेदाध्ययन करे,। परन्तु वह वेदाध्यापन नहीं कर सकते।[४८] शासनकार्य, शासन संचालन भी क्षत्रियवर्ण का धर्म है। अत: समुचित व्यवस्था-निमित्त यह आवश्यक था कि क्षत्रिय भी ब्राह्मण की ही भांति वेद, धर्मशास्त्र, उपवेद और पुराणों के विधि-निषेधों का अनुशरण एवं अनुगमन करे।[४९] आचार्य कौटिल्य के मत में क्षत्रिय के प्रमुख कर्तव्यों में अध्ययन, यजन, दान, शस्त्राजीव तथा भूतरक्षण है।[५०]

कथासरित्सागर के रचनाकाल की अवधि में जहॉ नृपतिगण शूरवीर युद्धप्रिय रहे, वही वह अनेकश: विद्याधर्म व्यवसनी भी होते रहे। ऐसे कतिपय दृष्टान्त हमें कवि कल्हण की राजतंरगिणी मे सहजत: उपलब्ध होते है- विस्तता के तट पर उसने जिस शिवलिंग की स्थापना की थी, उसे देखकर गंगातट पर विद्यमान विमुक्ततीर्थ (काशीं) का स्मरण सहजत: होता था तपस्वियों से विभूषित उसके मठ को देखकर रूद्रलोक के अवलोकन का कौतूहल शान्त हो जाता था। उस शुद्ध-बुद्धि पुरुष ने गरीवों से धन लेकर उस समय अन्यान्य प्रतिष्ठानों की नीव नही रखी। सेनापति उदय की पत्नी चिन्ता ने भी एक विहार बनवाकर वितस्ता सरित् की तट्वर्तिनी भूमि को विभूषित किया।[५१] कथासरित्सागर-काल तक क्षत्रियों के बहुसंख्यक कुल और शाखाएँ पल्लवित हो गये थे। राजपूत अथवा राजपुत्र लोकप्रिय हो रहा था। कथासरित्सागर मे राजपूत को वीर, रक्षक की संज्ञा से अभिहित किया गया है।

राजतरंगिणी में लगभग छत्तीस प्रकार के राजपूत वर्णित किये गये है, जिन्हे वर्णाश्रम रक्षक कहा गया है। स्थल-स्थल पर कथासरित्सागर मे शौर्य एवं पराक्रम के उद्धरण उपलब्ध होते हैं- अब उसके मन मे निकटवर्ती सेवको पर भी विश्वास नहीं रह गया था। वहाँ से चलकर वह प्रदयुम्न तीर्थ की पहाडी पर जा पहुँचा। जहाँ से आगे बढने पर उसके साथ बहुत थोड़े सेवक रह गये। जो छत्तीस उच्चतम कुलों में उत्पन्न होने के कराण उत्तम, तेजस्वी और प्रभावशाली क्रम से भी अपने

को श्रेष्ठ मानते थे, वे ही अनन्तपाल आदि राजपुत्र शाम को अंधेरा होते ही अपने घोड़े सँभाल तथा राजा हर्ष को राह मे ही छोड़कर भाग गये।[५२] कथासरित्सागर मे शौर्य सम्पन्न एवं पराक्रमशील क्षत्रियो की चर्चा मिलती है- हे पिता! मुझे अनुमति दे। मै दिशाओं को विजय करने जा रहा हूँ, क्योकि पृथिवी विजित करने की इच्छा न करने वाला राजा उसी प्रकार प्रिय नहीं होता, जैसा स्त्री को नपुंसक पुरुष प्रिय नहीं होता। राजा की वही राजलक्ष्मी धर्मशीला और कीर्तिदायिनी होती है जो परराष्ट्रों को जीत कर अपने बाहुओं के बल पर प्राप्त की जाती है। हे पिता, उन क्षुद्र राजाओं के राज्य क्या है? जो लोभी बिलाव के सदृश अपनी उन्नति के लिए अपनी ही प्रजा को खाते रहते है। सुनकर पिता सागरवर्मन् ने कहा- बेटा, तुम्हारा राज्य अभी नया है, अतएव पहले इसे ही ठीक करो, धर्म से प्रजाओं का पालन करने वाला राजा पापी या निन्दनीय नही होता। अपनी शक्ति और सामर्थ्य को बिना देखे-समझे समस्त राजाओं से विरोध लेना उचित नहीं। देखो, यद्यपि तुम शूरवीर हो विजय लक्ष्मी अस्थिर होती है। पिता के इस प्रकार कहने पर तेजस्वी समुद्रवर्मा पिता से आज्ञा लेकर दिग्विजय निमित्त प्रस्थित हो गया। तद्नन्तर क्रमश: दिशाओं को जीतकर और राजाओं को वश में करके बहुत से हाथी, घोड़ा, सेना, रत्न आदि प्राप्त करके अपने नगर को वापस आ गया।[५३] मध्यकालीन इतिहास से ज्ञात होता है कि नृपति का समाज राष्ट्र और प्रमुखत: वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करना

उनका परम धर्म रहा है। स्पष्ट है कि इस काल मे प्राचीन वर्णाश्रम-व्यवस्था की परम्परा से नृपतिगण एवं समाज समग्र पूर्ण अवगत रहा और वह परम्परा अक्षुण्ण थी। क्षत्रिय समाज एवं राजा वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करने सम्बन्धी निजधर्म के प्रतिसजग एवं तत्पर था। नृपति वर्णाश्रम धर्म के रक्षक के रूप मे लोकमान्य था। कथासरित्सागर मे क्षत्रियो और राजा को वर्णाश्रम धर्म के संरक्षक-स्वरूप मे वर्णित किया गया है- वह तो तुम्हारे लिए दण्ड देने योग्य है। हे पिता! तुम तो वर्णो तथा आश्रमो के रक्षक एवं धर्म के प्रति पालक हो।

मध्ययुगीन भारतीय इतिहास के अध्ययन से साक्ष्य प्राप्त होता है कि- कथासरित्सागर के रचनाकाल तक क्षत्रियो का दो वर्ग प्रतिश्रुत हो चुका था। प्रथम वह था, जो नृपति वर्ग रहा, अथवा उससे सम्बद्ध कुल था। दूसरा वर्ग वह जिसका धर्म एक मात्र संग्राम भूमि में अपना शौर्य और पराक्रम का प्रदर्शन करता था, जो योद्धा की संज्ञा से अभिहित होता रहा। जैसा कि श्री वासुदेव उपाध्याय ने 'सोशियो इकोनामिक हिस्ट्री आफ इण्डिया'[५४] में उल्लेख किया है। इसी के साथ यह भी उल्लेखनीय है कि कतिपय यवन इतिहासकारों के द्वारा यह क्षत्रियों का योद्धा वर्ग 'ठाकुर' की भी संज्ञा से अभिहित किया गया है। कथासरित्सागर एवं तत्कालीन अभिलेखीय साक्ष्य भी इसकी पुष्टि करते हैं। प्रतीत होता है यह 'ठाकुर' शब्द प्राचीन काल से परम्परित चला आ रहा था। राजतरंगिणी और कथासरित्सागर

राजपूतो के लिए वेतन की व्यवस्था का संकेत देती है। इतना ही नही राजा या वेतन ग्रहण करने वाले कर्मचारियो में 'ठाकुर' अर्थात् योद्धा वर्ग का उल्लेख सर्वप्रमुखता के साथ किया गया है।[५५] एपीग्राफिया इण्डिका मे भी क्षत्रिय को क्षात्रधर्म सम्बंधी तथा विशिष्ठ राजपुरुष आते थे। तत्कालीन समाज में इनका प्रमुख स्थान था। दूसरा वर्ग सैनिकों तथा योद्धाओं का था। राजा की सुरक्षा के लिए सेना में इनकी नियुक्ति की जाती थी।[५६]

संस्कृत साहित्य के काव्यो मे वर्णित युद्ध मे सैनिको अथवा योद्धाओं के रूप में एक शब्द 'हूण' भी उपलब्ध होता है। यह 'हूण' पराक्रमी योद्धा के रूप में उपस्थित होता है।[५७] इस 'हूण' योद्धा को कथासरित्सागर का रचयिता सोमदेव भट्ट 'म्लेच्छ' शब्द से अभिहित करता है -

'वहॉ पर घोडो की सेना से युक्त उदयन ने सिन्धु राज को वश मे करके म्लेच्छों का इस प्रकार संहार किया जैसे राम ने राक्षसो का किया था। महाराज उत्तर दिशा यद्यपि प्रशस्त है किन्तु म्लेच्छो के सम्पर्क से दूषित है।[५८] जैसा कि उल्लेख़ किया गया है कि इस काल में प्रमुखत: क्षत्रियो के दो वर्ग- एक राजा अथवा उससे सम्बद्ध राजपुरुष दूसरा योद्धा का। कथासरित्सागर में क्षत्रिय के इन दो वर्गो का अंकन प्राप्त होता है। योद्धा एवं सैनिक धर्म का निर्वाह करने वाला क्षत्रिय वर्ग विजयी बने। प्रसन्न होकर अपनी सेना लेकर राजा चमरवाल शत्रु के

सम्मुख पहुंचना था। शत्रु की सेना मे तीस हजार हाथी, बीस लाख घोड़े एवं एक करोड़ पदाति बल था। उसकी अपनी सेना मे बीस लाख पदाति बल, दस हजार गज, ·एक लाख घोड़े थे। दोनो सेनाओ के मध्य भीषण संग्राम प्रारम्भ होने पर नृप का वीर अंगरक्षक अग्रसर था। तत्पश्चात् नृपति चमरवाल भी समुद्र मे महावाराह के समान सेना के मध्य प्रविष्ट हो गया। सामान्य सैन्य बल होते हुए भी शत्रुसेना में भीषण संहार मचा दिया। हाथी घोड़ों के संग पदाति सेना के शवों से रणभूमि व्याप्त हो गयी।[५९] ऐसे प्रजापालक यशस्वी राजाओं का अंकन प्राप्त होता है जो अपना धर्म ही शास्त्रास्त्रों के साथ क्रीडा करना और समाज, राष्ट्र और वर्णाश्रम के संरक्षण मे तत्पर रहना परमधर्म मानते थे- राजा कनकवर्ण यश का लोभी था, पाप से डरता था, शत्रुओ से नही। पर निन्दा मे मूर्ख था, शास्त्रों मे नही। जिस महात्मा नृप के क्रोध में न्यूनता थी प्रसन्नता में नही तथा जिसकी मुट्ठी धनुष में बँधी रहती थी, दान में नहीं। जिस आश्चर्यजनक सैन्दर्यशाली एवं संसार की रक्षा करने वाले राजा के दर्शनमात्र से सुन्दरियाँ कामवेदना से विह्वल हो उठती थी।[६०]

एक संग्राम स्थल का दृश्य- दोनो सेनाओं के मध्य शस्त्र की वर्षा प्रारम्भ होने पर शौर्याभिमानी राजा स्वयं हाथी पर आरुढ़ होकर सेना में प्रविष्ट हो गया। मात्र धनुष लेकर शत्रु की सेना मे प्रविष्ट देख विक्रम सिंह के ऊपर पांचो महाभट्ट आदि राजा एक साथ ही टूट पड़े।[६१]

'क्षत्रियस्य परमोधर्मः प्रजानामेवपालनम्' (मनु० ७/१४४)। प्रजाजन का पालन करना ही क्षत्रिय का परम धर्म है। ऐसे क्षत्रिय नृपतियो के अंकन हमे कथासरित्सागर मे अनेक स्थलों पर संप्राप्त है। प्रजा जन की रक्षा के लिए शस्त्रास्त्र मे निपुणता, युद्धार्थ तत्पर रहना, विजिगीषु होना नृप का मुख्य गुण है। एक नृप का निज पुत्र को दिये जाने वाले उपदेश मे सम्पूर्ण क्षत्रिय धर्म को कवि सोमदेव भट्ट ने समायोजित कर दिया है- 'वत्स चन्द्रावलोक तुम धर्म से प्रजा की रक्षा करो, शत्रु विनाश हेतु चेष्टाशील बनो एवं युद्धोपयोगी गजाश्वादि के अभ्यास से चंचला लक्ष्मी का साधन करो। राज्यसुख भोगों, धन का दान करो और दिगदिगन्त मे अपने यश का प्रसार करो। काल की क्रीडा सदृश हिंसक मृगया के इस व्यसन को तुम छोड़ दो।[६२] विजय के अभिलाषी को सर्वप्रथम करणीय तथा अकरणीय कार्यों का अन्तर मालूम कर लेना चाहिए। जो कार्य उपाय से न सिद्ध हो सके उस कार्य को अकरणीय मान कर त्याग देना चाहिए। जो कार्य उपाय से सिद्ध हो सके वही वरणीय है।[६३] इसी प्रकार उत्तमोत्तम शूरवीर और अनुचर नरवाहनदत्त को चारों ओर से घेरकर चल पड़े। उसके भय रहित भक्त तथा सेनापति हरिशिख का अनुसरण करने वाले गन्धर्व राज एवं विद्याधरराज सुन्दर दृष्टिवाली अपनी माता धनवती सहित चण्डासिंह वीर पिंगल गांधार बलवान् वायुपथ, विद्युत्पुंज अमितगति कालकूट पर्वत के स्वामी मन्दर महादंष्ट्र, उनके मित्र अमृतप्रभ, सागरदत्त- सहित वीर चित्रांगद वे सभी तथा गौणमुण्ड

के आश्रित जो भी थे, समस्त लोग भी अपनी-अपनी सेनाओ से समद्ध होकर, विजयाभिलाषी नरवाहनदत्त के साथ प्रस्थित हो गये।[६४] नृपति को प्रत्येक क्षण राजधर्म के प्रतिपालन एवं समरोत्सुक रहना चाहिए ऐसे ही राजा के साथ लक्ष्मी निवास करती है, निरुत्साही के पास कथमपि नहीं। कथासरित्सागर में इसी अर्थ बोध का एक सुन्दर अंकन है- 'हे पुत्र! आलसी राजा मंत्र में अभिभूत सर्प के समान विनष्ट हो जाते हैं विंनष्ट हो जाने के पश्चात् फिर उसका अभ्युदय, असम्भव हो जाता है। सुख भोग करते हुए तुमने अब तक विजय की कामना नहीं की। अत: मेरे जीवन काल में ही आलस्य का त्यागकर तदर्थ-उद्योगशील बनो। तुम जाओ बढ़कर हमारे शत्रु अंग के राजा को विजित करो, जो हमारे राज्य पर आक्रमण करने के लिए अपने देश के बाहर निकल कर प्रस्थान कर चुका है।[६५]

क्षत्रिय नृप का धर्म वर्णाश्रम धर्म की रक्षा, वेदादि अध्ययन-अध्यापन और ब्राह्मणो की रक्षा करना है। म्लेच्छों द्वारा सदा वेद मंत्रो मे उपस्थित होने वाले व्यवधानों से उनकी संरक्षित रखना भी था। कथासरित्सागर के रचनाकार को इसका भी अनुभव था। उसने अंकित किया- 'भूलोक म्लेच्छों से आक्रान्त हो गया है और वषट्कार रूप मंगल से (मंगलप्रदायक यज्ञ कर्मो में वेद मंत्रों के उच्चारण से) शून्य हो चुका है। अत: यज्ञ में मिलने वाले अपने भागादि के बन्द हो जाने से देवगण कष्ट में पड़े हुए हैं।[६६] इस प्रकार कथासरित्सागर का अध्ययन हमें संकेत करता

है कि उस काल मे क्षत्रिय वर्ग वर्ण-व्यवस्थान्र्गत विहित निज धर्म के सम्पादन में सतत् संलग्न रहा। नृपति भी थे, सामन्त भी और योद्धा, शूरवीर सैनिक भी।

वैश्य

प्राचीन वर्ण व्यवस्थानुसार समाज मे वैश्य तृतीय वर्ण के रूप मे मान्य और प्रतिष्ठित रहा। पुरुषसूक्त के अनुसार 'उरुतदस्य यद् वैश्य: उरुसे वैश्य की उत्पत्ति हुई। अर्थात् यह तीसरा वर्ण है। आपस्तम्ब का भी कथन है- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रवर्णो मे प्रत्येक पूर्वगामी वर्ण अनुगामी वर्ण से जन्मत: उच्चतर है।[६७] ऐसा ही प्रकारान्तर कथन गौतम और मनु का भी है - क्षत्रिय यदि ब्राह्मण को अपमानित करे तो उस पर सौ कार्षापण का अर्थदण्ड, उसी प्रकार का अपराध करने पर वैश्य को एक सौ पचास कार्षापण का अर्धदण्ड देना पड़ेगा। इसके विपरीत यदि ब्राह्मण किसी क्षत्रिय का अपमान करे तो वह पचास कार्षापण के अर्थदण्ड का भागी होगा।[६८] महाभारत के अनुसार समाज के जिस वर्ग ने अध्ययन, यजन, आदि धर्मो के अतिरिक्त, कृषि कर्म एवं गोपालन-वृत्ति का अनुसरण किया, वह वैश्य की संज्ञा से अभिहित किया गया।[६९] इस वर्ग का मुख्य लक्ष्य धनार्जन करना था और उनका स्वाभाविक कर्म कृषि, गोरक्षा एवं व्यापार करना था।[७०] बौधायन का मत है कि गौ, ब्राह्मण और वर्ण की रक्षा के लिए वैश्य भी शस्त्र ग्रहण कर

सकता है।[७१] कथासरित्सागर के समय के सामाजिक जीवन पर, उसमे प्राप्त विवरणो से महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। कारण इस ग्रन्थ मे कवि सोमदेव भट्ट का स्वतंत्र और निर्भीक चिन्तन समाविष्ट है। वैश्य वर्ण का प्रमुख कर्म कृषि, गोपालन और वाणिज्य रहा है। हम यहाँ वैश्यवर्ण का संदर्भ कथासरित्सागर के परिप्रेक्ष्य मे उल्लिखित कर रहे है। कथासरित्सागर के रचनाकाल मे वैश्यवर्ण समाज मे मान्य एवं प्रतिष्ठित रहा, इस तथ्य पर प्रकाश डालना वैश्यवर्ण, उसके व्यवसाय एवं अन्य अवदान का वर्णन तत्सम्बंधित अध्याय मे करना संगत होगा।

'कथासरित्सागर' मे वैश्यों की बहुत सी कथाएँ सन्दर्भित है, जिसका अर्थ है कि तत्कालीन समाज मे वैश्य वर्ग का महत्वशाली स्थान रहा। अनेक रत्नों से परिपूर्ण मथुरा नाम की नगरी थी, उसमें महल्लक नाम का एक वैश्य पुत्र था।[७२] पाटलिपुत्र में बड़े धनी कुल में उत्पन्न देवदास नाम का वैश्य पुत्र रहा। पुष्करावती नगरी में गुढ़सेन नाम का राजा था। उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह घमण्डी राजकुमार था। किसी समय उद्यान में विहार करते हुए राजकुमार ने अपने ही समान रूप और धन वाले उस दत्त नामक बनिये के पुत्र को देखा। उसे देखते ही राजकुमार ने स्वयं वरण किया हुआ मित्र बना लिया। तभी से राजपुत्र और वैश्यपुत्र दोनों एकरूप अभिन्न रूप मित्र बन गये।[७३] 'स्वामी इस नगरी में समुद्र नाम का एक बनिया है। वह व्यापार के लिए यहाँ से सुवर्णद्वीप चला या। प्राचीन समय में

किसी नगर मे धर्मबुद्धि तथा दुष्टबुद्धि नामक दो वणिक पुत्र थे। वे दोनो धन कमाने के लिए अपने पिता के घर से दूसरे देश मे गये और संयोग से दो सहस्त्र दीनार उपार्जित किये।[७४] प्राचीन काल में किसी वैश्य के पास पिता की सम्पत्ति में से केवल एक लोहे का तराजू बच गया था। चार सौ तोले लोहे से बने उस तराजू को किसी बनिए के पास धरोहर रखकर वह वैश्य दूसरे देश चला गया। समस्त पृथ्वी की मस्तकमाला के समान लम्पा नामक एक नगरी है, उस नगरी में उसमें कुसुमसार नामक एक धनी वैश्य था।[७५] कथासरित्सागर के एक दो अंकनो से ज्ञात होता है कि वैश्यपुत्र सामान्य रूप से गणित ज्ञान रखता था। मेरे कुछ बडे होने पर उस अकिंचन तथा दीनमाता ने गुरू से प्रार्थना करके मुझे अक्षर लिखना और अङ्कगणित हिसाब आदि समझना सिखा दिया।[७६]

कथासरित्सागर में वर्णव्यवस्थान्तर्गत नामित तृतीय वर्ण को वैश्य, बनिया, वणिक तीनो संज्ञाओं से अभिहित किया गया है। इन अंकनो से एक तथ्य यह भी स्पष्ट होता है कि अधुनातन काल में प्रचलित 'बनिया' संज्ञा मध्यकाल से ही लोकप्रिय रही है। धन सम्पत्ति वाले वणिक् की सेठ संज्ञा थी। जो आज भी लोकमान्य संज्ञा है।

कथासरित्सागर के अनुशीलनोपरान्त प्राचीन वर्ण व्यवस्थता में विहित चतुर्थ वर्ण 'शूद्र' का विशेष अंकन नहीं प्राप्त होता है। एक दो अंकनों से इस वर्ण के अस्तित्व का आभास मात्र मिलता है। हाँ उस कोटि की जातियाँ अन्य नामों

से समाज मे परिगणित रही। शूद्र वर्ण गर्हित था। "इसके अनन्तर वह योगनंद एकांत मे खेद के साथ व्याडि से बोला - जब मै ब्राह्मण होकर भी शूद्र हो गया। इसलिए मुझे इस अस्थिर लक्ष्मी से भी क्या लाभ।[७७] वर्ण व्यवस्था के व्यवस्थाकारो ने शूद्र के लिए समाज के पूर्वगामी तीनो वर्णो - ब्राह्मणो, क्षत्रिय एवं वैश्य की सेवा करना प्रमुख धर्म विहित किया। ब्राह्मण की सेवा से यदि शूद्र की जीविका न चले तो क्षत्रिय की सेवा करे और वह भी न चले तो शूद्र धनी वैश्य की सेवा करके अपना जीवन निर्वाह कर सकते है।[७८]

कथासरित्सागर के एक अख्यान से ज्ञात होता है कि शूद्र बौद्ध धर्म को अधिक सुकर मानता था। स्नान शौच आदि से हीन और अपने समय पर भोजन के लोभी शिखा एवं केश का मुण्डन कराकर केवल कौपीन धारण करने वाले तथा बिहारों (मठो) मे स्थान मिलने के लोभ से सभी नीच जाति के व्यक्ति जिस बौद्ध धर्म को ग्रहण करते है उससे हमारा क्या प्रयोजन।[७९] 'अधम' जातक का प्रयोग यहॉ शूद्र के लिए कदाचित किया गया है।

उस काल में एक वर्ग विशेष था जो कार्य विशेष के आधार पर ही विशेष नाम से अभिहित होता था जिसे महाकवि कल्हण और कवि क्षेमेन्द्र ने 'कायस्थ' अभिसंज्ञित किया है जो शबर भील आदि जातियो एवं चारो वर्णो से विलग रहा है। अस्तु। अब हम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्णो से इतर जातियो के

अस्तित्व पर प्रकाश डालना चाहते है। जॉतियो मे विशेष रूप से दस जातियॉ आख्यानो के घटनानुक्रम मे संदर्भित उपलब्ध होती है।

मिश्रित जातियाँ

नापित

यह क्षौर कर्म परम चतुर, धूर्त और परिहास प्रिय रसिक जनो का विशेष रूप से प्रिय होता था। कथासरित्सागर मे अकन है - मेरा एक नापित मित्र है वह इस प्रकार के कार्यो मे बड़ा ही निपुण है निश्चित ही वह कोई न कोई उपाय कर सकता है। यह सोच वह भिक्षुणी उस नापित के पास गयी। उससे अर्थ लाभ वाली अपनी सभी योजनाएं व्यक्त की। नापित ने सोचा-मेरा भाग्य है जो यह लाभ का अवसर अनायास प्राप्त हो गया। नयी राजवधू को मारना उचित नहीं, अपितु उसकी रक्षा के उपाय करने चाहिए। रानी का पिता दिव्य दृष्टि रखता है उसे सब कुछ पता चल जायेगा। इस स्थिति में उसे राजासे पृथक कर के महारानी का धन हड़पना श्रेयस्कर है।[८०]

शबर

यह वन में निवसने वाली वन जीवों का आखेट कर जीवन निर्वाह करने वाली जाति रही। साँपों को लेकर जनसमूह के समक्ष क्रीड़ा कौतुक का प्रदर्शन

भी करती थी। इनका पृथक कबीला था। उनका मुखिया शबराधीश कहा जाता था। आलोच्य ग्रन्थ मे शबर जाति का उल्लेख प्राप्त है। किसी समय हिरण के आखेट के प्रसंग में भ्रमण करते उदयन ने एक सबर द्वारा पकड़े गये एक सर्प को देखा। सुन्दर सर्प को देखकर उदयन ने सबर से उसे मुक्त कर देने के लिए कहा। सबर ने कहा- स्वामी यह मेरी जीविका का साधन है। मै अत्यन्त निर्धन हूँ सापो के क्रीडा-कौतुक का प्रदर्शन कर जीविका चलाता हूँ।[८१]

पुलिन्द

बिन्ध्यगिरि की उपत्यका के गॉव मे बसने वाली यह जंगली जाति थी। यह जाति शक्ति की उपासक रही-विन्ध्य-सीमा पर निवास करने वाले पुलिन्द जाति के राजा को वत्सराज के मंत्री ने उसे प्रबल एवं विशाल सेना सहित तैयार रहने के लिए कहा जिससे वत्सराज को लेकर लौटते समय यदि पीछे से आक्रमण हो तो प्रथमत: समर भूमि यही बने। उस मंदिर में बलिदान करने के लिए वे लुटेरे मुझे देवी के उपासक पुलिन्दक नामक अपने सरदार के पास ले गये।[८२]

भील

यह भी एक देवी उपासक पुलिन्द की ही भांति बनवासी जाति थी। कथासरित्सागर इस जाति के स्वरूप और देवी उपासना का उल्लेख करता है।

महाराज आगे भीलों की बड़ी सेना है। उन भीलो ने हमारे पचास हजार हाथी मार डाले और एक हजार पदाति बल के साथ तीन सौ घोड़े भी उन्होंने मार डाले हैं। इसी प्रकार हमारे सैनिको ने भी दो हजार भील मार दिये। यदि हमारी सेना मे एक शव देखा जाता था तो उनकी सेना मे भी। तब उनके बाण वज्रों से मारे जाते हुए हमारे सैनिक वहाँ से भाग आये। ऐसा सुनकर कोपाविष्ट नृप पृंथ्वीरूप ने एक भाले से भीलो के सरदार का सिर काट डाला।[८३]

निषाद

समुद्र के मध्य उत्तस्थल नामक एक द्वीप है, वहाँ सत्यव्रत नामका एक सम्पन्न निषाद राज है। उसका प्राय: सभी दूरस्थ द्वीपों मे आना-जाना है। अत: सम्भव है कि वह उस नगरी को कही देखा सुना हो। इसलिए सर्वप्रथम तुम यहाँ से समुद्र के निकटस्थ विटकपुर नामक नगर जाओ वहाँ से किसी बनिए के साथ उस निषाद राज के पास अपनी उस इष्ट सिद्धि-निमित्त प्रस्थान करो।[८४]

शबर, पुलिन्द, निषाद की ही प्रकृति-प्रवृत्ति की कुछ अन्य वनवासी जातियों एवं समाज में रहने वाली जातियो के भी अंकन कथासरिसागर मे उपलब्ध होते है। यथा-

धीवर

समुद्र तट पर बसे हुए उस नगर मे निवसने वाला धीवरो का सरदार सागरवीर उस वैश्य से मिला। वह समुद्रजीवी सागर वीर के साथ जहाज से जा रहा था, एक दिन जलती हुई बिजली रूपी ऑखो वाला प्रचण्डत्रास एवं भय उत्पन्न करने वाला मेध आकाश मे दीख पड़ा।[८५]

व्याध

वहॉ मॉस विक्रयकर जीवन निर्वाह करने वाला एक धर्म व्याध है, जाकर उससे. मिलो। इससे तुम्हे अहंकारहीन कल्याण लाभ प्राप्त होगा।[८६]

डोम्ब

यह जाति डोम नाम से जानी जाती थी। कथासरित्सागर में इसका उल्लेख हुआ है- नगर के बाहर पकड़े जाने की शंका से भागते हुए उसे देख, उसका धन हस्तगत करने की लालच मे एक डोम्ब ने उसे पकड़ लिया। धूर्त सिद्धिकरी ने सब कुछ समझ लिया और नम्रतापूर्वक दीन वाणी में कहा- आज मैं अपने पति के साथ कलह करके मर जाने के उद्देश्य से घर छोड़कर भाग आयी हूँ। इसलिए हे भद्र! मेरे लिए फांसी का फंदा तैयार कर दो। डोम ने सोचा- फॉसी

के फंदे से स्वयं ही मर जाय, कितना अच्छा होगा, मै क्यों स्त्री की हत्या करूँ, सिद्धिकरी ने कहा - फांसी का फंदा गले मे कैसे फंसाया जाता है, यह फंसाकर दिखा भी दे। मूर्ख डोम ने पैर के नीचे ढोल रख दिया, और फंदा गले मे फंसाकर उसे दिखाया। सिद्धिकरी ने लात मारकर ढोलक को तोड़ दिया, डोम स्वयं ही लटक कर मर गया[८७], कथासरित्सागर मे काष्ठ का कार्य करने वाली जाति बढ़ई एवं कपड़ा बुनने वाली जाति तन्तुवाय[८८] का भी अंकन हुआ है। बढ़ई का नाम यंत्रकार[८९] के रूप मे 'तक्षा' मिलता है।

ग्यारहवी-बारहवी शती मे एक वर्ग विशेष, जिसका प्रमुख कार्य राजकीय अभिलेख तैयार करना था, वह किसी वर्ण का हो सकता था। वह शनैः-शनैः 'कायस्थ' की संज्ञा से अभिहित होने लगा था। अर्थात् कथासरित्सागर के रचनाकाल तक कदाचित् यह एक जाति के रूप में मान्य होने लगा था। 'गुप्तकाल मे लेखको को कायस्थ कहा गया है। दामोदरपुर के ताम्रपत्रों से ज्ञात होता है कि प्रथम 'कायस्थ' स्थानीय शासन में भाग तो लेता था तथा प्रतिनिधि समिति का एक महत्वपूर्ण सदस्य होता था। (एपीग्राफिया इण्डिया/जिल्द ४७)। प्रथम कायस्त शब्द से प्रतीत होता है कि उस समय कायस्थों का कोई व्यवसाय अवश्य रहा होगा। गौरी शंकर हीरा चन्द्र ओझा ने लिखा है कि- ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि लेखक थे और वे कायस्थ कहलाते

थे (मध्यकालीन भारतीय संस्कृति/पृष्ठ ४७)। शूद्रक ने कायस्थो को न्यायालय लेखक बताया है। (अधिकारिण: अहो ...... व्यवहारपदं प्रथमम्भिलीख्यताम् - मृच्छकटिकम्/ ९ राजकीय कार्यो तथा न्यायालयो के लेखक (मुंशी अथवा मुहर्रिर) का काम करने के कारण कायस्थो को षड्यंत्रो और कूटनीति विषयक राज्य की सारी गुप्त से गुप्त बातो एवं दावपेंचों का ज्ञान रहता होगा। (शूद्रक ने इसलिए कायस्थों की तुलना सर्प से की है।)

"नानावाशककङ्कपक्षिरुचिरं कायस्थसर्पास्पदम् ।
नीतिक्षुपणतटञ्च राजकरणं हिंस्त्रै: समुद्रायते।।"

-मृच्छकटिक/९.१४[१०]

कायस्थसंज्ञक किसी वर्ण अथवा जाति का अस्तित्व हमारी सामाजिक वर्णव्यवस्था मे कथमपि नहीं। तथापि मध्यकाल में कायस्थ एक जाति विशेष का स्वरूप सामाजिक स्थिति में लोकमान्य हुआ। आज तो भारतीय समाज में वह बहुचर्चित जाति है।

'कल्हण' क्षेमेन्द्र की भांति कथासरित्सागर के कवि सोमदेव भट्ट ने भी अपने ग्रन्थ मे 'कायस्थ' का उल्लेख करना विस्मृत नहीं किया है। यहाँ उसकी प्रकृति प्रवृत्तिजनित सभी विशेषताओं का विवेचन अवश्य नहीं है, पर सामान्य परिचय से ही उसके महत्व का आभास हो जाता है।- इन मेरे दोनों लड़कों ने पृथ्वी को विजित कर तथा मेरा बध करके मेरे राज्य पर अधिकार स्थापित कर लेने का

निश्चय किया है। इसलिए तुम लोग यदि मेरे सच्चे स्नेही और भक्त हो तो बिना विचार किये इन दोनो का बध कर दो। इस प्रकार सेना अधिकारियो के नाम राजा का आज्ञापत्र कायस्थ से घूस देकर लिखवा लिया तथा धन देकर सन्देश ले जाने वाले दूत के हाथ काव्यांलङ्कारा ने गुप्त रुप से सेना के शिविर मे भेज दिया। दूत ने शिविर में जाकर पत्र दे दिया। राजा को उसके लेख दिखाकर यह समाचार सुना दिया। राजा यह सब सुनकर और समझकर कोपाविष्ट होकर उनसे कहा ये लेख पत्रादि मेरे भेजे हुए नही है। यह क्या इन्द्र जाता है? मूर्ख तुम क्या यह नहीं जानते कि घोर तपस्या के प्रभाव से प्राप्त किये हुए बच्चो को मैं स्वयं कैसे मारता? तुम लोगो ने तो उन्हे मार ही डाला था। केवल अपने पुण्य से वे बच गये है। उनके नाना ने भी मंत्री होने का फल दिखा दिया। ऐसा कहकर उसने उन सब अधिकारियो तथा भागे हुए भी उस मिथ्याचारी लेखक को पकड़कर बुलाया और सबको मरवा डाला तथा ऐसे नीच कार्य करने वाली पुत्रधातिनी काव्यालंकारा को भी गड्ढे में डलवा दिया।[९१]

एक अन्य दृष्टान्त कल्हण की राजतरंगिणी से द्रष्टव्य है - इसके अतिरिक्त ग्राम स्कन्दक तथा ग्राम कायस्थ (पटवारी) आदि कर्मचारियों के मासिक वेतन पर विविध दु:खदायी करो का भार लादकर उसने गांवों की जनता को अतिशय कंगाल बना दिया। गुणीजनों की आर्थिक क्षति तथा राजाओं की कीर्तिनिष्ट होने के मूल

कारण इन दुष्टदासीपुत्र कायस्थों का प्रभाव उस मूर्ख राजा के समय से ही बढ़ा, उस राजा की अनवधानता से सारा कश्मीर राज्य कायस्थो का उपभोग्य पदार्थ बन गया, जिससे राजा ही प्रजा को चूस रहा है, यह अपकीर्ति चारो ओर प्रसरित होने लगी।[९२] इसके अतिरिक्त कल्हण की राजतरंगिणी मे कायस्थों से सम्बंधित अनेक आख्यान उपलब्ध होते हैं।[९३]

आश्रम, पुरुषार्थ एवं संस्कार

भारतीय संस्कृति के अविच्छिन्न स्वरूप का आधार सुसंगठित समाज-व्यवस्था, उसके नियमन निमित्त वर्णव्यवस्था, उस वर्णव्यवस्था के स्थायित्व-प्रतिस्थापन का आधार वर्णाश्रमधर्म, वर्ण-आश्रम-धर्म प्रतिष्ठा की जीवन्तता, वर्णों के लिए विहित विविध संस्कारों के संगमन-संपादन की व्यवस्था, ऋषियो द्वारा की गयी। आश्रम संस्कार एवं पुरुषार्थ तीनों अन्योन्यानुगमित और साधन-साध्य तथा साधक स्वरूप है। जीवन-जीविति की दृष्टि से संस्कार, आश्रम फिर पुरुषार्थ का क्रम है। संस्कार की भूमि पर आश्रम-व्यवस्था और आश्रम व्यवस्थानुकूल पुरुषार्थ प्राप्ति। पुरुषार्थ जीवन की पूर्णता के सूत्र है- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। प्रकारान्तर से यह पुरुषार्थ चतुष्टय, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास चारों आश्रमो की अपर संज्ञा के रूप में अभिहित और प्रतिष्ठित स्वीकार किये जाये तो यह अनुचित नहीं होगा। आश्रम व्यवस्था क्रम में सर्वप्रथम हैं-

ब्रह्मचर्य आश्रम- यह जीवन का प्रथम और सुदृढ़ सोपान माना जाता रहा है। यही पुरुषार्थ का भी प्रथम सोपान है। आश्रमों के क्रमोल्लेख में विभिन्न धर्म व्याख्याकारों ने पृथक् -पृथक् दृष्टिकोणों का अनुगमन किया है, परन्तु चारों को स्वीकार अवश्य किया है। प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम अध्ययन और अनुशासन काल माना जाता था। इस अवधि में जीवन के विकास, अभ्युत्थान और दैहिक, भौतिक, मूलभूत सूत्रो से परिचय प्राप्त करने के लिए समग्र-आमोद-प्रमोद सुख-सुविधा से विमुख रहकर, मानसिक एवं शैक्षिक शक्ति का संचय किया जाता है। यह ब्रह्मचर्याश्रम उपनयन-संस्कार के पश्चात् प्रारम्भ होता है। व्यवस्थाकारों ने जीवन की अवधि शतवर्ष अनुमान उसे समयावधि वाले चार आश्रमों में विभाजित किया था। ब्रह्मचर्याश्रम प्रथम आश्रम और प्रथमवय की पच्चीस वर्ष पर्यन्त अवधि का निश्चित किया गया था। इस आश्रम में प्रवेश करने के लिए उपनयन संस्कार होना अनिवार्य कहा गया है।

मध्यकाल मे यद्यपि वर्णव्यवस्था मे विहित नियमो में कुछ सीमा तक शिथिलता आ गयी थी। तथापि संस्कारादि पूर्व विनिश्चित विधानों और समयावधि में सम्पन्न होते रहें। यही कारण है कि ग्यारहवीं एवं आश्रम-प्रतिष्ठा का अंकन किया है। वेदाध्ययन के लिए गुरुकुल-प्रवेश के पूर्व उपनयन संस्कार आवश्यक है। 'प्रात:काल व्याडि ने उत्सव करने के लिए अपना धन मेरी माता को प्रदान कर दिया और मुझे वेदाध्ययन के योग्य बनाने के निमित्त मेरा उपनयन संस्कार किया, जिससे मैं योग्य बनकर

वेदो का अध्ययन कर सकूं।[९४] इतना ही नही कथासरित्सागर मे एक स्थान पर मनुष्य को जीवन मे समुचित विकास प्राप्त करने के लिए, सभी आश्रमो के सम्यक् पालन करने की सलाह प्रकट की गयी है। वैराग्योन्मुख अपने पुत्र को समझाते हुए पिता कह रहा है - 'राजा अलंकारशील ने पुत्र धर्मशील से कहा- 'पुत्र इस यौवनकाल में ही तुम्हें यह कैसा भ्रम हो गया है? विद्वान जन युवावस्था का उपभोग हो जाने पर ही वैराग की कामना करते है। यह समय विवाह करके धर्मपूर्वक राज्य का पालन करने का है। यह तुम्हारे लिए सांसारिक भोगो को भोगने का समय है, वैराग्य का नही।[९५]

आश्रमों के क्रम मे दूसरा स्थान **गृहस्थाश्रम** का है - समावर्तन संस्कार के पश्चात् ब्रहमचर्याश्रम की समाप्ति हो जाती है- 'अपने धर्म करने के प्रसिद्ध पिता अथवा गुरु से वेद पढ़े हुए, माला धारण किये और उत्तम आसन पर बैठे हुए, ब्रह्मचारी का पूजन पहले तो दुग्ध आदि के मधुपर्क से करे। जब द्विज विधिपूर्वक (व्रत) स्थान और समावर्तन कर चुके तब गुरु की आज्ञा से अपने वर्ण की शुभ लक्षणो वाली कन्या से विवाह करें।[९६] वर्ण व्यवस्था में आश्रमो का उल्लेख करते हुए इस आश्रम (गृहस्थाश्रम) का सर्वप्रथम अंकन किया गया है, क्योंकि जगत् में धर्म, अर्थ तथा काम एवं मोक्ष- मार्ग के साधन का आधार यही है। इन सब चारों ही आश्रमों में, वेद और स्मृति की विधि से चलने वाली गृहस्थाश्रम को

ऋषियों ने श्रेष्ठ कहा है, क्योंकि यह गृहस्थ आश्रम तीनों आश्रमों का पालन करता है - जैसे सब नदी-नद समुद्र मे जाकर स्थिर होते है, उसी प्रकार अन्य सब आश्रम वाले गृहस्थाश्रम के साधन से जीते हैं।[९७]

यह गृहस्थाश्रम ब्रह्मचर्याश्रम के समावर्तन संस्कारोपरान्त विवाह से प्रारम्भ होता है। विवाह एक अत्यंत महत्वशाली सामाजिक संस्कार है। इसी से मनुष्य का सांसारिक जीवन प्रारम्भ होता है। ब्राह्मण धर्म में पुत्र-प्राप्ति अत्यन्त आवश्यक समझा जाता है। पितरो की संतुष्टि के लिए तर्पणादि की आवश्यकता थी, इसलिए विवाह को परमश्रेष्ठ स्थान दिया गया है, क्योंकि पुत्र की प्राप्ति गृहस्थाश्रम से ही सम्भव है।[९८] इस गृहस्थ आश्रम का प्रथम सोपान है- विवाह। इस विवाह संस्कार का अंकन कथासरित्सागर मे प्राप्त होता है- दूसरे दिन दोनों का विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ। गोपालक सारे दिन विवाह-महोत्सव के प्रबन्ध मे व्यस्त रहा। रति रूपी लता से निकले उस नव पल्लव के समान कोमल वासवदत्ता के हाथ को वत्सेश्वर ने ग्रहण किया। उस का स्पर्श होने पर वासवदत्ता उस स्पर्श के गम्भीर आनन्द में निमग्न हो गयी। उसके शरीर में कम्पन और पसीना होने लगा।[९९] पुत्र जन्म का भी गृहस्थाश्रम में सर्वाधिक महत्व एवं पुण्यकर्मों का प्रतिफल रूप परिगणित होता है। पिता के तर्पणादि का ऋण पुत्रोत्पत्ति बिना सम्भव नहीं होता।

'कथासरित्सागर' मे पुत्रोत्पत्ति, पुत्र जन्मोत्सव तथा पुत्र के नामकरण की प्रक्रिया का अंकन भी किया गया है- देवताओं द्वारा मनाये गये उत्सव से अत्यन्त उत्साहित और प्रसन्न होकर राजा ने अपने विस्तृत राज्य में व्यापक पुत्र जन्म महोत्सव मनाया। उस अवसर पर राजा के परम हितैषी यौगन्धारायण आदि भी अतिप्रसन्न हो रहे थे। उसी समय आकाश से इस प्रकार की वाणी हुई- 'राजन् तुम्हारा यहपुत्र कामदेव का अवतार है, इसका नाम नरवाहनदत्त होगा। यह वीर एक दिव्ययुग तक विद्याधरो का चक्रवर्ती राजा रहेगा।[१००] एक अन्य स्थल द्रष्टव्य है- उस ब्राह्मण को अपनी पत्नी से शुभ लक्षणों वाला एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके उत्पन्न होते ही आकाशवाणी हुई- हे चन्द्रस्वामी, तुम इस बालक का नाम महीपाल रखना, क्योंकि यह राजा होकर चिरकाल-पर्यन्त पृथ्वी का पालन करेगा। इस प्रकार दिव्यवाणी को सुनकर चन्द्रस्वामी ने पुत्र जन्मोत्सव करके उस शिशुका नाम महीपाल ही रख दिया।[१०१] समाज संगठन एवं वर्णव्यवस्था की सुदृढ़ता की दृष्टि से यह गृहस्थाश्रम सभी आश्रमों में श्रेष्ठ है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा संन्यासी सबके सब गृहस्थों पर ही आश्रित है- जीवन निर्वाह ही नही अपितु संरक्षण भी इसी गृहस्थाश्रम के मुखिया गृहस्थ पर निर्भर रहते हैं। जिस प्रकार समस्त प्राणी वायु पर निर्भर है तथा उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थ आश्रम पर निर्भर रहते हैं। अन्नदान और ज्ञानदान द्वारा गृहस्थ अन्य तीनों कोटि के आश्रमियों का वहन करता है। अत: गृहस्थ ही सर्वोच्च और सर्वोत्तम

है। इसीलिए मनु आदि सामाजिक व्यवस्थाकारों ने गृहस्थ आश्रम को सर्वश्रेष्ठ निदर्शित किया, यह तीनो आश्रमो का पोषक एवं वर्णव्यवस्था का आधार है।[१०२]

गृहस्थाश्रम मनुष्य के लिए भौतिक सुखोपभोग का काल होता था। इस आश्रम में रहकर, मनुष्य पंचमहायज्ञो और पितृऋणो, देवऋणो से मुक्त होकर परलोक साधनार्थ तृतीय आश्रम एवं चतुर्थ संन्यासाश्रम की राह पकड़ता था। ऐसी प्राचीन व्यवस्थाको ने विधान प्रस्तुत किया था। दूसरे शब्दो में तृतीय एवं चतुर्थ आश्रम मोक्ष-निवृत्ति प्राप्त करने के लिए विहित किये गये थे। गृहस्थाश्रम मे निवसते मनुष्य अर्थ तथा काम का यथेच्छ उपभोग करता है। गृहस्थाश्रम के दायित्वो के साथ-साथ वानप्रस्थ और सन्यासाश्रमियो के जीवन-निर्वहन का भी दायित्व वहन करता रहता था। इस सब दायित्वो से निृवत्त होकर निज जीवन के दायित्व के निर्वहन-निमित्त गृहत्यागी बनता था। मनु की व्यवस्थानुसार विधिपूर्वक गृहस्थ आश्रम में निवास करे, उसके पश्चात् शास्त्रोक्त रीति से इन्द्रियों का दमन कर नियमपूर्वक बन में निवास करे।

जब गृहस्थ धर्म का पूर्ण निर्वहन कर ले और देखे कि शरीर की त्वचा शिथिल पड़ जाय, और केश श्वेत हो गये, पुत्र के भी पुत्र हो चुका है तो वन का आश्रम ले लेना चाहिए। गांव के आहार (ब्रीहियव आदि) को तथा (शय्या वाहन आदि) सबकुछ त्यागकर पत्नी को पुत्रो के साथ सौप कर (अथवा पत्नी को भी

साथ लेकर) बन गमन करे।[१०३] कथासरित्सागर में ऐसे अंकन प्राप्त होते है, जिससे ज्ञात होता है कि व्यवस्थाकारों द्वारा विहित इस वानप्रस्थ और अन्तिम संन्यासाश्रम के अनुगमन की परम्परा प्रतिष्ठित थी। आश्चर्य है कि सार-रहित तथा नीरस सांसारिक भोगं मे आसक्त रहकर मैंने कितना कष्ट पाया । इसलिए अब वन मे जाकर भगवान् की शरण ग्रहण करता हूॅ। जिससे फिर ऐसे कष्टो का भोग न करूं। उसने अपना सम्पूर्णं राज्य पापभंजन नामक एक श्रेष्ठ द्विज को विधिपूर्वक दान मे देकर और शेषधन पत्नी शीलवती और अन्यान्य ब्राह्मणो को दान कर सर्वथा विरक्त हो गया।[१०४]

इसी प्रकार एक अन्य स्थल द्रष्टव्य है- 'राजा चन्द्र केतु पुत्र के साथ चिर-काल पर्यन्त विद्याधर साम्राज्य की लक्ष्मी का उपभोग किया तथा अन्त में विरक्त होकर, अपने साम्राज्य का भार अपने पुत्र को सौप करके अपनी रानी के साथ तपोवन मुनि के आश्रम में चला गया। उसका पुत्र कालकेतु भी राज्यसुख का पूर्णत: उपभोग किया और अन्तत: उसने भी सांसारिक सुख को परिणामत: रसहीन अनुमान कर मुनिराज तपोवन के आश्रम में निवास करने लगा। वहां तपस्या के प्रभाव से परम् ज्योति प्राप्त कर शिव का सामुञ्ज लाभ किया।[१०५] अब मैं मोह का त्यागकर प्रभु की शरण में जाता हूँ।[१०६] वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम द्वारा सुकृत, धर्म एवं मोक्ष की प्राप्ति हेतु चेष्टा करना और जीवन के अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु साधना करना विहित है।

भारतीय संस्कृति मे पुरुषार्थ चतुष्ट्य अर्थात् धर्म, अर्थ,काम एवं मोक्ष का साधन करना मनुष्य का परम कर्तव्य है। भौतिक दृष्टि से देखा जाय तो सभी पुरुषार्थो का मूल अर्थ है। अर्थ के माध्यम से धर्म, काम और मोक्ष सभी प्राप्तव्य है। 'कथासरित्सागर' मे भी पुरुषार्थ के कतिपय अंकन प्राप्त होते हैं जो तत्कालीन सामाजिक स्थिति के नितान्त अनूकूल था। वह युग शनैः शनैः भारतीय संस्कृति के मूलाधारों से पतित हो रही थी। भारतीय संस्कृति परमोदात्त एवं परम शिव की जीवनेषणा के प्रति भ्रमित अवधारणा से आक्रान्त होने लगी थी। धर्म एवं मोक्ष की अवधारणा काम एवं अर्थ के लास से लसित होकर अवसानोन्मुख हो रही थी। अर्थ सबका आधार बन चुका था- ईश्वर वर्मा वर्ष पर्यन्त यमजिह्वा के स्वर मे रहकर शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् सोलहवां वर्ष प्राप्त होने पर पिता के घर वापस आ गया। उसने पिता से कहा-धर्म एवं अर्थ में दोनों पुरुषार्थ अर्थ से ही सिद्ध होते है। अर्थ की उपासना से श्रेष्ठतर अन्य कोई उपासना नहीं है।[१०७] इस काल मे तपश्चर्या का भी महत्व स्वीकार्य था- 'तुमने जो उस मेरे कंकाल को इस तीर्थ मे फेंक दिया, यह अत्यन्त उत्तम कार्य किया, क्योंकि तुम मेरे पूर्व जन्म के मित्र हो उसी पूर्व जन्म के तप-प्रभाव से मै ज्ञानी तथा राजा हुआ।[१०८]

निष्कर्षतः कथा सरित्सागर के अनुशीलन से स्पष्टतः परिज्ञात होता है कि उसमे भारत वर्ष की प्राचीन समाजगत संगठनात्मक शक्तिधारक वर्णव्यवस्था की प्रतिष्ठा

रही और सामाजिक स्थिति की पवित्र सुदृढ़ता में वर्ण-व्यवस्था को पूर्णतः मान्यता प्रदान की गयी थी। तदनुसार ही वर्णो के धर्म-कर्म एवं आचार-विचार निष्पन्न होते एवं तद्सापेक्ष समाज की परम्परागत अनुक्रमित नीतियों का संचरण, समाज की उदात्त। इयत्ता की संवाहिका थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य स्व-स्व कर्मो के अनुपालन, सम्पादन मे निरलस संलग्न रहे। वर्ण व्यवस्था विहित चारो वर्णो से इतर भी कतिपय जातियॉ अवश्य रही-किन्तु उनका विशेष अवदान नही प्रतीत होता, जिसका एकमात्र कारण उनका वनवासिनी होना माना जा सकता है। कथा सरित्सगार मे समाज के एक सुव्यवस्थित स्वरूप का अंकन मिलता है- विद्वान, शूरवीर, पराक्रमी, सम्पत्तिशाली, महासेठ, योद्धा, ज्योर्तिविद् वैद्य, काष्ठकार एवं तन्तुवाय जिनमे प्रमुख थे। द्विजाति वर्ग, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष, पुरुषार्थ चतुष्ट्य के साधक तथा उनमें से क्षत्रिय वर्ण उनके संरक्षण मे सतत् तत्पर रहे।

संदर्भ एवं पाद-टिप्पणी

१. भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास . डा० विमल चन्द पाण्डेय/पृष्ठ ९५

२ वही/पृष्ठ ९७

३. वही/पृष्ठ १७-१८

४. सहस्त्रशीर्षा पुरुषः . त्रिपादस्यामृतदिवि।।

-ऋग्वेद १०/९०/१, २, एव १२

५ एतै वे देवाः प्रत्यक्ष यद् ब्राह्मणा। -तैत्तरीय संहिता/१-७.३१

६ यावती वै .... नमस्कुर्यात।। -आरण्यक/३-१५

७. दैव्यो वै वर्णो ब्रह्मणाः। - तैत्तरीय आरण्यक/१, २, ६
ब्रह्म हि पूर्व श्रयातं -ताण्डय आरण्यक/११, १२
स्वधर्मो ब्राह्मणा .... प्रतिग्रहश्चेति -कौटिल्य/३-५

८. इण्डिका/अंश ११/ मित्र .... सार्धुदानं - अशोक अभिलेख ३
ब्राह्मण समणानं.............. -अशोक अभिलेख ८
वामन समनेसु कपन वलाकेषु -स्तम्भलेख ७

९. ब्राह्मणः प्रथमो प्रादुर्भूताः .... वर्णा. प्रादूर्भूताः।

-महाभारत/१२/३४२-२१

द्विपदां ब्राह्मणो वरः। भूमिचराः देवाः।।

-महाभारत। ४-२-१५ तथा १२/३९-२

१०. भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास : डॉ० विमल चन्द्र पाण्डेय/पृष्ठ २७

११. हिस्ट्री आफ इण्डिया : इलियट और डाउसन/वाल्यूम १/पृष्ठ ६

१२ उत्तमाङ्गोद्भवाज्यैष्ठयाद्ब्रह्मणश्चैव............... ब्राह्मणाः प्रभुः।। -मनु०/१-९३

सर्वे स्वं .... ब्राह्मणोऽर्हति।। -वही/१-१००

अविद्वांश्चैव .... यथाग्निर्दैवतं महत् ।। -वही/९-३१७

ब्राह्मणं दशवर्तं .... तयोःपिता -मनु०२-१३५

सर्वेषाम् प्रभावे ते ब्रह्मणा की भागिनः।

मै विद्या शुचयो दान्तास्तथा धर्मो नहीयते।।

महर्षि ब्राह्मण्डव्यं राज्ञा नित्यमित स्थिति.
इतोषां नुवर्णानां सर्वभावे हरेमृप·।। -मनु०८/३८१

शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य .... द्वादशको दम·।। -मनु० ८/२६७-६८

म्रियमाणोऽप्याददीत न राजा ..... विषये वसन् ।।

श्रुत्रवृत्ते विदित्वास्य .... राष्ट्रमेव च।। -मनु०७/१३३, १३५-३७

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं . .... उच्यते।। -मनु०४/१४७

१३ सर्वान्परित्यजेदर्थान्रवाध्यायस्य .. .. ०कृतकृत्यता।। -मनु०४/१७

१४. न लोकवृत्तं .... जीवेद्ब्रह्मणजीविकाम् ।। -मनु०४/११

नहेतार्थान्प्रसङ्गेन .... नार्त्यामपि यतस्तत:।। -मनु० १/१५

तप: श्रुतं च योनिश्च .... ब्राह्मणलक्षणम्।। - पतञ्जलि

१५. सर्वापराधेष्वपीडनीयो ब्राह्मण: .... वासये दारकेषु व।

- कौटिल्य/४-८

१६ प्रायश्चिन्ते विभीर्षान्ति विकर्मस्यास्तु येहिजं:
ब्रह्मणा चपरित्यक्ता तेषाम्ध्यतदादिशेत्।।
ददृगर्हितनार्च पाति कर्मणा ब्राह्मणधनम्।
तस्योत्सर्पेण युद्धपतिजप्येन तपस्वैच।। - मनुस्मृति/९२-९३/१२२

१७. हिरण्यं भूमिमश्वं .... गौरिव सीदति।। - मनुस्मृति/४/१८८-९१

१८. शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं .... न दुष्यति।। - मनुस्मृति ८/३४८-४९

१९. आपदि व्यवहरेत .... विशेषेणं विक्रीणीयात - आपस्तम्ब/१, ७, २०, १३-१२

२०. हिन्दू धर्मशास्त्र का इतिहास : काणे/भाग २/ पृष्ठ २३१-३२

२१ देवद्विजसपर्या हि कामधेनुर्मता सताम् ।
किं हि न प्राप्यते तस्या: शेषा: सामादिवर्णना:।। - कथासरित्सागर/लम्बक ३/ तरंग ३/१३४

२२. ततोऽसामान्यतद्रूपलोभलुण्ठितलज्जया।
तयाप्यूचे स विनमद् वक्त्रया मुनिपुङ्गव:।।

एषा यदीच्छा ङलचो नमाखसारो न चेदयम् ।
तद्देव दाता नृपति: पिता में याच्यतामिति।। - कथासरित्सागर/लम्बक ६/ तरंग २/८१-८२

२३. स दरिद्रश्चतुर्वेदो गुणैर्युक्तस्तदन्तिकम्
प्रतिग्रहार्थी प्राविक्षत्तदा द्वा:स्थनिवेदित:।।

सा तस्मै वेदसंख्याकान् ददौ सौर्वपुंभुजान् ।
अर्चिताय व्रतक्षामैरङ्गैर्विरहपाण्डुरै:।। -कथासरित्सागर/लम्बक ७/ तरंग ४/१०२-१०३

२४ तेन सम सा जिगमिषुरसहा विरहस्य मदनमालापि।
त्यक्ष्यन्ती तं देशं ब्राह्मणसादकृत वसति स्वाम् ।। -वही/१५७

२५ क्रमात्स वृद्धिं सम्प्राप्त: श्रीदत्तो ब्राह्मणोऽपि सन्।
अस्त्रेशु बाहुयुद्धेषु बभूवाप्रतिमोश भुवि।।

द्वावेतस्याथ मिश्रत्वं विप्रस्यावन्तिदेशजौ।
क्षत्रियौ बाहुशाली च वज्रमुष्टिश्च जग्मतु:।।

बाहुयुद्धजिताश्चान्ये दाक्षिमात्या गुणप्रिया.।
स्वयंवरसुहृत्त्वेन मन्त्रिपुत्रास्तमाश्रयन् ।।

-कथासरित्सागर/लम्बक २/ तरग २/१५ और १९-२०

२६. उदतिष्ठत्समाकृष्य सोऽथ खड्ग मृगाङ्ककम् ।
सापि स्त्री राक्षसीरुप घोरं स्वं प्रत्यपद्यत।। -वही/वही/वही/७३

२७ स च शूरोऽतिरुपश्च वेदविद्यान्तगो युवा।
कलाशस्त्राविद्विप्र: सिषेवे त नृपं सदा।।

अथवोचत्स राजा त वियुद्धं यदि वेसित्स तत् ।
एकं मे बन्धकरणं शून्यहस्तं प्रदर्शय।।

गृहाण देव शस्त्राणि मयि प्रहर च क्मात् ।
यावत्ते सर्धयामीति स विप्र: प्रत्युवाच तम् ।।

तत: स राजा खड्गादि यद्यदायुधमग्रहीत् ।
तत्तत्प्रहरतस्तस्यहुणसर्माविहेलया।।

तेनैव बन्दधकरणेनापहृत्यापहृत्य स:।
बबन्ध राज्ञो हस्तं च गात्रं चाप्यक्षतो मुहु:।। -कथासरित्सागर/लम्बक ८/ तरंग ६/८ और २५-२८

२८ एतद्दिव्य वच: श्रुत्वा स महीपालमेव मत् ।
चन्द्रस्वामिसुतं नाम्ना चकार रचितोत्सव.।।

क्रमाच्च स महीपालो विवृद्धो ग्राहितोऽभवत् ।
शस्त्रावेदं विद्यासु समं सर्वासु शिक्षित:।। -कथासरित्सागर/लम्बक ९/ तरंग ६/८-९

२९. आक्षीणकोषनिचदप्रभवप्रभावात् ।
सम्भूतभूरिगजवाजिपदातिसैन्य:।

दानप्रसाद मिलिता खिलपार्थिवानां।
रुन्धन्बलैरवनिमुज्जयिनीं जगाम।।

प्रख्याप्त तस्यां तदशोकवत्या: प्रजास्वीशीलं समरे च भूपम् ।
जित्वा महासेनमपास्य राज्यात्पृथ्वीपतित्वं स समाससाद।। -कथासरित्सागर/लम्बक ८/ तरंग ६/
२४८-२४९

सोऽपि श्रीदशनस्तत्र वृद्धिं प्राप्त: पितुर्गहे।
प्रकर्षं वेदविद्यासु प्रापस्त्रेषु च वीर्यवान् ।। -कथासरित्सागर/लम्बक १२/ तरंग ६/६९

ज्ञानविज्ञानिशूरेभ्यो नान्यमिच्छति सा पतिम् ।
इति तेनापि सोऽप्युक्तः सूरमात्मानमभ्यधात् ।।

ततो दर्शितशस्त्रास्त्रश्रिये तसमै द्विजोऽनुजाम् ।
देवस्वामी स शूराय दातुं ता प्रत्यपद्यत।। -कथासरित्सागर/लम्बक १२/ तरंग १२/२०-२१

३० लाइफ आफ द ब्राह्मणाज इन अर्ली मेडिवल इन्डिया एज नोन फ्राम कथासरित्सागर अर्पणा चट्टोपाध्याय (जनरल आफ ओरियण्टल इन्स्टीटयूट/वाल्यूम १६/ सन् १९६६/पृष्ठ ५२-५९)

३१. -कथासरित्सागर/लम्बक १२/ तरग ७/१५४-१५५
वही/वही/ तरंग ६/६९ , वही/वही/ तरंग १२/२०-२१

३२. अथ प्राङ्मुखसौवर्णभद्रपीठप्रतिष्ठितः .... नः पृथिवीमिमाम् ।।
-राजतरंगिणी/तरंग ३/ २३९-२४२

३३ द्विजस्तिब्याभिधो वीरः . ... कापुरुषोचितम् ।। -राजतरंगिणी/तरंग ७/ ६७५-६७६
परं व्यायाम विद्याविद्रुते . . .. व्ययादर्यत् ।। -राजतरंगिणी/तरंग ७/ १०७-७३
लवराज्ययशोराज्द्विजौ .... त्रय परम् ।। -राजतरगिणी/तरंग ८/ १३४५
रणे पूर्णव्रणाश्यानशोणितो ... . त्रातुमक्षमम् ।। -राजतरगिणी/तरंग ७/ ३०१८-१९

३४ शस्त्रास्त्र युद्धकुशलो वभूव कृतिनांवरः। - वृहत्कथा/गुच्छ/१ ५.६१०
अशोकदन्तः शस्त्रास्त्रकल्प विद्याविशारद.।। - वही/५.५ १२३

ततो विदूषकोऽवादी दहमेतत्करोमि भोः।
आनयामि निशि च्छित्वा मासास्तेषां श्मशानत.।।

ततस्तद्दुष्करं मत्वा तेऽपि मूढास्तमब्रुवन् ।
एवं कृते त्वमस्माकं स्वामी नियम एष नः।।

प्रविवेश च तद्वीरो निजं कर्मेव भीषणम् ।
चिन्थितोपसिथताग्नेयकृपाणैकपरिग्रहः।।

डाकिनीनादसंवृद्धगृध्रवायस-वाशिते।
उलकामुखमुखोल्काग्निविसफारितचितानले।।

ददर्श तत्र मध्ये च स तान् शूलाधिरोपितान् ।
पुरुषान्नासिकाछेदभियेवोर्ध्वीकृताननान् ।।

तेनापगतवेतालविकाराणां स नासिकाः।
तेषां चकर्त बद्धवा च कृति जग्राह वाससि।।
-कथासरित्सागर/लम्बक ३/ तरंग ४/१४३-१४४, १४६-१४८, १५१
यह विदूषक ब्राह्मणकथा - वृहत्कथामंजरी मे भी - गुच्छ ५ मे विदूषक कथा अकित है।

३५ तत्रैवाधीतविद्योऽस्य स सुतः प्राप्तयौवनः।
द्वितीयोऽशोकदतख्यो बाहुयुद्धमशिक्षत।।

क्रमेण च ययौ तत्र प्रकर्ष स तथा यथा।
अजीयत न कैनापि प्रतिमल्लेन भूतले।। -कथासरित्सागर/लम्बक ५/ तरंग २/११९-१२०

३६ मामद्यलोकयात्रां त्वं शिक्षयैतेन साम्प्रतम्।
इति जल्पन्स तत्तस्यै स्वर्णमर्तितवान् द्विज:।।

प्रहसत्यथ सत्रस्थे जने किञ्चिद् विश्चिन्त्य स·।
गोकर्णसदृशौ कृत्वा करावाबद्धसारणौ।।

तारस्वरं तथा साम गायति स्म जडाशय:।
यथा तत्र मिलन्ति सम विटा हास्यदिदृक्षव·।।

ते चावोचन्शृगालोऽयं प्रविष्टोऽत्र कुतोऽन्यथा।
तच्छीघ्रमर्धचन्द्रोऽस्य गलेऽस्मिन्दीयतामिति।। - कथासरित्सागर/लम्बक १/ तरंग ६/५६-५९

३७. निर्ययुस्ते च संसक्तकलहा लोलनिष्ठुरा:।
भयकार्कश्यकोपानां ह्रहं हि च्छान्दसा द्विजा:।। - कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरंग ४/१०८

३८. अथवा दैवसंसिद्धावासृष्टेर्विदुषामपि।
कामक्रोधो हि विप्राणां मोक्षद्वारर्गलावुभौ।।
तदेवं कामकोपादिरिपुषड्वर्गवञ्चिता:।
मुनयोऽपि विमुह्यन्ति श्रोत्रियेषु कथैव का।। - कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरंग ६/१३०, १३४

३९. स चापुत्रो बहून्विप्रान्सङ्घट्य प्रणतोऽब्रवीत् ।
तथा कुरुत पुत्रो मे यथा स्यादचिरादिति।।

ततस्तमूचुर्विप्रास्ते नैतत्किञ्चन दुष्करम्।
सर्वहि साधयन्तीह द्विज: श्रौतेन कर्मणा।।

तथा च पूर्वमभवद्राजा कश्चिदपुत्रक ।
पञ्चोयेषट्याच तस्यैको जन्तुर्नाम सुतोऽजनि।
तत्पत्नीनामशेषाणां तूतनेन्दूदयो दृशि।। -कथासरित्सागर/लम्बक २/तरंग ५/५५-५८

४०. कथासरित्सागर/लम्बक १/तरंग ५/४६

४१. स्वानुगैर्लुण्ठितं .... नगरेऽप्यगात् ।। -राजतरंगिणी/तंरग ८/ २०६०-६१

४२. -राजतरंगिणी/तंरग ७/ ३९५-३९७

४३. पार्थ: परमदुर्मेघा: .... नगराधिकृत: कृत:।। -राजतरंगिणी/तंरग ७/१०८

४४. क्षत्रस्यातिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणान्प्रति .... प्रायमं रणे।। - मनु स्मृति ९/३२०-३२३

४५. शौर्यतेजो .... स्वभावजम् ।। - महाभारत/ ६.४२, ४३
. क्व चारण्यं क्व .... क्लेशयस्त्रहि।। - रामायण/अयोध्या/१०६-१८-२१

४६. तदर्थ कुपितायातं तस्या भ्रातरमुथधतम्।
स सहस्त्रायुधं नाम विद्या स्तम्भितं व्यधात।।

मातुलं च सहायातं तस्य संस्तभ्य सानुगम् ।
चक्रे मुण्डितमूर्धानं तत्कान्ताहरणैषिणम् ।। - कथासरित्सागर/लम्बक ८/तरंग १/५८-५९

४७. कथासरित्सागर तथा भारतीय संस्कृति : डॉ० एस० एन० प्रसाद/ पृष्ठ ७३-७४

४८. कृतकल्पतरु गार्हस्थ्य काण्ड/गार्हस्थ्य काण्ड/पृष्ठ २५१-२५८

४९ स्वकर्मब्राह्मणस्य .... . . पितृपूजनं। -देवल

५० क्षत्रिस्याध्ययनं यजन दानं शस्त्राजीवो भूतरक्षणं च।-कौटिल्य/३-६

५१ वितस्तापुलिने बाणलिङ्गे ....विहारेण व्यभूषयत् ॥ -राजतरंगिणी/तरंग ८/३३४९-५२

५२. गृहीतसर्वनैरश्य: . ... स्थगिताश्वा: पदे पदे॥ - राजतरंगिणी/तरंग ७/१६१६-१८

५३. अनुजानीहि मां तात दिशो जेतुं व्रजाम्यहम् ।
अजिगीषु: पतिर्भूमेर्निन्ध्य: क्लीब इव स्त्रिय:॥

धर्म्या कीर्तिकरी सा च लक्ष्मीरिह महीभुजाम् ।
या जित्वा परराष्ट्राणि निजबाहुबलार्जिता॥

किं तेषां तात राजत्वं क्षुद्राणामभिभुतये।
स्वप्रजामेव खादन्ति मार्जारा इव लोलुपा:॥

इत्यूचिवान् स तेनोचे पित्रा सागरवर्मणा।
नूतनं पुत्र राज्यं ते तत्तावत्त्वं प्रसाधय॥

नास्त्यपुण्यमकीर्त्तिर्वा प्रजा धर्मेण शासत:।
अनवेक्ष्य च शक्ति स्वां सैन्यमस्ति च ते बहु॥

वत्स यद्यपि शूरस्त्वं सैन्यमस्ति च ते बहु।
तथापि नैव विश्वासो जयश्रीश्चपला रणे॥

इत्यादि पित्रा प्रोक्तोऽपि तमनुज्ञाप्य यत्नत:।
समुद्रवर्मास ययौ तेजस्वी दिग्जिगीषया॥

क्रमेण च दिशो जित्वा स्थापयित्वा वशे नृपान् ।
प्राप्तहस्त्यश्वहेमादिराययौ नगरं निजम् ॥ - कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरंग २/३७०-७७

५४. वासुदेव उपाध्याय : सो० इ० हि० इ०/पृष्ठ ६१,

५५. आराजपुत्रचण्डालं .... कर्तुमनृणं पतिम्॥ - राजतरंगिणी/तरंग ७/४५८
तदस्मत्तो वृणीष्वान्यं वरं यमभिवाञ्छसि
यदा त्वामर्थयिष्येऽहमुपयुक्तं तदा वरम् । -कथासरित्सागर/लम्बक ७/तरंग ४/७०

५६. क्षत्रिय को क्षात्रकर्म के अन्तर्गत दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वर्ग मे राजा सामान्त उनके सम्बंधी तथा विशिष्ट राजपुरुष आते थे। तत्कालीन समाज मे इनका प्रमुख प्रमुख स्थान था। दूसरा वर्ग सैनिको तथा योद्धाओ का था। राज्य की सुरक्षा के लिए सेना मे इनकी नियुक्ती की जाती थी

कथासरित्सागर तथा भारतीय संस्कृति : डॉ० एस. एन. प्रसाद/पृष्ठ ७४
एपिग्राफिया इण्डिका/१९,१७- निम्न अभिलेख में यह साक्ष्य है।

५७. रघु दिग्विजय (रघुवंश) : कालिदास।

५८. एतच्छुत्वा जगादैनं पुनर्यौगन्धरायण:।
स्फीतापि राजन्कौबेरी म्लेच्छससर्गगर्हिता।। -कथासरित्सागर/लम्बक ८/तरंग १/५८-५९

५९ राजन्युध्यस्व नि:शङ्क शत्रूञ्जेष्यसि सङ्गरे।
इत्युद्गतां च गगनात्सोऽथ शुश्राव भारतीम् ।।

त: प्रहृष्ट: संनह्य तेषां निजबलान्वित:।
राजा चमरवालोऽग्रे युद्धाय निरगाद्द्विषाम् ।।

त्रिंशद् गजसहस्राणि त्रीणि लत्राणि वाजिनाम् ।
कोटि: पादभटानां च सत्यासीद्वैरिणां बले।।

स्वबले च पदातीनां तस्य लक्षाणि विंशतिं ।
दश दन्तिसहस्राणि हयानां लक्षमप्यभूत् ।।

प्रवृत्तु महायुद्धे तयोरुभयसेनयो·।
यथार्थनाम्नि वीराख्ये प्रीतहारेऽग्रयायिनि।।

स्वयं चमरवालोऽसौ राजा तत्समराङ्गणम् ।
महावराहो भगवान्महार्णवमिवाविशत् ।।

ममर्द् चाल्पसैन्योऽपि परसैन्यं महत्तथा।
यथाश्वगजपत्तीनां हयाना राशयोऽभवन् ।।

- कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरंग ४/२१६-२२२

६०. लुब्धो यशसि न त्वर्थे भीत: पापान्न शत्रुत:।
मूर्ख: परापवादेश न चु शास्त्रेषु योऽभवत् ।।

अल्पत्वं यस्य कोपेऽभून्न प्रसादे महात्मन:।

चापे च बद्धमुष्टित्वं न दाने धीरचेतस:।। -वही/लम्बक ९/तरंग ५/३०-३१

६१. प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते स नृप: सैन्ययोर्ग्यो:।
शौर्यदर्पाद्गजारूढ: प्रविवेशाहवं स्वयम् ।।

धनुर्द्विर्वतीयं दृष्ट्वा तं दलयन्तं द्विषच्चमूम् ।
महाभटाद्या: पञ्चापि राजानाऽभ्यपतन्समम्।। -वही /लम्बक १०/तरंग २/ ७-८

६२. · तत्प्रजा रक्ष धर्मेण समुन्मलय कण्टकान्।
हस्त्यश्वास्त्रादियोग्याभिश्चललक्ष्यादि साधय।

भुङ्क्ष्व राज्यसुखे देहि धनं दिक्षु यश: किर।
कृतान्तक्रीडितं हिंस्रं मृगयाव्यसनं त्यज।। -वही/लम्ब १२/तरंग २७/४१-४२

६३. कार्याकार्यविभाग: प्राग्बोद्धव्यो विजिगीषुणा।
असाध्यं यदुपायेन तदकार्य परित्यजेत् ।। -वही/लम्बक १२ /तरंग ३५/ १२१,

६४. चेलुश्चानुचारास्ते ते प्रवीरा: परिवार्य तम।
भक्ता भीताश्च गन्धर्वचाजविद्याधराधिपा:।।

सेनापतेर्हरिशिखस्यादेशानुविधायिनः ।
चण्डसिंहः समं मात्रा धनवत्या सुमेधसा।। -इत्यीदि-वही/लम्बक १५/तरंग १/३५-३९,

६५ त्वया च दृष्टा नाद्यापि जिगीषा सुखसङ्गिना।
तदुद्युक्तो भवालस्यमुत्सृज्य मयि तिष्ठित।।

विजस्याग्रतो गत्वा त्वमङ्गाधिपतिं रिपुम्।
अस्मा-प्रतिकृतारम्भं निजदेशाद्विनिर्गतम्।। -वही/लम्बक १२/ तरंग ४/१०५-६,

६६. म्लेच्छाक्रान्ते च भूलोके निर्वषट्कारमङ्गले।
यज्ञभागादिविच्छेदादेवलोकोऽवसीदति।। -कथा०/ लम्ब १८/ तरंग १/२२

६७. चत्वारो वर्णा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य मूडाः तेषां पूर्व पूर्ण जन्मतः श्रेयस्व/- आपस्तम्भ १.१.१.५

६८. शतं क्षत्रियो ब्राह्मणा क्रोशं, अध्यर्थ वैश्यः।
ब्राह्मणास्तु क्षत्रियो पञ्चाशतातद्धर्म वैश्यः- गौतम २१/६-१०
शतं ब्रह्मणमाक्रुशय क्षत्रियो . ... द्वादशको दम.।। -मनु०/८-२६७-६८

६९. गोक्ष्योवृत्ति समास्थय पिताः क्रिन्योपजीविनः।
स्वधर्मान्मानुभतिष्ठतिते हिजा वैश्यतांगता।। -महा०/१२/१८८/१-१८
(अर्थात ब्राह्मण जो निजधर्म त्याग, गोपालन आदि वृत्तियो मे प्रवृत्त हो जाय वह वैश्या को प्राप्त है।)

७०. वैश्योधर्नाजनं कुर्यात्। -वही/५/१३२-२०,
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यस्य कर्म स्वभावजम्।। - वही/६,४२,४४

७१. बौधायन/२,२,८०

७२ अस्तीह बहुरत्नाढ्या मथुरेति महापुरी ।।
तस्यामभूद् वणिक्पुत्रः कोऽपि नाम्ना यइल्लकः।
- कथा०/ लम्बक ३/ तरंग १/८४-८५

७३. वभूव देवदास्याख्यः पुरे पाटलिपुत्रके।
पुरा कोऽपि वणिक्पुत्रो महाधनुकुलोद्गतः।। -वही/लम्बक ३/तरंग ५/१६,

नगर्या पुष्करावत्या गूढसेनाभिधो नृपः।
आसीत्तस्य च जातोऽभूदेक एवं किलात्मजः ।।

भ्राम्यतोपवने जातु दृष्टस्तेनैकपुत्रकः ।
वणिजो ब्रह्मदत्तस्य स्वतुल्यविभवाकृतिः।।

दृष्ट्वा च सद्यः सोऽनेन स्वयंवरसुहृत्कृतः।।
-वही/लम्बक ६/तरंग २/११३-१४ व १६,

७४. रुद्रो नाम वणिग्देव नगर्यामहि विद्यते। - लम्बक ९/तरंग ४/८६

चक्रो नाम वणिक्पुत्रो धवलाख्येऽभवत्पुरे ।
सोऽनिच्छतोरगात्पित्रोः स्वर्णगीपं वणिज्यया।। -लम्बक ९/तरंग ६/१४०,

तथा च भवता पूर्व भ्रातरौ दौ वणिक्र सुतौ।
धर्मबुद्धि स्तथा दृष्टिबुद्धिः क्वचन पत्र ने।।

तावर्थार्थ पितुगृहात् गत्वा देशान्तर सह।
कथंचित स्वर्णदीनार सहस्रग्व्यं मापुतः।। - लम्बक १०/ तरंग ४/१११-१२

७५. एवं भवत्युपायेन कार्यमन्यच्च मे शृणु।
आसीत्कोऽपि तुलाशेषः पित्र्यर्थात्प्राग्वणिक्सुतः।।

अयः पलसहस्रेण घटितां तां तुलां च सः।
कस्यापि वणिजो हस्ते न्यस्य देशान्तर ययौ।।

-लम्बक १०/तरंग ४/२३७-३८,

७६. उपाध्यायमथाभ्यर्थ्य तयाकिञ्चन्यदीनया।
क्रमेण शिक्षितश्चाहं लिपिं गणितमेव च।।

-लम्बक १/तरंग ६/३२

७७. योगनन्दोऽथ विजने सशोको व्याडिमब्रवीत्।
शूद्रीभूतोऽस्मि विप्रोऽपि किं श्रिया स्थिरयापि मे।।

-लम्बक १/तरंग ४/११४

७८ शूद्रस्तु वृत्तिमाकाङ्क्षन्क्षत्रमाराधयेद्यदि।
धनिनं वाप्युपाराध्य वैश्यं शूद्रो जिजीविषेत्।। -मनु० १०/१२१

एवमुक्ततवां तेषां शुद्रविट् क्षत्रियास्त्रयः।
रूपं शौर्य बलं चैव शशंसुः पृथगात्मनः।। -लम्बक ९/तरंग २/१०५

७९. कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरंग १/११९-२०

८०. एकस्तत्राभ्युपायः स्याद्यत्सुहृन्मेऽस्ति नापितः।
ईदृग्विज्ञानकुशलः स चेत्कुर्यादिहोद्यमम्।।

इत्यालौच्यैव सा तस्य नापितस्यान्तिकं ययौ।
तस्मै मनीषितं सर्व तच्छशंसार्थसिद्धिदम्।

ततः स नापितो वृद्धो धूर्त्तश्चैवमचिन्तयत्।
उपस्थितमिदं दिष्ट्या लाभस्थानं ममाधुना।।

-लम्बक ६/तरंग ६/१३५-१३९,

८१. हरिणाखेटके जातु भ्राम्यन्नुदयनोऽथ सः।
शबरेण हङ्गाक्रान्तमटव्यां सर्पमैक्षत ।।
सदयः सुन्दरे तस्मिन्सर्पे तं शबरं च सः।
उवाच मुच्यतामेष सर्पो मद्वचनादिति।।
ततः स शबरोऽवादी ज्जीविकेयं मम प्रमो।
कृपणोऽहं हि जीवामि भुजगं खेलयन् सदा।।
-लम्बक २/ तरंग १/७४-७६, लम्बक ४/ तरंग २/१२० व १५० भी।

८२. तत्र वत्सेश मित्रस्यप्राम्भाग्वासिन: ।
गृहं प्रलिन्दाख्यास्य पुलिन्दाधिप तरंगात॥

ते सज्जनं स्थापथित्वाच यथातंनाशमिष्यत:।
वत्सराजस्य रक्षार्थ मूरिसैन्यं समन्वितम्॥ -लम्बक २/तरंग ३/४५-४६,

तत्राहमुपहारार्थमुपनीतो निजस्य तै:।
प्रभो: पुलिन्दकाख्यस्य देवी पूजयतोऽन्तिकम्।

स दृष्ट्वैवार्द्रहृदय: शबरोऽप्यभवन्मयि।
वक्ति जन्मान्तरप्रीतिं मन: स्निह्यदकारणम्॥ -लम्बक ४/ तरंग २/६४-६५,

के यूयमिति पृच्छन्तं मत्वा गृहपतिं स तम्।
भीत: पान्था: स्म इत्याह विष्णुदत्त: पुलिन्दकम्॥

स चान्त: शबरो गत्वा दृष्ट्वा भार्या तथास्थिताम।
चिच्छेद सत्य सुप्तस्य तज्जारस्मासिना शिर: ॥ -लम्बक ६/ तरंग ६/६८-६९

८३. किमेतदिति सम्भ्रान्तं तं जाभ्येत्यैव तत्क्षणम्।
राजचपुत्रो गजारूढो निर्भयाख्यो व्यजिज्ञपत् ॥

देवाग्रतोऽतिमहती भिल्लसेनाभिधाविता।
तैवार्रणा न: पञ्चाशन्मात्रा भिल्लै रणे हता:॥ -आदि/आदि/ लम्बक ९/तरंग १/१६३-६८,

८४. अस्ति वारिनिधेर्मध्ये द्वीपमुत्स्थलसंज्ञकम्।
तत्र सत्यव्रताख्योऽस्ति निषादाधिपतिर्धनी॥

तस्य गैपान्तरेष्वस्ति सर्वेष्वपि गतागतम्।
तेन सा .... तस्येष्टसिद्धये॥ -कथा०/लम्बक ५/तरंग २/३३-३६

८५. तत्र सागरवीराख्यो वास्तव्यो वास्तव्यो धीवराधिप:।
नगरेऽम्भोधिनिकटे तस्यैको मिलितोऽभवत्॥

तेनाब्धिजीविना सांक सोऽथ गत्वाम्बुधेस्तटम्।

तद्नौकितं यानपात्रमारुरोह प्रियासख:।
ततो ऽब्धौ————कतिचिगणिक्॥ -कथा ०/लम्बक ९/तरंग २/३२०-२२,

८६. किं चेह धर्मव्याधाख्यं मांसविक्रयजीविनम्॥
गत्वा पश्य तत: श्रेयो निरहङ्कारमाप्स्यसि ॥ -कथा०/ लम्बक ९/तरंग ६/ १८१,

८७. नगरीनिर्गतां दृष्ट्वा शङ्काशीघ्रगतिं च ताम्।
मृदङ्गहस्तो मोषाय डोम्ब: कोऽप्यन्वगाद्द्रुतम्॥

न्यग्रोधस्य तलं प्राप्य सा दृष्ट्वा तमुपागतम्।
डोम्बं सिद्धिकरी धूर्त्ता सदैन्येवेदमब्रवीत्॥
पादाघातेन डोम्बोऽथ सोऽपि पाशे व्यपद्यत॥-लम्बक २/तरंग ५/९६-१०२,

८८. पञ्चपट्टिकनामाहं शूद्रो विज्ञानमस्ति मे
वयामि प्रत्यहं पञ्च पट्टिकायुगलानि यत्॥ -लम्बक ९/ तरंग २/ ९९,

८९ मूर्खो दृष्टव्यलीकोऽपि व्याजसान्त्वेन तुष्यति।
तथा हि तक्षा कोऽप्यासीद् भार्याभूत्तस्य तु प्रिया।।- लम्बक १०/ तरंग ६/१०४,

तस्य राष्ट्रे नृपस्यावां तक्षाणौ भ्रातरावुभौ।
मयप्रणीतदार्वादिमायान्त्रविचक्षणौ ।।-लम्बक ७/ तरंग ९/२२

९०. कथासरित्सागर तथा भारतीय संस्कृति : डॉ० एस० एन० प्रसाद/पृष्ठ ८४
(पाद टिप्पणी -१)

९१. इति तत्कटकस्थेभ्य: सामन्ते भ्यस्तत: शपु:।
राजादेशं तदाराज्ञो तत्रारुजैव भिलिख्य सा।।

सन्धि विग्रहकायस्थेना इतेनार्थ- समन्वयै:।
उपाशु काव्यालंकार व्यसृज्यल्लेश्वहार का:।।

-आदि-आदि/लम्बक १० / तरंग ८/९०-९४,

प्रदर्श्य तस्मै लेखांश्च यथावृत्तं तमब्रुवन्।
सोऽथ बुद्ध्वा तदुद्भ्रान्त: क्रुद्धस्तानेवमब्रवीत।।

नैते मत्प्रहिता लेखा इन्द्रजालं किमप्यद:।
यूयं च न किमेतावदपि जानीथ बालिशा:।।

-आदि-आदि/लम्बक ७/तरंग ८/१०८-११३

९२. स्कन्दकग्रामकायस्थमासवृत्त्यादिसंग्रहै:।
अन्यैश्च विविधायासव्यधान्द्रामान्स निधनान्।।

मुख्येन गुणिनां राज्ञा धनहान्या प्रथापहा:।
मूर्खेण येन कायस्था दास्या: पुत्रा: प्रवर्तिता:।।

तथा कायस्थभोज्या भूर्जाता तत्प्रत्यवेक्षया ।
यथा संजायतेवर्ण हरणादिव भूभुजाम्।।

- राजतरंगिणी/ तरंगी ५/ १७५ एवं १८०-१८१,

९३. कायस्थप्रेरणादेतैर्देवेनाद्य प्रवर्तितै: ।
आयासै: श्र्वासशेषैव प्राणवृत्ति: शरीरिणाम्।।

तदाक्ष पटलं गत्वा रङ्ग कोपान्तम द्रवीत्।
रुङ्गहेलु दिण्णेति दासी सुत न लिख्यते ।।

-वही तरंग ५/१८४ व ३९८/इसके अतिरिक्त तरंग ४/६२१,२९,३०/तरंग ६/८,३८,१३० १३६/तरंग ७/४५, और तरंग ८/२३,८३।

९४. इति मन्मातृवचनं श्रुत्वा तौ हर्षनिर्भरौ।
व्याडीन्द्रदत्तौ तां रात्रिमबुध्येतां क्षणोपमाम्।।

अथोत्सवार्थमम्बायास्तूर्ण दत्वा निजं धनम्।
व्याडिनैवोपनीतोऽहं वेदार्हत्वं ममेच्छता।। -लम्बक १/तरंग २/७३-७४,

९५ बालस्यैव तवाकाण्डे कोऽयं पुत्र मतिभ्रमः ।
उपयुक्ते हि तारुण्ये प्रशमः सद्भिरिष्यते।।

कृतदारस्य धर्मेण राज्यं पालयतस्तव।
भोगान्भोक्तुमयं कालो न वैराग्यस्य साम्प्रतम् ।। -लम्बक ९/तरंग १/३१-३२,

९६ तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः।
स्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा।।

गुरुणानुमताछ स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ।
उग्हेत द्विजो भार्यो सवर्णो लक्षणान्विताम्।। -मनु० ३/३-४,

९७. वही/३/४,

९८ एकाश्रुभ्याम् त्वाचार्या .... पितृभ्य इति। - बौधायन धर्मसूत्र/२६,२९/४२-४३ एवं ब्रह्मचारी गृहस्थो भिक्षु वैखानस्य .... गौतम-३

९९. ततो यथावद्ववृतेस्तया वत्सेश्वरस्य च।
व्यग्रो गोपालकोऽन्येद्युस्तत्रोद्वाहमहोत्सवे।

रतिवल्लीनवोद्भिन्नमिव पल्लवमुज्ज्वलम्।
पाणिं वासवदत्तायाः सोऽथ वत्सेश्वरोऽग्रहीत्।। -लम्बक २/तरंग ६/२६-२७, लम्बक ४/तरंग ३/७६

१००. नन्दत्स्वपि च यौगन्धरायणादिषु मन्त्रिषु।
गगनादुच्चचारैवं काले तस्मिन् सरस्वती।।

अनेन भवितव्यं च दिव्यं कल्पमतन्द्रिणा।
सर्वविद्याधरेन्द्राणामचिराच्चक्रवर्त्तिना ।।

कामदेवावतारोऽयं राजनजातस्तवात्मजः।
नरवाहनदत्तञ्च जानीह्येनमिहाख्यया।।

इत्युक्त्वा विरतं वाचा तत्क्षणं नभसः क्रमात्।
पुष्पवर्षैर्निपतितं प्रसृतं दुन्दुभिःस्वनैः।। -लम्बक ४/तरंग ३/७३-७५,

१०१. चन्द्रस्वामिन् महीपालो नाम्ना कार्यः सुतस्त्वया।
राजा भूत्वा चिरं यस्मात् पालयिष्यत्ययं महीम्।।

एतद्दिव्यं वचः श्रुत्वा स महीपालमेव तम्।
चन्द्रस्वामिसुतं नाम्ना चकार रचितोत्सवः।। -लम्बक ९/तरंग ६/६-८

१०२. यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।।

यस्मान्त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही।।

स संधार्य: प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियै:।।

ऋषय: पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा ।
आशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्य कार्य विजानता।। -मनु० ३/७७-८०,

१०३ एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विज:।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रिय:।।

गृहस्थस्तु यदा पश्येग्लीपलितमात्मन:
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्।।

संत्यज्य ग्राम्यमाहारं संर्वचैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा।। -मनु० ६/१-३,

१०४ जगाद च कियद्दु:कमनुभूतमहो मया।
असारविरसेष्वेषु भोगेष्वासक्तचेतसा।।

तदिदानी वनं गत्वा हरिं शरणमाश्रये।
येन स्यां नैव दु:खानां भाजनं पुनरीदृशाम्।।

ततोऽर्धमर्पयित्वादावेकं साध्व्यै स्वकोषत:।
शीलवत्यै द्विजेभ्योऽर्ध दत्वान्यद् भोगनिस्पृह:।

पाप भञ्जनसंज्ञाय ब्राह्मणाय यथाविधि।
ददौ गुणगरिष्ठाय निजं राज्यं स भूपति:।। -कथा०/ लम्बक ७/तरंग २/१०५-९,

१०५. भुक्त्वा च तत्र गगनेचरचक्रवर्त्तिलक्ष्मीं सुतेन सह तेन चिरं स राजा।
तस्मिन्निवेश्य निजराज्यधुरं विरवतो देव्या समं मुनितपोवनमाश्रित्तोऽभूत्।।

आलोच्य भावानवसाननीरसान्संश्रित्य चान्ते स मुनीन्द्रकाननम्।
ज्योति: परं प्राप्य तप: प्रकर्षत: सायुज्यमीशस्य जगाम धूर्जटे:।।
-कथा०/लम्बक १७/तरंग ६/२१३ एवं २१६,

१०६. हन्त मोहं विहायैतं स्वं प्रभुं शरणं श्रये।
इत्यालोच्य द्विज: सूर्य स स्तोतुमुपचक्रमे।।

तुभ्यं परापराकाशशायिने ज्योतिषे विभो।
आभ्यन्तरं च बाह्यं च तम: प्रणुदते नम:।

त्वं विष्णुस्त्रिजगद्व्यापी त्वं शिव: श्रेयसां निधि:।
सुप्तं विचेष्टयन्विश्वं परमस्त्वं प्रजापति:।। -लम्बक ९/तरंग ६/२८-३०,

१०७. अथात्रेश्वरवर्मा स यमजिह्वागृहे कला:।
वर्षेणैकेन शिक्षित्वा पितुस्तस्य गृहं ययौ।।

प्राप्तषोडशवर्षश्च पितरं तमुवाच स:।
अर्थाद्धि धर्मकामौ न: पूजार्थादर्यत: प्रथा।। -लम्बक १०/ तरंग १/ ६९-७०

१०८ स करङ्कश्च यत्छिप्तस्तीर्थे तत्र मम त्वया।
युक्तं तद्विहितं त्वं हि मित्रं मे पूर्वजन्मनि।।

एष भेषजचन्द्रश्च तथाऽसौ पद्मदर्शनः ।
एतावपि च तज्जन्मसङ्गतौ सुहृदौ मम।।

तत्तस्य तपसो मित्र प्राक्तनस्य प्रभावत.।
जातिस्मरत्वं ज्ञानं च राज्यं चोपनतं मम।। -लम्बक ७/ तरंग ६/ १०४-६,

चर्तुथ अध्याय

कथासरित्सगार में प्रतिबिम्बित सामाजिक जीवन

- स्त्रियों की दशा,
- खान-पान
- परिधान
- अलङ्करण/वेशभूषा
- मनोरंजन के साधन।

कथासरित्सगार में प्रतिबिम्बित सामाजिक जीवन

महाकवि गुणाढ्य विरचित पैशाची भाषा-निबद्ध 'बड्ढकहा' का संस्कृत रूपान्तर 'कथासरित्सागर' कवि सोमदेव भट्ट की रचना है। कश्मीर नृपों के अन्तःपुर सरस,शृङ्गार-प्रधान और कामरसोद्रेक साहित्य के पोषक रहे। रानियां, राजकुमारियां ऐसा सरस साहित्य पढ़ने में मधुर रुचि रखती थीं। नृपति अनन्त की महारानी सूर्यमती के आदेश पर सोमदेव ने यह रचना प्रस्तुत की थी। रचना का विषय रागानुराग-समन्वित प्रेमकथाएं हैं, जहाॅ पर शृंगार की तरंगिणी तरंगायित होकर जनमानस के हृदय को आह्लादित करती दिखायी पड़ती है। ऐसी स्थिति में शृङ्गार रस-रसित, संयम-तट का अतिक्रमण कर उच्छृंखला हो उठी है। जिसका परिणाम है शृङ्गार भूमि नारी की मनसा, वाचा एवं कर्मणा अनियंत्रित प्रकृति और प्रवृत्ति । उनके साथ ही समाज की नैतिक गति भी उच्छृंखला हो उठी, यहाॅ पर नारी की चारित्रिक उदात्तता के दर्शन ही नहीं होते। सामाजिक-नियमन की आचार संहिता का निर्माणकर्ता वर्णव्यवस्था का मूर्धन्य विद्वान् ब्राह्मण विधान भले ही बना दे किन्तु उसका अनुपालन कराने में शासक' का सहयोग

अनिवार्य है। तत्कालीन नृप-समाज स्वयं कामरसोद्रेक से आक्रान्त हो उठा था फिर सम्पूर्ण समाज की क्या स्थिति होगी, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। प्रस्तुत संदर्भ में तत्समाज में नारी का चारित्रिक परिवेश इस प्रकार द्रष्टव्य है -

नारी समाज

कवि सोमदेव भट्ट ने कथासरित्सागर के अष्टम लम्बक मे सूर्यप्रभा के अन्तःपुर की रानियो का प्रकृत प्रतिबिम्ब प्रस्तुत किया है, जिससे प्रथम दृष्ट्या हमारे सम्मुख नारी की चारित्रिक छवि उजागर होती है। यहाँ हम रनिवास में रह रही स्त्रियों के संवाद का पुनरावलोकन कर अपनी विवेचना की पृष्ठभूमि उपस्थित कर आलोच्च्य क्रम का संकेत देना चाहते हैं- स्त्रियां परस्पर नृप की शृङ्गारप्रियता और विलासिता पर स्व-स्व विचार व्यक्त कर रही है- 'आर्यपुत्र स्त्रियों से अधिक आसक्ति रखते हैं। यह तो बताओ हमारे आर्यपुत्र भला इस सीमा तक स्त्रीलम्पट क्यो है? अनेक पत्नियों के रहते हुए हमेशा नयी-नयी युवतियों को ही ग्रहण करना चाहते है। इस पारस्परिक विविध शंकाओ से पूर्ण जिज्ञासा का निदान-सा करती एक अन्य स्त्री बीच में बोल पड़ी-सुनो, ये नृपतिगण बहुपत्नी वाले क्यों होते हैं? मैं बताती हूँ।[१] वेश,रूप, अवसता चेष्टा-विज्ञान आदि के भेद से अच्छी स्त्रियों के भिन्न-भिन्न गुण होते हैं, एक ही स्त्री में सभी गुण हो यह तो सम्भव नहीं। कर्णाट, लाट, सौराष्ट्र और मध्यदेश आदि की स्त्रियों में भिन्न-भिन्न गुण

और पृथक्-पृथक् विशेषताएं होती हैं, उन-उन गुणो एवं विशेषताओ से वह पुरुष का मनोरंजन करती है। कतिपय स्त्रियाँ तो अपने शरच्चन्द्र सदृश मुख से मोहती हैं, कुछ स्वर्ण-घट तुल्य उन्नत और कठोर स्तनों से चित्त को आकर्षित करती हैं, कुछ कामदेव के सिंहासन सम अपने जघनस्थल के बल पर आकर्षण का केन्द्र बनती है, एवं कतिपय अन्य सौन्दर्य एवं आकर्षक चेष्टाओं द्वारा मन हर लेती है। कुछ स्त्रियां तप्त कांचनवर्ण वाली होती है। कुछ प्रियंगु पुरुष के समान श्यामवर्ण की होती है। एवं कुछ लालिमायुक्त गौरवर्णा होती हैं जो देखते ही हृदयों को अनायास ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं।[२]

स्त्रियो के विभिन्न रूप वर्ण कथन के पश्चात् वह निपुण स्त्री आगे स्त्रियों की अवस्था , फिर चेष्टा आदि की भी सुष्ठु परिगणना प्रस्तुत करती है- कुछ नववय के कारण सुन्दर होती हैं। कुछ पूर्णतः विकसित यौवना होने से मनोरम लगती हैं। कुछ प्रौढ़ावस्था होने पर रस छलकाती हैं, और कुछ हाव-भाव विलास से सौन्दर्य की छवि छिटकाती है। किसी का हंसना आकर्षक होता है तो कोई कोप की मुद्रा में मन मोहती है। यही नहीं कोई गजगति वाली तो कोई हंसगामिनी होने के कारण सुन्दरता विखेरती है। कुछ रमणियाँ मधुर वचनों से कानों में रस घोलती हैं तो कुछ अपने भ्रू-विलास से हृदय हारक हो जाती हैं। कोई नृत्य-निपुण, कोई गायन-प्रवीणा तो कोई वास-सज्जा की कला-पारंगत होने से संग्राह्य होती हैं। कोई स्त्री बाह्य रति-विलास चतुरा, कोई अन्तरंग

रति-विलास मे कौशल प्राप्ता होकर मन मोहती है, कोई शृङ्गार रसा तो कोई वार्ता-कुशला होती है। कोई स्त्री पति के चित्त को निज वशीभूत कर सौभाग्यशाली बन जाती है, अर्थ यह है कि सभी स्त्रियों में पृथक् गुण होते हैं। सभी गुणों में से कोई एक विशिष्ट्गुण किसी में होता है, त्रैलोक्य भर मे कोई भी ऐसी स्त्री नहीं जिसमे सभी गुण हों। यही कारण है कि नृपतिगण भिन्न-भिन्न रसास्वादन के लिए निरन्तर नयी-नयी नारियो से सान्निध्य स्थापित करते है। सज्जन एवं कुलीन जन परस्त्री स्पर्श तक अनुचित समझते है, इसीलिए हमारे आर्यपुत्र अनेक स्त्रियो से विवाह कर इस पाप से मुक्त है। यह हमारे लिए ईर्ष्या का विषय नहीं होना चाहिए।[३] अन्त:पुर की इन स्त्रियों के संवाद में प्रकारान्तर से यहॉ रूप, गुण, प्रकृति भेद से विविध स्वभावा नारियों का कथन और उनके सौन्दर्य का वर्णन किया गया है।

'यथा राजा तथा प्रजा:' प्राय: राजा के धर्म शासन से प्रजाजन धर्माचार निरत एवं विपरीत स्थिति में विरत रहते हैं। राजकुल के इस वर्णित आचार धर्म द्वारा निश्चयत: प्रजाजन प्रभावित रहे। परिणामत: समग्र समाज आचार विहीन एवं नैतिक दृष्टि से पतित हो चुका था। नृप का परमधर्म वर्णाश्रम धर्म की रक्षा कदाचित अर्थ विहीन हो गया था। आचार धर्म विनष्ट, संयम का ह्रास एवं उच्छृंखला व्याप्त हो चुकी थी। स्त्री मात्र विलास की वस्तु समझी जाती थी, जो पुरुष को भांति-भांति चेष्टाओं से वशीभूत करती और पुरुष उनके मांसल सौन्दर्य का पान करना ही अपना अधिकार मान

बैठा था। कथासरित्सागर मे सोमदेव के स्त्री-चरित्र विषयक विवेचन की कोई तुलना नही है, इस सम्बन्ध में कवि की दृष्टि बड़ी पैनी है। नारी चित्रण में वे पूर्णतः गंभीर एवं सूक्ष्म परिवीक्षक हैं, उन्होने उनकी प्रकृति एवं क्रिया कलाप का अत्यन्त सार्थक विवरण उपस्थित किया है स्त्री तथा लक्ष्मी कभी स्थिर नही रहती। संध्या के समान राग (प्रेम) वाली होती है। नदी के सदृश इनका हृदय कुटिल ऊँचा-नीचा होता है एवं नागिन के समान अविश्वसनीय और विद्युत् की भांति चंचल होती हैं।[४] चंचला स्त्री रक्षा करके भी रोकी नही जा सकती, क्या प्रलयकालीन आंधी हाथो से रोकी जा सकती है।[५] संसार मे कही भी कोई स्त्री को नियंत्रण में नहीं रख सकता, उसकी रक्षा भी नही कर सकता। कुलीन स्त्री को, उसका अपना ही प्रबल और विशुद्ध हृदय उसकी रक्षा में समर्थ हो सकता है।[६] चंचलता, साहस और डायनपन स्त्रियो के तीन गुण तीनों लोको के लिए भयोत्पादक है। जैसे मधुकरी नये-नये पुष्पो का अभिलाष करती है, उसी प्रकार स्त्री नये-नये प्रेमी की अभिलाषा रखती है।[७] इस प्रकार सोमदेव भट्ट ने कथासरित्सागर में स्त्री-स्वभाव उसके आचार-व्यवहार तथा कार्य-कलापों के विषय में सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभव-जनित विचार व्यक्त किया है।

'कथासरित्सागर में संग्रहीत कथाओं मे स्त्रियों के अशिव पक्ष का ही अंकन विशेषतः प्राप्त होता है। सती साध्वी स्त्रियां अत्यल्प परन्तु चंचल, कुलटा, दूषित आचरण वाली स्त्रियों के सन्दर्भ अत्यधिक है। 'दुष्टा स्त्री साहसिक कोई भी कार्य कर

सकती है' यह उक्ति एक व्यभिचारिणी स्त्री के आख्यान का निष्कर्ष है- शत्रुध्न नाम के एक पुरुष ने अपनी स्त्री को निज-प्रेमी संग देखा, उसने उस जार को कृपाण से मार डाला। पत्नी को रोके रखकर रात्रि के अवसान की प्रतीक्षा करने लगा। प्रात: काल होने पर अपनी भार्या को लेकर जंगल में चला गया। भार्या को सुरक्षित बैठाकर शव को अंधेरे कुएं में फेकने लगा। उसकी उस स्त्री ने पीछे जाकर शत्रुध्न को धक्का देकर कुएं मे धकेल दिया।[८] वेद विद्या पारंगत विष्णुगुप्त नाम का एक ब्राह्मण था, दूरस्थ देश से आये हुए उसके कई शिष्य थे, विष्णुगुप्त की पत्नी का नाम था कालरात्रि। ब्राह्मण के शिष्यो मे परम प्रिय एक सुन्दरक नाम का शिष्य था। एक बार विष्णुदत्त की वह स्त्री कालरात्रि कुछ सामान क्रय करने के लिए बाजार जा रही थी। उसने सुन्दरक को देखा और उसके पास जाकर बोली- हे सुन्दर, काम से पीड़ित मुझे स्वीकार कर लो, मेरा जीवन सदा के लिए तुम्हारे अधीन है? सज्जन सुन्दरक ने कहा, माता ऐसा न कहो। गुरुपत्नी संग गमन करना अधर्म है। तुम मेरी माता एवं गुरुपत्नी हो। यह सुनकर वह कालरात्रि पुन: बोली- यदि तुम धर्म पर ध्यान देते हो तो मेरे प्राणों की रक्षा करना भी महानधर्म है। सुन्दरक ने कहा, माता हृदय मे इस प्रकार के विचार न लाये। गुरुपत्नी संग गमन करना कहाँ का धर्म है? कालरात्रि के सुन्दरक की ओर से बार-बार तिरस्कार मिलने पर कालरात्रि ने उसे फटकारती हुई, अपने ही हाथों अपनी चादर को फाड़, जाकर पति से वह कहने लगी, देखो सुन्दरक ने मेरी यह दशा कर दी है।[९]

कथासरित्सागर मे कथा सन्दर्भित स्त्रियां कुटिल, कुत्सित हृदया और कामासक्ता, व्यभिचारिणी है। एक से बढ़कर एक कलुष चरित्रा नारियो के अंकन पढ़ने के पश्चात् ऐसा परिलक्षित होता है कि समग्र समाज ऐसी ही स्त्रियो से व्याप्त रहा। सती, सच्चरित्र नारियों का अंकन विरल ही मिलते हैं। एक नवयुवक बनिया आंधी-पानी से बचता हुआ सुवर्णद्वीप के एक तट पर आ रुका, वहाँ उसने सुन्दर भवन को देखा, मूसलधार वर्षा से रक्षा-निमित्त उसमें आश्रय हेतु पहुँचा। वहां उसने आँखों के लिए अमृत वर्षा सदृश दु:ख का शमन करने वाली सुन्दरी को देखा। वह सुन्दरी राजदत्ता उस बनिए को पलंग पर आसीन करा, उससे आलिंगनबद्ध हो गयी। कामातुर स्त्री, एकान्त पुरुष का मिलना तथा पूरी स्वच्छन्दता, जहॉ पञ्चाग्नियां एकत्र हो, वहॉ चरित्र रुपी तृण की बात ही क्या अर्थात् वह तो नष्ट हो जाता है। कामोन्मत्ता नारी किसी भी प्रकार का विचार नहीं करती। इसलिए उसने विपत्ति में पड़े हुए उस दरिद्र पुरुष को भी स्वीकार कर लिया।[१०] रानी अशोकवती की उत्कट इच्छा और नृप के बहुश: आग्रहोपरान्त ब्राह्मण गुणशर्मा ने रानी को वीणावादन की शिक्षा देना प्रारम्भ किया। वह प्रतिदिन शिक्षा देने लगा। अशोकवती वीणा वादन की शिक्षा देते समय गुणशर्मा के समक्ष विविध कामचेष्टाएँ किया करती। गुणशर्मा उसे अनदेखी करता। एक बार एकान्त में नाखूनों को गड़ाती हुई कामातुर रानी गुणशर्मा द्वारा प्रतिरोध करने पर बोली-

'हे सुन्दर, वीणावादन के बहाने मैंने तुमको प्राप्त किया है। तुम्हारे प्रति मेरे मन में घनिष्ठ अनुराग उत्पन्न हो उठा है और तुम अब मेरा उपभोग करो। रानी के ऐसा कहने पर गुणशर्मा ने कहा- 'ऐसा न कहो तुम मेरे स्वामी की भार्या हो। मेरे जैसा व्यक्ति इस प्रकार का कृत्य कर स्वामी के संग द्रोह नही कर सकता। यह सुनकर रानी अशोकवती ने गुणशर्मा से पुनः कहा- अरे! नीरस तुम्हारे इस सुन्दर रूप एवं कला-नैपुण्य का फिर क्या महत्व ? जो तुम मेरी जैसी कामातुरा प्रेयसी की उपेक्षा कर रहे हो। गुणशर्मा ने हंसते हुए सहज भाव से कहा- ठीक कह रही हो, उस चातुर्य से क्या लाभ जो परदारा के अपहरण से निन्दित और मलिन न हो। फिर तो रानी कोपाविष्ट होकर बोली-तुम मेरा कहना न मानोगे तो निश्चित ही मेरी मृत्यु हो जायेगी, परन्तु अपमानित हुई मै तुमको मारकर मरूंगी। मेरी बात न मानने पर तुम अपना भी मरण निश्चित रूप से समझ लो।[११]

कथासरित्सागर के आख्यानों की नारी प्रायः विलासिनी, वंचक, छलछद्मधुरीणा, जारसंगमी पूर्णतः प्रेयसी चरित्रवाली ही है वह भार्या, अनुरागिणी अथवा शीलवती कदाचित् ही दीख पड़ती है। सोमदेव ने इसीलिए लिखा है- विलासिनी नारी संसार की स्थिति सदृश अन्ततः नीरस दुःखदायिनी, प्रत्येक क्षण परिवर्तित स्वभाव बदलने वाली एवं अनित्य सम्बन्धों वाली होती हैं।[१२] उनका यह अनुमिति प्रायः दृष्टिकोण नहीं अपितु गम्भीर अध्ययन का परिणाम है- एक आख्यान की नायिका रानी अनंग प्रभा एक के

पश्चात् अन्य क्रमशः ग्यारह जनो की प्रेयसी बनी उनमे से किसी भी एक की सुशीलाभार्या न रह सकी। अपने इस विलास स्वभाव के कारण उसने वर्ण, स्तर आदि का स्वप्न में भी विचार नही किया और क्रमानुक्रम मे खड्ग सिद्ध, हरिहर, नाट्याचार्य, लब्धवर, जुआरी, सुदर्शन बनिया, धीवराधिप, सागरवीर, विजयवर्मा, क्षत्रियपुत्र तथा राजामदनपुत्र से विवाह किया था- नाट्याचार्य ने सारी धन सम्पत्ति ऊँट की पीठ पर लाद दिया, और अनंगप्रभा पुरुषवेष मे घोड़े पर आरूढ़ होकर नाट्यशिक्षक के साथ निकल गयी। उसने पहले विद्याधर की लक्ष्मी का परित्याग किया और राजलक्ष्मी को स्वीकारा उसके पश्चात् नाचने गाने वाले चारण का आश्रय ग्रहण किया। स्त्रियों के ऐसे चंचल मन को धिक्कार है जो भ्रमता ही रहे।[१३]

अनंग प्रभा नृप हरिहर की मंत्री बनकर रही। एक दिन लब्धवर नाम का नया नाट्याचार्य आया। राजा ने उस कलाकार को सम्मानित किया, और रनिवास के नाट्याचार्य पद पर आसीन किया। शनैः-शनैः अनंगप्रभा उस नाट्याचार्य पर अनुरागासक्त हो गयी थी। वह नाट्यशाला में ही रतिलालसा में नाट्याचार्य से संगमित हो गयी। कामक्रीड़ोपरान्त उसने अतिशय अनुरागवती होकर कहा- मै तुम्हारे बिना अब एक क्षण भी नहीं रह सकती। राजा हरिहर यह सारा वृत्तान्त तथा कृत्य को जानकर मुझे वह कदापि क्षमा न कर सकेगा। इसलिए चलो किसी दूसरे स्थान पर चलें। जहाँ राजा को हम लोगों का कथमपि पता न चल सके। तुम्हारे पास राजा द्वारा दिये गये

आभूषण, मेरे पास हैं। तो चलो वहाँ जहाँ निर्भय होकर रह सके।[१४]

कुलटा स्त्रियाँ अपने प्रणयी से मिलने के लिए उन्हे अपने शयन कक्ष तक पहुँचने मे उसके लिए क्या-क्या साधन अपनाती रही, कथासरित्सागर मे इसका उल्लेख मिलतां है- राजा के चले जाने पर कुछ दिन व्यतीत होने पर एक दिन भवन के गवाक्ष में रानी ने किसी पुरुष को देखा। देखते ही उस पुरुष ने रानी के हृदय को आकृष्ट कर लिया और कामासक्त रानी ने सोचा मैं यह अच्छी तरह जानती हूँ कि मेरे पति के सदृश सुन्दर पराक्रमी अन्य पुरुष नही है, तथापि इस पुरुष की ओर मेरा मन खिंचता जा रहा है, अत: जो भी हो, मै इस पुरुष का भोग अवश्य करूंगी। ऐसा निश्चयकर उसने अपनी सखी द्वारा रात्रि के समय खिडकी मार्ग से रस्से की सहायता से ऊपर चढ़ाकर अपने घर मे बुला लिया।[१५]

एक अन्य आख्यान का एक संदर्भित अंश- उसके भवन की खिड़की मे रस्सी बंधी चमड़े की पिटारी लटकती रहती थी। रात्रिकाल में जो भी उस पिटारी में घुसता, उसे ही वह अन्दर बुला लेती। रात्रि व्यतीत होने पर उसी प्रकार बाहर कर देती। मद्यपान में उन्मत्त वह कहीं कुछ देखती नहीं थी। धनदेव किसी बहाने अपने घर गया। उसने वहाँ रस्सियों से बंधी हुई पिटारी देखी। उसमें वह बैठ गया, दासियों ने रस्सी खींचकर उसे भीतर कर लिया।[१६] नीचता की ओर जाने वाली चंचल स्त्रियों को धिक्कार

है, जो दूर से ही मनोरम प्रतीत होती हैं, गड्ढे मे गिरने वाली नदियो के समान स्त्रियो की रक्षा करना असम्भव है। स्त्रियों के ऐसे निंद्य चरित्र वाले संदर्भ आख्यानो को गतिशील बनाते परिलक्षित होते हैं। स्त्रियों का यह एक पक्षीय चित्रण तत्कालीन समाज का परिवेशगत यथार्थ रहा होगा।

स्त्री के इतिहास-ख्यात रूप वेश्या एवं देवदासी के भी चरित्रांकन कथासरित्सागर मे प्राप्त होते हैं। वेश्या प्राचीन भारतीय समाज मे एक महत्वपूर्ण स्थान की भागी रही है।[१७] राज्य सम्मान प्राप्त। आम्रपाली बुद्ध कालीन समाज की प्रख्यात गणिका रही। संस्कृत भाषा साहित्य में रूप, गुण, विविध कला सम्पन्न गणिकाओ का उल्लेख है। बसन्तसेना आदि ऐसी कला प्रवीण गणिकाएं थी। राजगृह की प्रख्यात गणिका सालवती रही। सोमदेव भट्ट ने प्रारम्भिक मध्ययुग के वेश्या समाज पर प्रकाश डाला है। उन्होंने वेश्या को अर्थलोलुप कहा है- 'वेश्या अर्थ लोलुप होती है। अर्थ के बिना वह कामदेव पर भी प्रसन्न नहीं होती। ब्रह्मा ने भिक्षुओं का निर्माण करके उनसे लोभ को लेकर वेश्याओं को दे दिया।[१८] उनका हृदय सद्भाव रहित होता है।[१९] वेश्याओं का मुख्य व्यवसाय धन प्राप्त करना होता रहा। इसके अतिरिक्त प्रेमादि की चेष्टाएं मात्र पुरुष को अपने वश में करने के लिए करती थीं। पवित्र प्रेम करने वाली वेश्या निजधर्मच्युत मानी जाती थी। रूपणिका नामक वेश्या लोहजंध नामक पुरुष के प्रति अनुरागवती हो गयी, और अन्य पुरुषों के संग समागम का त्याग कर दिया, लोहजंघ भी उसी के घर में

रहने लगा। यह जानकर वेश्याओ की शिक्षिका मकरदंस्ट्रा ने उसे समझाते हुए कहा-

बेटी, तुम इस दरिद्र से क्या प्रेम करती हो, अच्छे व्यक्ति मुर्दे को भी छू सकते हैं, परन्तु वेश्या निर्धन को नही छू सकती । कहां सच्चा प्रेम और कहां वेश्यावृत्ति, क्या तुम वेश्याओं के इस सिद्धान्त को भी भूल गयी। बेटी स्नेह करने वाली वेश्या सन्ध्या के सदृश अधिक देर तक नहीं चमक सकती। वेश्या को भी केवल धन के लिए अभिनेत्री के समान प्रेम दिखलाना चाहिए। इसीलिए तुम इस दरिद्र ब्राह्मण को छोड़ो, अपना विनाश मत करो।[२०] ऐसी वेश्या का भी अंकन है जो धन की लोभी तो है किन्तु दूसरे का धन वापस भी कर देती थीं- मदनमाला के पास एक दिव्य पुरुष कुछ दिनों पहले वहां रहकर उसे सोने के पांच अक्षय पुरुष देकर कहीं चला गया। वह मदनमाला उसके वियोग से पीड़ित जीवन के दिन वेदना, देह को निष्फल और आहार को चौर भावना समझकर जीवित है। सेवको के आश्वासन देने पर उसने प्रतिज्ञा की है-

यदि वह मेरा प्यारा पति छह महीने के अन्दर आकर मुझे नहीं संभालेगा तो मैं अभागिन अग्नि में प्रवेश करूंगी।[२१] इसी प्रकार एक अन्य भी अंकन प्राप्त है कि वेश्या भी उदात्त चरित्र वाली होती है- सौहार्द से संतुष्ट राजा विक्रम प्रेम के कारण स्वदेश से आयी मदन माला के पास सुख से रहने लगा। इस प्रकार वेश्या में भी उदारचरित और वैसी ही सदाचारिणी होती हैं, जैसी महारानियाँ, अन्य कुलीन स्त्रियों की तो बात ही क्या?[२२]

कथासरित्सागर आख्यानो में संदर्भित वेश्याओं के सभी रूप-धूर्त, ठग, कपटी, धनलोलुप, सदाशया, उदार आदि का उल्लेख मिलते है। उस प्रारम्भिक मध्यकाल मे नारी का एक देवदासी रूप भी मिलता है। 'ईश्वरवर्मा' कांचनपुर नगर मे पहुॅचा। नगर के बाहर ही एक उद्यान मे डेरा डाला । भोजनादि से संतुष्ट हो इत्र आदि लगाकर वह नगर मे स्थित एक मन्दिर मे देखा कि नाटक हो रहा था। वह उसमे प्रविष्ट हुआ। उसने वहॉ सुन्दरी नामक एक नर्तकी को देखा जो तरुणाई के तूफान से उछलती हुई लावण्य सिन्धु से उच्छरित तरंग-सदृश प्रतीत हो रही थी।[२३]

इस प्रकार के अंकन कथासरित्सगार में अन्यत्र भी हैं, जिनके आधार पर डॉ० एस०एन० प्रसाद ने देवदासी का रूप स्वीकार किया है जो असंगत प्रतीत होता है।[२४] देवदासियों की एक पृथक् कोटि रही है,उनको वेश्या की कोटि मे नही परिगणित किया जाता था। आस्था विशेषवश लोग अपनी कन्या को देवार्पित कर देते थे। वह कन्या देव के समक्ष नर्तन एवं गायन करती थी। वह प्राय: अविवाहित रहती । इस कारण वह देवदासी कहलाती थी। इस कोटि की देवदासियों का उल्लेख कथासरित्सागर मे न के समान हैं।

कुट्टनी कथासरित्सागर में अवश्य चर्चित है। कुछ कालोपरान्त कुट्टनी ने राह में जाते हुए किसी धन हीन राजपुत्र को देखा एवं लोहजंघ को घर से निष्कासित करने की

युक्ति सोचने लगी। वह दौड़कर उसके समीप पहुंची। एकान्त मे उसे ले जाकर कहने लगी- मेरे घर मे एक दरिद्र कामी-व्यक्ति ने अधिकार जमा रखा है। इसलिए तुम मेरे घर पर आओ और ऐसा उपाय करो कि वह मेरे घर से निकल जाय। इस कार्य के पुरस्कारस्वरूप मेरी पुत्री का उपभोग करो।[२५] कुट्टनी ने कहा-बेटा ईश्वर वर्मा तुम इस बन्दर के बच्चे को ले लो, फिर उस सुन्दरी के घर पूर्ववत् रहना प्रारम्भ कर दो। काम के लिए समय-समय पर इस बन्दर से धन मांगा। करना वह सुन्दरी चिन्तामणि के समान इस बन्दर को अपना समग्र धन वैभव देकर भी तुमसे प्राप्त करना चाहेगी।[२६] कुट्टनी छल-कपट सीखने के लिए किसी कुट्टनी को सौंप देता हूँ जिससे कि यह वेश्याओ से ठगा न जा सके। यह सोचकर यमजिह्वा नामक कुट्टनी के पास गया। उसने वहां मोटी ठुड्डी वाली, लम्बे दांतों वाली, चिपटी नाक वाली कुट्टनी को अपनी पुत्री को शिक्षित करते हुए देखा। 'बेटी धन से ही सब की पूजा होती है, विशेषकर वेश्याप्रेमी व्यक्ति धन नहीं रख सकता। वेश्या को प्रेम से दूर रहना चाहिए। राग वेश्या और सन्ध्या के लिए दोषो का अग्रदूत है।[२७]

कुट्टनीमतम् काव्य में दामोदर गुप्त ने 'कुट्टनी' का सर्वांग चित्रण किया है- दांत प्राय: गिर गये थे। बचे हुए अग्रदन्त बाहर की ओर निकले, टुड्डी झुकी हुई, नासिका भाग मोटा चिपका हुआ, उसके शुष्क शिथिळ स्तनों का ज्ञान बड़े-बड़े चूचकों से होता। उसकी आंखें लाल -लाल अन्दर की ओर धंसी हुई। कानों की कर्णपाली भूषणहीन और

लम्बी अधपके केश। सोमदेव भट्ट के समकालीक कवि क्षेमेन्द्र ने समयमातृका में कुट्टनी के गुण स्वभाव का कथन किया है- 'वह बुड्ढी नसो से बंधी हड्डी की ठठरी थी, उस डायन की आंतें पेट के चमड़े से सट रही थी। वह सूखी-साखी हड्डियो से ढंकी कठपूतना के सदृश प्रतीत होती थी। चमड़े से पटे उसके शरीर मे बहुत से छिद्र थे। मानो वह जगत् को ठग विद्या की शिक्षा देने के लिए पिंजड़ाबद्ध पक्षी हो। सब चबा जाने के लिए उसका मुख सदा खुला रहता था। जैसे वह त्रिलोक तौलने के लिए कल प्राप्त की तराजू हो जिसमे हजार तक अंकन लगे है।[२८]

इस प्रकार अनुशीलन से पता चलता है कि कथासरित्सागरकालीन समाज में स्त्रियों का चारित्रिक स्तर अध: पतनोन्मुख ही होता जा रहा था। लम्पट और कामातुरा नारियॉ सामाजिक पवित्रता को दूषित कर रही थीं। सम्पूर्ण समाज का नैतिक पतन हो चुका था। अत: कवि सोमदेव ने इसलिए निष्कर्षत: कहा है- वेश्या मे तथा सिकता मे स्नेह की आशा निरी मूर्खता है। 'तूने मेरी बात नहीं मानी, आज वेश्या का सच्चा प्रेम तूने देख लिया। पांच करोड़ मुद्रा देकर अर्धचन्द्र पाया। कौन बुद्धिमान् वेश्या मे और बालू में स्नेह (प्रेम तथा तेल) चाहता है। अर्थात् वेश्या से स्नेह और सिकता से तेल प्राप्त होना असम्भव है।[२९]

समाज में सदा से शिव-अशिव, उचित-अनुचित, संगत-असंगत क्रियाकलाप रहे हैं। यह क्रियाकलाप समाज के हर अंक में व्याप्त और प्रतिष्ठित होने के कारण द्विधा

होकर संचरित रहे। इस कारण कथासरित्सागर के आख्यानो मे संदर्भित नारी समाज के प्रतिबिम्बन का यद्यपि यह अर्थ नही कि तत्कालीन नारी समाज पतितोन्मुख ही रहा क्योंकि उस समय भी राज समाज, सामान्य समाज दोनो रहे है। यह तो सर्व ज्ञात है कि राजे-महाराजे सामन्त तथा अन्य श्रीसम्पन्न जन विलासोपयोग के उपकरण अवश्य ही संचित करते रहे, इसीलिए हमारे समाज में प्रारम्भ से ही गणिकाओं का जन्म हुआ और इन गणिकाओ की परम्परा पर कतिपय विलासिनी स्त्रियॉ अपने स्वचरित्र को विस्मृत कर आर्थिक लाभ के लिए दूषित हो गयी थीं, किन्तु इसके विपरीत ऐसी भी गृहणियॉ और रानियॉ, सेठ-पुत्रियाँ और यहॉ तक कि गणिकाएँ भी अंकित की गयी हैं जो स्वचरित्र में अत्यन्त दृढ़ और भावों से आन्तरिक रूप मे विशुद्ध चरित्र वाली पतिव्रताएॅ कही जा सकती है। कथासरित्सागर का उपर्युक्त आकलन तत्कालीन दरबारी संस्कृति के परिप्रेक्ष्य मे हुआ माना जाना चाहिए। सम्पूर्ण नारी समाज गर्हित और वेश्या प्रवृत्ति का नहीं था।

खान-पान

आलोच्य कृति मे हमें नागरिको के खान-पान मे प्रयुक्त होने वाले खाद्य वस्तुओं, भोजन निर्मिति एवं यथा रुचि नागरिकों के खाद्य, भोज्य, पेय, लेह्य आदि पदार्थो के उपभोग करने के अंकन प्राप्त होते हैं- 'वह दिवस के अवसान पर बाजार से आटा खरीदता और वहीं खप्पर में उसे गूंथकर रोटियाँ बनाता। श्मशान जाकर चिता

की आग में उन्हे सेंकता तथा भगवान् महाकाल के सम्मुख उन्ही के दीप का घी लगाकर खाता था।[३०] कथासरित्सागर मे चावल के भात शब्द का प्रयोग बहुश: किया गया है। चावल शुद्ध भात बनाने के लिए, माठा भात (गुड़ के साथ मिलाकर) खीर बनाने के लिए और नमक मिश्रित भात (खिचड़ी) बनाने के लिए प्रयुक्त होता था। दिन व्यतीत होने पर वह मिट्टी के पात्र में भात खाने के लिए उसे देती थी। वहां जाते ही सोने के बर्तनो मे आकाश से दूधभात आदि जो-जो दिव्य भोजन सोचता था, वह-वह उसे उपलब्ध हो जाता।

अर्थवर्मा ने दो तोला घी से सने हुए सत्तू, थोड़ा सा भात एवं अत्यल्प मांस का व्यंजन खाया। आज पर्व का दिन है इसलिए ब्राह्मण के लिए (खिचड़ी) पकाओ । तब उसकी पत्नी ने कहा - तुम दरिद्र के यहाँ वह कहॉ? सुनकर ब्राह्मण ने पुन: कहा- प्रिये संग्रह करने पर भी अत्यल्प संग्रह करने की बुद्धि नहीं करनी चाहिए। देखो मेरा पति मर गया उसने इस प्रकार कहा। उसके ऐसा कहने पर उस धूर्त मित्र ने सोचा- कहाँ तो मैंने इसे आनन्द से खीर पकाती हुई देखा था और कहॉ अभी-अभी इसका पति बिना किसी रोग के मर गया। अवश्य ही इन दोनों ने मुझे देखकर ढोंग रचा है।[३१] इस प्रकार तत्समय के समाज में भोज्य वस्तुओं में चावल का एक प्रमुख स्थान रहा।

चावल के पश्चात् दूसरी वस्तु था गेहूॅ (गोधूम) जिसके आटे की रोटियां बनायी

जाती थी और आपूपि (का अर्थ माल पुआ) बनाया जाता था। यह मिष्टान्न होता था। मिष्टान्न मे मोदक, खीर एवं आपूपि तीनो परिगणित होते थे। मठार्धीशो द्वारा मोदक खाते हुए अंकन प्राप्त होता है - वह मूर्ख मठाधीश दिव्य भोजन, लड्डू आदि खाकर कुछ दिनो तक सुखपूर्वक वही रहता रहा।[३२] इस ग्रन्थ में एक राही द्वारा आपूपि को खरीदकर खाते हुए उल्लेख मिलता है- किसी बटोही ने एक पैसे मे आठ पुए खरीदे। उसमें से छह खा लेने के पश्चात् भी उसका पेट न भरा, पर जैसे ही सातवां पूआ उसने खाया, उसका पेट भर गया। यह देखकर वह चिल्लाने लगा- हाय मै लुट गया। यदि इस सातवे पुए को पहिले खा लिया होता तो शेष पुए नष्ट होने से बच जाते। इस एक पूए से ही पेट भर जाता।[३३]

भूने हुए आटे का प्रयोग भी किया जाता था, जिसे सत्तू की संज्ञा दी गयी। सत्तू आज भी स्वादु भोज्य वस्तु है। यह पानी के संग घोलकर नमक से और घी गुड़ मिश्रित कर दोनों प्रकार से खाया जाता था- अर्थवर्मा ने दो तोला घी से भुने हुए सत्तू, थोड़ा सा भात और अत्यल्प मांस का व्यञ्जन ग्रहण किया। यशोवर्मा ने विस्मित हो कर पूछा- व्यापारी क्या तुम इतना ही भोजन करते हो? वणिक् ने कहा- आज मैने तुम्हारे कारण थोड़ा सा मांस-व्यञ्जन खा लिया एवं दो तोला घी भी सत्तू के साथ ग्रहण कर लिया। सदा तो मैं एक कण मात्र घी सत्तू के साथ खाया करता हूँ। सत्तू प्रायः यात्रा के समय पाथेय के रूप में ले जाया जाता था- प्रिये मै राजा की आज्ञा से

वाणिज्य के लिए कही दूर देश को जा रहा हूँ। इसलिए तू पाथेय (मार्ग के लिए भोजन) स्वरूप सत्तू आदि दे दो।[३४] दूध भात खाने मे लोगो की अधिक रुचि रही।[३५]

कथासरित्सागर के आख्यानो मे सन्दर्भ उपलब्ध है कि तत्सामयिक नागरिक शाक और फल आदि भी खाने मे अभिरुचि रखते थे, एतद् विषयक पर्याप्त उदाहरण कथासरित्सागर मे उपलब्ध होते है। उसी समय क्षुधा पीड़ित होने पर शाक बाड़े मे उतर कर सुन्दरक ने वहाँ से उखाड़ी हुई मूलियाँ खाकर अपनी क्षुधा को शान्त किया। वहाँ पर उसने पूर्ववत् मूलियाँ खायी और कुछ ले जाने के लिए वही रख ली तथा वही छिप गया। सुन्दरक भी प्रातः गोवाट से निकलकर मूलियां बेचकर भोजन के लिए अर्थप्राप्ति-निमित्त बाजार गया। वह मूली बेच ही रहा था कि मालवा की मूलियां बताकर मालवा के सिपाहियों ने उससे मूलियां छीन लीं। हम लोग उससे पूछते है कि तुम मालवा से मूली लाकर कन्नौज मे कैसे बेचते हो।[३६] सायंकाल उसने एक सरोवर को देखा जो सुन्दर शब्दायमान हंसों के स्वर से मुखरित था। उसका जल निर्मल सुधा के समान मधुर और तृप्ति प्रदान करने वाला था। उसके तट पर आम, अनार, कटहल के सुन्दर वृक्ष थे। वह बड़ा ही रमणीय स्थल था। उस सरोवर में उसने स्नान किया। भक्तिभाव में शिवपूजन किया, उसके पश्चात् सुगन्धित-मधुर फलों का आहार किया।[३७]

इन अंकनों का स्पष्ट संकेत है कि शाक और फल भी उस समय आहार में प्रयुक्त होते थे। इसके अतिरिक्त कन्दमूल एवं अन्य जंगली फलों का आहार किया

जाता था- 'जीवदत्त विश्राम करके तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थित हो गया। तत्पश्चात् निर्जन वन मे अनेक कष्टो को सहन करता, जंगली कंदमूल खाता हुआ पृथ्वी के समस्त तीर्थो का भ्रमण किया।[३८] कथासरित्सागर मे मांसाहार से सम्बंधित उल्लेख प्राप्त होते है- 'उस नगर मे धर्म व्याघ को ढूढा तो वह दूकान पर बैठा हुआ मांस का विक्रय कर रहा था। मांस बेचने वाला होकर भी तुम्हे इतना ज्ञान कैसे है? दूसरो द्वारा वध किये हुए पशुओ का मांस जीविका चलाने के लिए मै बेचता हूँ- यह मै अपना कर्तव्य मानता हूँ, धनार्जन के लिए मै यह नही करता।[३९] चाण्डाल और बहेलिए गोमांस तक का भक्षण करते थे- एक बार भवन की छत पर आसीन शक्ति देव ने सिर पर गोमांस का बोझ उठाये हुए, चल रहे चाण्डाल को देखकर अपनी पत्नी से कहा- हे वशोदेवी! जो गाय तीनों लोको के लिए बन्दनीय है, उसका मांस यह पापी कैसे खाता है।[४०]

तत्कालीन समाज मे पेय पदार्थ भी लोक प्रिय रहे, इनमे से प्रमुख थे- दूध, गुड़, चावल, दुग्ध मिश्रित खीर तथा मदिरा अथवा आसव। दूध और खीर के संदर्भ चर्चित हो चुके है। यहाँ हम मद्यपान के संदर्भ आकलित कर रहे है।- देवता-प्रसाद का बहाना बनाकर प्रधान महावत को छककर मद्यपान करा दिया। किसी उपाय से उसको अपने घर ले गये और खूब मद्य पिलाकर, पद्म के सम्बंध में पूछा, मदोन्मन्त उसने सारा वृत्तान्त बता दिया। देवस्मिता ने भी उसका भली-भाँति स्वागत किया, मानो प्रसन्नता और सन्तोष प्रकटाने के लिए धतूरे के चूर्ण से मिश्रित मद्य खूब पिलाया।[४१]

इसी प्रकार का एक अंकन इस प्रकार द्रष्टव्य है- राजा बरामदे मे बैठकर प्यालो मे धारा से गिरते हुए मद्य को शत्रुओ के मद स्वरूप पी रहा था। उस स्थान पर नृप के लिए सुन्दरियां मद्य के घटों में राग से उज्ज्वल मद्य को मानो कामदेव के राज्याभिषेक के निमित्त स्वर्णकलशो मे तीर्थों का जल लाया जा रहा है। राजा दोनों रानियों के बीच बैठकर अपने रागपूर्ण चित्त के समान रक्तवर्ण, सुस्वादु, स्वच्छ रानियो के मुखो से प्रतिबिम्बत मद्य का सप्रेम पान कर रहा था। सुरा से पूर्ण अनेक स्फटिक के प्यालों से पूर्ण पान भूमि सुन्दर थी।[४२] इसके अतिरिक्त भी अनेक सन्दर्भ उल्लेखनीय है जहॉ मदिरा-मदिरापान का पता चलता है।[४३] कथासरित्सागर में न केवल खान-पान के सन्दर्भ अपितु भोजनालय, मदिरालय, मदिरा पात्र आदि के भी उल्लेख प्राप्त होते है। मदिरा, मद्य, आसव मधु विविध नाम भी उल्लिखित है। भोजनालय के लिए आहार भूमि नाम का उल्लेख है- दूसरी सहेली मेरे घर से आकर कहने लगी - चलो उठो भोजनालय में तुम्हारे लिए, प्रतीक्षा कर रहे हैं।[४४] वत्सराज की पान का संदर्भ .आया है।[४५] मद्यपान की अभिरुचि वस्तुत: श्रीसम्पन्नो एवं अभिजात्य वर्गो मे ही प्राय: रही।

परिधान

कथासरित्सागर में हमें तत्कालीन समाज के समग्र स्वरूप का अंकन प्राप्त होता

है। आभिजात्य एवं अनभिजात्य दोनों ही वर्णो की जीवन शैली प्रतिबिम्बित है। खान-पान एवं और परिधान जीवन शैली के प्रमुख अंग होते है। खान-पान की ही भांति परिधान भी विभिन्न वर्णो के अनुरूप पृथक् पृथक् रहे। सभी वर्णो के पुरुष स्त्री के परिधान, कुलीन-अकुलीन नृप, सामन्त सैनिक, रानी, महारानी, सेविका सब की पहिचान उनके परिधान से सहजत: हो जाया करती थी। परिधानो में पुरुष उत्तरीय धारण करता था, सिर पर उष्णीश (पगड़ी) भी रखता था- उसकी चादर के फटे हुए आधे टुकड़े को ओढ़कर वह नल वहॉ से चला गया। उस वन में रात्रि के समय दमयन्ती को छोड़कर आधा दुपट्टा ओढे हुए चला गया और आगे जाकर वन मे लगी हुई आग देखी।[४६] नाग ने नल को वस्त्र का जोड़ा दिया था- यह अग्निशौच नामक वस्त्र का जोड़ा लो, इसे तुम जैसे ही ओढोगे तत्काल अपने पूर्वरूप को प्राप्त हो जाओगे। उसे अग्निशौच वस्त्र का जोड़ा देकर कार्कोटक चला गया।[४७] राजा के अंगरक्षकों के परिधान ऐसे होते थे जिससे ही उनको पहिचान लिया जाता- तत्पश्चात् अंगरक्षक वीर सेनापति देववल एवं राजा चमरवल विजय प्राप्त करके निज नगर वापस आये। राजा ने पारितोषिक स्वरूप अपने सेनापति तथा अंगरक्षकों को पट्ट बांधकर उन्हें रत्नों से पूर्ण कर दिया।[४८] पहिनने के वस्त्रों से अतिरिक्त ओढने के लिए चादर और ऊनी कम्बल भी प्रयुक्त होते थे।[४९]

स्त्रियों के परिधान में कञ्चुक का उल्लेख विशेष रूप से मिलता है। एक कन्या

का रूप वर्णन- दमकती हुई धवल कुञ्चुक से लिपटी नागिन के सदृश मस्तक पर दीप्त रत्नों के भूषण एवं चोली पहने हुए, लावण्य से परिपूर्ण, मोतियों से व्याप्त सागर-तंरगों के समान, सौन्दर्य सम्पन्न मुक्ताहार से युक्त शोभित हो रही थी।[५०] ग्रन्थानुशील से ज्ञात होता है कि स्त्री-पुरुष दोनों ही शृंगार प्रसाधन के उपकरणो का उपयोग करते थे। श्री सम्पन्न जनो के तो स्नानादि का भी अत्यन्त मनोरम वर्णन मिलता है। स्नान-क्रिया मे दासियां सहयोगिनी रहती- अन्दर जाकर दासियो के शरीर पर वस्त्राभूषणादि उतार कर कमर मे लपेटने के निमित्त एक वस्त्रखण्ड दे दिया। यह कदाचित् आधुनिक काल के तौलिए जैसा कोई वस्त्र रहा होगा। स्नानोपरान्त शरीर पर अंग-राग लेपन किया जाता था। स्त्रियाँ आलक्तक (महावर) का प्रयोग करती थीं। शारीरिक कान्तिवर्धन-हेतु अंगराग, आभूषण आदि का प्रयोग होता था। प्राप्त रत्नों में से एक बेचकर अपने लिए भोजन, वस्त्र, इत्र, तेल, आदि शृङ्गार के अनेक उपकरण खरीदा। स्त्रियॉ आँख में काजल लगाती थीं।[५१]

अलङ्करण

शृंगार प्रसाधन की दृष्टि से कथासरित्सागर में विविध आख्यान दृष्टिगत होते हैं। शृंगार प्रसाधन की ही भांति समाज में अलङ्करण प्रियता भी स्त्री-पुरुष दोनों में समान रूप से पायी जाती थी। विविध अलंङ्करणों के अंकन प्राप्त होते हैं- हम दोनों के परस्पर

प्रतिज्ञाबद्ध होने पर लड़की मुंह घुमा कर सो गयी। मैने उसकी अंगुली मे अंगूठी पहना दी।[५२] आभूषणो पर-नामांकित होते थे, जो रानियाँ धारण करती थी। ऐसा प्रसंग नृप सहस्रानीक एवं रानी मृगांकवती की कथा में आता है, जब मृगांकवती अपने हाथ का कंकण पुत्र उदयन को पहनाती है- माता मृगांकवती ने अति स्नेहवश नृप सहस्रानीक के नामोट्टंकित कंकण अपने हाथ से उतार कर उदयन के हाथ में पहना दिया। उदयन ने वह कंकण संपेरे को देकर उसके द्वारा पकड़े गये साँप को मुक्त करा दिया था। वह संपेरा पकड़ा गया। नृप सहस्रानीक ने पूछा- तुम्हे यह कंकण कहाँ प्राप्त हुआ।[५३]

अंगूठी पहिनने की परम्परा अधिक थी, यही कारण है कि अंगूठी का उल्लेख प्राय: किया गया है- देवकन्या ने श्रीदत्त को विषनाश करने वाली एक अंगूठी दी।[५४] पाताल से गंगातट पर निकला हुआ श्रीदत्त खड्ग और अंगूठी देखता हुआ दुःखी और चकित हो गया। श्रीदत्त ने राजकुमारी को अंगुली में अंगूठी पहना दी और मंत्र भी पढ़ा।[५५] हार भी पहना जाता था- स्नान करते हुए उसे चारों द्वारा वाबली में छिपाये हुए कुछ वस्त्र मिले जिनकी गाँठ में एक बहूमूल्य हार बंधा हुआ मिला।[५६] अंगूठी स्त्री-पुरुष दोनों समान रूप से पहिनते रहे।

समाज में आभिजात्य-अनाभिजात्य वर्ग दोनों सदा से रहे हैं। दोनों का सामाजिक स्तर पृथक्, सामर्थ्यनुसार रहता रहा है। श्रीसम्पन्नों के अलंकरण अधिक मूल्यवान् और

सामान्य जनो का सामान्य होता था। कथासरित्सागर मे एक ऐसी वणिक् कन्या के कर्णाभूषण के खो जाने का सन्दर्भ है, जो मोती जटित था- उसी समय बिहार को हलचल मे उस वणिक् की बेटी का मोती जड़ा हुआ कान का बहुमूल्य आभूषण कही गिर पड़ा। जाने की शीघ्रतावश उसने उस कर्णाभूषण पर ध्यान नही दिया, प्रेमी से आज्ञा प्राप्त कर अपने घर चली गयी। राज्य करने के पश्चात् उसने बन्धक को दान देकर उस कर्णाभूषण को अपने श्वसुर के पास भेज दिया। वह वैश्य, इस प्रकार अपनी कन्या के कर्णाभूषण को पाकर घबराया हुआ उसके पास गया, उसे दिखाया।[५७]

करधनी, कंकण, हार, घुंघरू (पायजेब) भी स्त्रियो के आभूषण थे कथासरित्सागर मे प्राप्त होता है- किसी मूर्ख को भूमि खोदते-खोदते बहुत से आभूषण मिल गये। वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अपनी भार्या को लाया। उसने उसे पहिनाना प्रारम्भ किया। कटि मे पहिनी जाने वाली करधनी को उसने सिर पर बांध दिया और हार को कमर मे। पैरों की पायजेब उस के हाथ मे तथा हाथो के कंकण को उसने स्त्री के कानो मे लटका दिया।[५८] हार के साथ-साथ 'केयूर' के भी सन्दर्भ हैं - विद्याधरों को राजा मदनबेग हार तथा केयूर धारण किये हुए दिव्य रूप से उतरा।[५९] ग्रन्थ में संग्रहीत आख्यानों के घटनानुक्रमान्तर्गत संदर्भित विविध वर्ग के स्त्री-पुरुष मेखला, अंगूठी, कण्ठहार, वलय, केयूर आदि आभूषण धारण करते अंकित किये गये हैं।

मनोरंजन के साधन

कालोपरान्त नृपति के मंत्रियो को पुत्र उत्पन्न हुए- प्रधानमंत्री युगन्धर को यौगन्धरायण, सेनापति सुप्रतीक की रूपण्वान एवं नृप के नर्म सचिव को वसन्तक।[६०] नर्मसचिव प्राय: विदूषक नाम से लोकप्रिय होता रहा। विदूषक अर्थात् रसिक, मसखरा, परिहासक - अपनी वेषभूषा, हावभाव, वार्तालाप, क्रियाकलाप-से राजदरबार मे मनोरंजक वातावरण की सृष्टि करे। अर्थ यह कि तत्कालीन समाज मे मनोरंजन नागरजनो का व्यसन रहा। कथासरित्सागर की रचना ही कश्मीर महाराज्ञी 'सूर्यमती' के चित्त विनोद हेतु हुई थी। कथासरित्सागर जिस काल की रचना है, राज-दरबारी' संस्कृति का है। राजो-महाराजाओ और सामन्तो का युग था। सामाजिक संस्कृति का भी सूत्र वहीं से श्रृंखलायित था। उस कारण मनोविनोदना के साधन एवं प्रक्रियाएँ वहीं से उद्भूत परम्परित होकर प्रतिष्ठित हुई। उस समय मनोरंजन के विविध रूप- श्रीमन्तों, आभिजात्यवर्गों के पृथक्, बुद्धिजीवियो के अलग एवं नागरजनों के पृथक्-पृथक् थे। नृप-सामन्तों में प्रतिष्ठित मनोरंजन का साधन था।

मृगया

राजे-महाराजों, एवं सामान्तों एवं राज्य सम्बद्ध जनों के लिए मृगया अत्यधिक प्रिय था। कथासरित्सागर में मृगया के अंकन हैं नरवाहनदत्त अनेक मित्रों के संग गजाश्व

और पदाति सैन्य बल साजकर मृगया- निमित्त प्रस्थित हुआ, यहाँ कवि सोमदेव ने अत्यन्त ही मनोरम चित्र उपस्थित किया है- वह मृगयाक्रीडा-मूलत: नरवाहनदत्त के लिए प्रसन्नता का कारण बन गयी। वह मृगया भूमि विशाल हाथियो के कुम्भस्थलो को विदीर्ण करने वाले, निहत सिंहो के नखों से पतित मुक्ताराशि के कारण ऐसी प्रतीत हो रही थी, मानो उसमे बीज बोये गये हैं। भालों से हत बाघों के विदीर्ण दाढ़ों से वह मृगया भूमि जैसे अंकुरित हो उठी है। मारे हुए हरिणो के शरीर के स्त्रवित हो प्रसरित रक्त से ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे रक्त पल्लवो से युक्त हो गयी हो। बाणो से बिंधे सूकर समूह के कारण मानो गुच्छपूर्ण हो गयी है और पतित सरभ-शरीर ने जैसे फलवती बना दिये हो। उस मृगया भूमि से सनसनाते हुए बाण छूट रहे थे। ऐसी वह वन की मृगया-भूमि अनेकश: शोभाशालिनी बन रही थी।[६१]

मृगया क्रीडा मे केवल भाले ही नही अपितु अन्य भी माध्यम अपनाये जाते थे। नरवाहन दत्त घोड़े पर आरूढ़ वन के दूसरे प्रान्तर में चला गया। वहाँ अपने गोफण से गोली फेंकने की क्रीडा प्रारम्भ कर दी।[६२] कीचड़ में सने शूकरों के समूह पर वह वाण संधानकर उन्हें मार डालते, उनका पीछा करते भयातुर हो इतस्तत: भागते हुए कृष्णसार मृग ऐसे मालूम होते थे जैसे पूर्वकाल में विजित दिशाएँ उस नरवाहनदत्त पर कटाक्ष कर रही हों। जंगली भैंसों को मारने के कारण उनके तन से स्त्रवित रुधिर के कारण वनभूमि ऐसी प्रतीत होती कि कमलिनी नृप के स्वागतार्थ उपस्थित हो। भालों से विंधे

मुखवाले सिंहो को देखकर नृप आनन्दित होता था। अपने शस्त्र पर विश्वास करने वाले नृप की मृगया-क्रीड़ा के समय गड्ढो मे छिपे हुए शिकारी कुत्ते और मार्ग पर जाल बिछे रहते थे।[६३]

द्यूत क्रीडा

यह भी राजो-महाराजाओ का ही मनोरंजन था। शनैःशनैः अन्य नागर जन भी व्यसनी बन गये। कथासरित्सागर मे शास्त्र मर्यादा के पालक नृपनल मे कलियुग दोष ढूंढने में तत्पर हो गया। अन्ततः एक दिन नल मद्यपान के प्रभाववश बिना सन्ध्या पूजन किये, पाद-प्रक्षालन बिना किये ही शयन करने लगे। अवसर देखकर कलि नृप नल के शरीर मे प्रविष्ट हो जाने के उपरान्त नृप नल धार्मिक मर्यादा का त्यागकर मनमाना करने लगा- जैसे द्यूत क्रीडा, दासियों के संग रमणलीला, असत्य भाषण, दिन मे शयन और रात्रिजागरण, अकारण क्रोध, अन्याय से धनार्जन, सज्जनो का अपमान तथा दुष्टों का सम्मान करने लगा। यह सब मद्यपान और द्यूत क्रीड़ा का परिणाम है।[६४] ग्रन्थानुशीलन से पता चलता है कि द्यूत-व्यसन समाज में व्यापक रूप से प्रचलित था-उज्जयिनी नगरी में ठिण्ठाकराल नामक एक जुआड़ी हुआ। वह प्रतिदिन द्यूत क्रीड़ा में हारता था, जीतने वाले उसे एक सौ कौड़िया दिया करते थे।[६५] वहाँ उसने द्यूत क्रीड़ा में संलग्न देखा, फिर आकर जुआ के स्थान पर सभी जुआड़ियों को हरा दिया।[६६] राजघरानो मे यह व्यसन राजकुमारों मे प्रारम्भ से ही आ जाता था।

कुमारावस्था मे उसने जुए की विपत्ति से ग्रस्त होकर बहुत कष्ट उठाया था, अत: उसने जुआड़ियो के लिए एक बहुत बड़ा मठ बनवा दिया है। वहाँ रहने वाले जुआड़ी अपनी इच्छानुसार भोजन प्राप्त करते है वत्स तुम वही चले जाओ। तुम्हारा कल्याण होगा।[६७] यह द्यूत-क्रीड़ा यद्यपि हानि कर व्यसन था, तथापि जन समाज इससे आनन्द उठाता । कथासरित्सागर में एतद्विषयक अनेक आख्यानों का अंकन हुआ है।[६८]

जलक्रीड़ा

यह श्रीमानो का अतिप्रिय मनोरंजन था। नन्दन वन मे महेन्द्र के समान दीर्घकाल पर्यन्त उद्यान मे अपनी रानियो के साथ विहार करता हुआ राजा सातवाहन जलक्रीड़ा-निमित्त जल में अवतरित हुआ। जल विहार काल में रानियां भी उसे सीचने लगीं जैसे हथिनियां हाथी को सींचती हों। काजल घूल जाने से लाल नेत्रों से और पानी से वस्त्रों के अंग मे चिपक जाने के कारण स्पष्ट दीखते हुए शरीर के भिन्न अवयवो से वे राजा के मन का अपहरण करने लगी।[६९] एक बार नृप भीम की कन्या दमयन्ती जलक्रीड़ा के लिए सरोवर मे प्रविष्ट हुई। सरोवर में उसने कमलनाल खाते हुए एक राजहंस को युक्ति से अपनी चादर फेंककर पकड़ लिया।[७०]

संगीत

श्रीमन्त समाज के लिए यह मनोरंजन का परम प्रिय माध्यम था। सभा में गीत-

श्रवण का आनन्द लिया जाता था। ग्रन्थ के अंकनो से संकेत मिलता है कि वत्सराज उदयन संगीत प्रेमी और स्वयं कुशल वीणावादक रहे -नृप चण्डमहासेन ने उन्हे अपनी पुत्री वासवदत्ता को संगीत-शिक्षा के लिए नियुक्त किया था। उसने निर्देश दिया-हे राजन! तुम इसे गन्धर्व विद्या की शिक्षा दो। इससे तुम्हारा कल्याण ही होगा। वत्सराज उदयन चण्डमहासेन की संगीत शाला में वासवदत्ता को संगीत की शिक्षा देने लगे। संगीत शाला में उदयन के मनोविनोदार्थ गोद मे घोषवत्ती वीणा, कण्ठ में संगीत का स्वर और आंखों के सामने वासवदत्ता....।[७१] राजा उदयन स्वयं वीणा बजाता हुआ रानी वासदत्ता एवं पद्मावती के संग संगीत का सेवन करता। वासवदत्ता के सूक्ष्म तथा मधुर संगीत· स्वर की एकता होने पर बजाने के लिए चलते हुए अँगूठे से ही दोनों का भेद लक्षित होता था, अर्थात् गायन और वादन का स्वर एक साथ मिलने पर यह प्रतीत नही होता था कि रानी गा रही है, अथवा वीणा बज रही है।[७२]

सागरदत्त की पत्नी गन्धर्वदत्ता अद्भुत वीणा वादिका और गायिका थी अनुपम सुन्दर। वह श्रुतियों में स्वरों को मिलाती हुई संगीत कला में सरस्वती के समान तथा सौन्दर्य में लक्ष्मी के समान थी। उसे देख तथा सुनकर नरवाहनदत्त विस्मित हो गये। नरवाहनदत्त ने कहा-राजपुत्री, तुम्हारी वीणा का स्वर सुन्दर नहीं प्रतीत हो रहा है। सम्भव. है कि तंत्री तार मे कही कोई बाल फंसा हो। नरवाहनदत्त ने वीणा बजाते हुए विष्णु संबंधी संगीत इतनी मनोहर रीति से गाया कि वहाँ उपस्थित गन्धर्व तक चित्र

लिखित से रह गये।[७३] कथासरित्सागर में गन्धर्व और विद्याघरो के भी आख्यान होने से संगीत के संदर्भ सहज हैं।

मल्लक्रीड़ा

कथासरित्सागर के रचना काल पर्यन्त मल्लक्रीड़ा भी एक मनोरंजन का साधन रहा। मल्लों का सम्मान होता था। मल्लक्रीड़ा के अवसर पर दो मल्ल, मल्ल कला प्रदर्शन की विविध कलाएं प्रदर्शित करते और प्रतिपक्षी मल्ल पर विविध प्रकार प्रहार करते थे, वह 'प्रहार-क्रिया' विशेष संज्ञा से अभिहित होती रही होगी। वाराणसी मल्लो के लिए प्रख्यात थी-महाधनी वणिक् की प्रार्थना पर वाराणसी उसके यहाँ रहना उसने स्वीकार कर लिया। वहीं चन्द्रस्वामी का पुत्र अशोकदत्त युवावस्था प्राप्त कर मल्ल कला सीखने लगा। शनैः शनैः वह मल्ल विद्या में दक्ष हो गया। संसार के अन्य मल्लों के द्वारा उसको पराजित करना दूभर था। किसी देवयात्रा के मेले में दक्षिण प्रदेश का एक विख्यात्त मल्ल वाराणसी आया। वह काशिराज प्रताप मुकुट के समक्ष ही उनने सभी मल्लों को मल्ल विद्या के बल पर पछाड़ दिया। वह वणिक् के यहाँ निवसने वाले मल्ल अशोकदत्त की प्रशंसा सुन चुका था, अतः उसे बुलवाया। दक्षिण प्रदेश का जीता हुआ मल्ल ताल ठोंककर अखाड़े में उतरा। अशोकदत्त उस महामल्ल को हाथ मरोड़कर पछाड़ दिया। दक्षिण देश के मल्ल के पछाड़ दिये जाने पर प्रसन्नतापूर्ण जनरव गूँज

उठा। काशिराज प्रताप मुकुट ने उसे पुरस्कार स्वरूप रत्न आदि भेट किया। इतना ही नहीं नृप ने उसे अपना अंगरक्षक नियुक्त कर लिया।[७४]

चित्रांकन

चित्रांकन भारत की अतिप्राचीन कला रही है। भारतीय साहित्य प्रमुखतः संस्कृत, काव्य, नाटक और कथाकाव्यो मे इसके संदर्भ सामान्य है। कथा मे जहाँ भी राजसभा, राज अन्तःपुर और प्रिय-प्रिया-वियोग के अवसर मिले हैं, कवि चित्रांकन-कला विस्मृत न कर सका, नायक- नायिका का और नायिका नायक का चित्रांकन करते मिलते है। कथासरित्सागर की रचना का मूलोद्देश्य रानी सूर्यमती का विनोद हेतु रहा है अतः इसमे चित्रांकन के संदर्भ उपब्लध हो जाते है-पद्मावती वासवदत्ता को अपने आश्चर्यमय भवन में ले गयी। वहाँ राजभवन की दीवारो पर लिखे हुए रामचरित के चित्रों का अवलोकन कर, विरह वेदना को वह सीता के समान सहन करने लगी।[७५] राजा सूर्यप्रभ दिव्य चित्रकला में दक्ष था। इसलिए वह दिव्य विद्याधरियो के चित्र अंकित कर अपनी प्रियाओ में प्रणय कोप की सृष्टि करता था।[७६] भित्ति चित्र निर्मित करने की परम्परा रही-बिना भित्ति के ही चित्र रचना यदि कर दी जाय तो अत्यन्त आश्चर्य का विषय है।[७७] राजा चित्र लिखा सा पड़ गया।[७८] चित्रावली दीवार से निकलकर गदा और चक्रधारण किये पुरुष दांतो से और अधरोष्ठ में तथा नखों से स्तनों में क्षत कर स्त्रियों का उपभोग

करता है, एवं पुन: उसी दीवार मे लीन हो जाता है।[७९] चित्रपट, चित्रशाला आदि भी संदर्भित है।

पशु-पक्षी पालन

यह भी नगर जीवन का एक प्रिय मनोरंजन रहा। नारियॉ पिंजड़ो में शुक पालती थीं और उनके मधुर बोल से मन बहलाती थी। बन्दर के शाव भी मनोविनोद के लिए पालित होते थे। ऐसे अंकन कथासरित्सागर मे उपलब्ध हैं- विरहकातरा मकरन्दिका को उद्यान का वायु, सौरभ और यहॉ तक कि शुक की मधुरवाणी भी अप्रिय लगने लगी- मकरन्दिका को न तो उद्यान में शान्ति मिलती थी न संगीत में और न सखियो के बीच में। वह अब शुको की भी विनोदपूर्ण वाणियो नही सुनती थी, न प्रिय लगती।[८०] मर्कट शिशु पालने और उससे मन बहलाने के भी सन्दर्भ मिलते है- हे सुन्दरी! यदि तू चाहती है तो तेरे प्रिय स्वामी को मैं अभी बन्दर का बच्चा बना देती हूॅ। इसे साथ लेकर मथुरा चली जा। मै मंत्र और इसकी युक्ति भी बता देती हूँ। इससे तुम एकान्त में इसे पुरुष बनाकर इच्छानूकुल संगम मे सफल हो सकोगी। सखी का वचन सुनकर वह बन्धुदत्ता मर्कट शिशु लेकर मथुरा गयी।[८१] इसी प्रकार खिलौने और गोली खेलने के भी संदर्भ अंकित है। सोमप्रभा सखी कलिंगसेना के मनोरंजन हेतु एक डोलची में काष्ठ पुत्तलिकाएँ एवं यंत्रमय खिलौने ले गयी।[८२] गोली खेलने का एक संदर्भ-वह

बालक गोलियां खेल रहा था। किसी बहाने से मार्ग मे आती हुई एक तपस्विनी को गोली से मारा।[८३]

उत्सव विहार तथा गोष्ठी

नगर जन ऋतु अनूकूल विविध उत्सवों-इन्द्रोत्सव, वसन्तोत्सव, देवोत्सव आदि उपवन-विहार तथा विदग्ध गोष्ठियों मे आनन्द उठाते थे। आलोच्य ग्रन्थ कथासरित्सागर में एतद्विषयक संदर्भ अंकित हैं-एक बार इन्द्रोत्सव देखने के लिए हम लोग नगर से निकले, वहॉ हम लोगों ने एक कन्या देखी जो कामदेव के सायक विहीन धनुष के समान थी।[८४] वसन्तोत्सव के अंकन अधिक है। वसन्त में नागर जन अधिक आनन्दित रहते - वसन्तोत्सव की धूम-धाम मे नागरिको के व्यस्त रहने पर तुम रात के प्रथम प्रहर मे मेरे घर आ जाओ। कतिपय समयोपरान्त वसन्तोत्सव के समय राजा सातवाहन उस देवी द्वारा संकेतित उद्यान मे गया। किसी समय वसन्तोत्सव के अवसर पर श्रीदत्त अपने मित्रो के साथ किसी उपवन में मेला देखने गया। वसन्तोस्तव में उद्यान में बैठी मुझे मेरी सखियो ने कहा-इसी नगरी के उद्यान मे वृक्ष-कुंज मे सिद्धिदाता, वर गणेश की मूर्ति है। वह भक्तों की मनोभिलाषा पूर्ण करने वाले है। वसन्तकाल में उपक्रोश के गंगास्नान-गमन का उल्लेख किया गया है।[८५]

नवम् लम्बक में सोमदेव ने वसन्त का मनोरम रूप वर्णित किया है- वसन्तोत्सव

काल मे दम्पति के जीवन मे मानवती स्त्रियो के मानरूप हाथी का मर्दन करता हुआ एवं केसर पुष्पों की छटा धारण वसन्त केसरी के समान सभी नागरजन मदोन्मत्त होकर आनन्दित हो उठते हैं। इस समय कामदेव विकसित आम्रमंजरी रूपी धनुषो की भ्रमरपंक्ति-डोरी सज्जित हो जाती है।[८६] ऐसे मादक काल का नागरजन उपवन-विहार के माध्यय से आनन्द रसायित होकर लाभ उठाते है। सोमदेव ने वसन्त काल मे जलक्रीड़ा का अत्यन्त मनहर चित्र उपस्थित किया है-उपवन मे बहुत समय तक विहारोपरान्त राजा कनकवर्ण स्नान करने के लिए अपनी सभी रानियो के संग गोदावरी नदी मे प्रवेश करके जलक्रीड़ा करने लगा। जल विहार के कारण इधर-उधर अस्त-व्यस्त होते हुए गीले और सूक्ष्म वस्त्रो से स्पष्ट दिखाई पड़ते रानियों के अंग देखकर तब अत्यन्त हर्षित होता था।[८७]

कथासरित्सागर मे सन्दर्भित विविध आख्यानान्तर्गत चित्रित समाज मध्यकाल का एक समृद्ध, संस्कृत, परम्परित-मर्यादा-समन्वित, वर्ण व्यवस्था-संगभित तत्कालीन स्थितिगत परिवेशानुकूल वर्णाश्रधर्म संपोषित, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि का जीवन और उनके आचार, खान-पान, परिधान एवं नारी के प्रति भी प्रकृत-अभिरुचि से युक्त था। रूपसज्जा के प्रति सामान्य जन प्रकृत-अभिरुचि से युक्त था। रूपसज्जा के प्रति नारी के चारित्रिक विकास एवं समन्वयन आश्रित था। नारी समाज, राज अन्त:पुरीय संस्कृति से प्रभावित विलास-प्रिय रहा। कथासरित्सागर में नारी को विलास और क्रीड़ा की भूमि-

स्वरूप विशेषत: चित्रित करना चाहा है, जो उसके मन-मस्तिष्क पर राज्याश्रयी संस्कृति का प्रभाव रहा होगा। अन्यथा तत्कालीन नारी समाज-चरित्र के शील, औदात्य, सदाशयता, धर्मनिष्ठा एवं पतिनिष्ठा भावो के प्रति सजग एवं अनुप्रेरक था।

नारी, समाज में अपने शील और सौहार्द के कारण ऋतुसंबंधी उत्सवों मे स्वेच्छांनुसार आनन्द एवं मनोरंजन के विविध साधनो का उपयोग एवं उपभोग करने में स्वतंत्र थी, उसके ऊपर किसी प्रकार का सामाजिक बंधन नहीं था। आधुनिक काल की तरह वर्षाकाल में होने वाले झूला झूलने का उत्सव उस समय भी होता रहा, जो सुरम्य उपवनों में, वृक्षशाखाओ पर प्रेखा-दोला लगाकर किया जाता रहा। वहॉ कान्ताऍ एवं नवयौवनाएँ स्वतंत्र रूप से झूला-झूलकर परस्पर आनन्द मनाती थीं।[८८] इससे प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में नारीजन की सामाजिक प्रतिष्ठा थी।

संदर्भ एवं पाद-टिप्पणी

१. इति तासु वन्दतीषु जगादैका सविस्मयम्।
ब्रूत स्त्रीलम्पट· कस्मादार्यपुत्रो बतेदृश· ।

आहितास्वपि भार्यासु भूयसीषु नवा नवा:।
अनिशं राजपुत्रीर्यत्स गृह्णन्नैव तुष्यति।।

एतच्छ्रुत्वा विदग्धैका तासु नाम्ना मनोवती।
उवाच श्रूयतां येन राजानो बहुवल्लभां।।

-कथासरित्सागर/लम्बक ८/तरंग ४/१०२-१०४

२. देशरूपवयश्चेष्टाविज्ञानदिविभेदत.।
भिन्ना गुणा वरस्त्रीया नैका सर्वगुणान्विता।।

कर्णाटलाटसौराष्ट्रमध्यदेशादिदेशजा:
योषा देशसमाचारै रञ्जयन्ति निजैर्निजै:।।

काश्चिद्धरन्ति सुदृश. शारदेन्दुनिभैर्मुखै ।
अन्या: कनककुम्भाभै स्तनैरुन्नतसंहतै: ।।

स्मरसिंहासनप्रख्यैरपरा जघनस्थलै:।
इतराश्चेतरैरङ्गै: स्वसैन्दर्यमनोरमै:।

काचित्काञ्चनगौराङ्गी प्रियङ्गश्यामलापरा।
अन्या रक्तावदाता च दृष्ट्वैव हरतीक्षणे।। -लम्बक ८/तरंग ४/१०५-१०९

३. काचित्प्रत्यग्रसुभगा काचित्सम्पूर्णयौवना।
काचित्प्रौढत्वसुरसा प्रसभ्भ्रिमोज्ज्वला।।

हसन्ती शोबते काचित्काचित्कोपेऽपि हारिणी।
व्रजन्ती गजवत्कापि हंसवतकापि राजते।।

आलपन्त्यमृतेनेव काचिदासिञ्चति श्रुतिम् ।
सभ्रविलासं पश्यन्ती स्वभावाद् भाति काचन।।

नृत्तेन रोचते काचित् काचिद्गीतेन राजते!
वीणादिवादनज्ञानेनान्या कान्ता च रोचते ।।

काचिद् बाह्यरताभिज्ञा काचिदाभ्यन्तरप्रिया।
प्रसाधनोज्ज्वला काचित् काचिद्वैदग्ध्यशोभिता।।

भर्तृचित्तग्रहाभिज्ञा चान्या सौभाग्यमश्नुते।
कियग वच्मि बहवोऽप्यन्येऽन्यासां पृथग्गुणा.।।

तदेवमहि कस्याश्चिद् गुण: कोऽपि वरस्त्रिय.।
न तु सर्वगुणा: सर्वास्त्रिलोक्यामपि काश्चन।।

अतो नानारसास्वादलब्धकक्ष्या. किळेश्वरा:।
आहृत्याप्याहरन्त्येव भार्या नवनवा. सदा।।

उत्तमास्तु न वाञ्छन्ति परदारान् कथञ्चन।
तन्नार्यपुत्रस्यैष स्याद्दोषो नेर्ष्या च न: क्षमा।। -वही/वही/११०-११८

४. न च श्रिय: स्त्रियश्चेह कदाचित्तस्यचित् स्थिरा:।। - आदि-आदि/लम्बक ७/तरंग ३/१४२-१४३

५. नियन्तुं चपला नारी रक्षयापि न शक्यते।
किं नामोत्पातवाताळि बाहुभ्यां जातु बध्यते।। - लम्बक ७/तरंग २/९३

६. इति जगति न रक्षितु: समर्थ: क्वचिदपि कश्चिदपि प्रसह्य नारीम्।
अवति तु सततं विशुद्ध एक: कुलयुवती निजसत्त्वपाशबन्ध:।। -लम्बक ७/तरंग २/१३३

७. भृङ्गीव पुष्पं पुरुषं स्त्री वाञ्छति नवं नवम् ।
अतोऽनुतापो भविता ममेव भवत: सखे।। - लम्बक ७ /तरंग ३/१७४

८ पुरुषस्तस्य भार्या च बभूव व्यभिचारिणी।
स ददर्शैकदा साय भार्या तां जारसङ्गताम् ।।

जघान तं च तज्जार खड्गेनान्तर्गृहस्थितम्।
रात्र्यपेक्षी च तस्थौ स गरि भार्या निरुध्य ताम्।।

तत्कालं च निवासार्थी तमत्र पथिकोऽभ्यगात्।
दत्वा तस्याश्रयं युक्त्या तेनैव सह तं हतम्।
पारिदारिकमादाय रात्रौ तत्राटवी ययौ।

तत्रान्धकूपे यावत्स शवं क्षिपति तं तया।
तावदागतया पश्चात्क्षिप्त: सोऽप्यत्र भार्यया।।

- इत्यादि लम्बक ६/तरंग ८/१८२-८८

९. एकदा निर्गता क्रेतुं गृहोपकरणानि सा।
ददर्श तं सुन्दरकं कालरात्रि: किलापणे।।

उपेत्य च जगादैनं पुनरेव स्मरातुरा।
भज सुन्दरकाद्यापि मां त्वदायत्तजीविताम्।।

एवमुक्तस्तया सोऽथ साधु: सुन्दरकोऽब्रवीत्।
मैवं वादीर्न धर्मोऽयं माता मे गुरुपत्न्यसि।।

[illegible] चेद्वेत्सि देहि तत्।
प्राणान्मे प्राणदानाग्ि धर्म· कोऽभ्यधिको भवेत् ।।

अथ सुन्दरकोऽवादीन्मानर्मैवं कृथा हृदि।
गुरुतल्पाभिगमनं कुत्र धर्मो भविष्यति।।

एवं निराकृता तेन तर्जयन्ती च तं रुषा।
पाटयित्वा स्वहस्तेन स्वोत्तरीयमगाद् गृहम् ।।

परम सुन्दरकेणेदं- - - - - - - -लम्बक ३/तरंग ६/१५०-५६

१०. वीक्ष्य चेदं चतु:शालं प्रविश्याभयन्तरं मया।
दृष्टा दृष्टिसुधावृष्टिस्त्वं तापशमनी शुभे।।

इत्युक्तवन्त पर्यङ्के निवेश्यैवालिलिङ्ल तम्।
मोहिता राजदत्ता सा मदेन मदनेन च।।

स्त्रीत्वं क्षीबत्वमेकान्त: पुंसो लाभोऽनियन्त्रणा।
यत्र पञ्चाग्नयस्तत्र वार्त्ता शीलतृणस्य का।।

न चैवं क्षमते मारी विचारं मारमोहिता।

यदियं चकमे राज्ञी तमकाम्यं विपद्गतम्।। -लम्बक ७/ तरंग २/ ८५-८८

११. राज्ञी विलासहासादि चक्रेऽशोकवती सदा।
एकदा सा कररुहैर्विध्यन्ती विजने मुहु:।।

उवाचच वारयन्तं तं धीरं स्मरशरातुरा।
वीणावाद्यापदेशेन त्वं सुन्दर मयार्थित:।।

त्वयि गाढोऽनुरागो हि जातो मे तद्भजस्व माम्।

एवमुक्तवती राज्ञी गुणशर्मा जगाद ताम्।।

मैवं वादीर्मम त्वं हि स्वामिदारा न चेदृशम्।
अस्मादृश: प्रभुद्रोहं कुर्याग्रिम साहसात्।।

इत्योूचिवांसं सा राज्ञी गुणशर्माणमाह तम् ।
किमिदं निष्फलं रूपं वैदग्ध्यं च कलासु ते।--परिष्याम्यवमानिता।।-लम्बक ८/तरंग६/४८-५६

१२. पर्यन्त विरसा कढटा प्रतिक्षणनिवर्तिनी।
भवस्थितिरिवा नित्यं सम्बन्ध हि विलासिनी।। -लम्बक ९/तरंग २/ ३८७

१३. ततस्तदैव तेनोष्ट्रपृष्ठार्पितघनर्द्धिना।
साकं सा तुरगारूढा प्रायन्नाट्योपदेशिना।।

सादौ वैद्याधरी लक्ष्मी त्यक्त्वा राजश्रिय पुन.।
शिश्रिये चारणर्द्धि मा धिक् स्त्रीणां चपल मन।।

-लम्बक ९ तरंग २, २७६-७७,

१४. एकदा तस्य राज्ञश्च निकटं मध्यदेशत·।
आगाल्लब्धवरो नाम नाट्याचार्योऽत्र नूतन:।।

स दृष्टकौशलस्तेन भूभृता वाद्यनाट्ययो:।
सम्मान्यान्त:पुरस्त्रीणां नाट्याचार्यो व्यधीयत।

तेनानङ्गप्रभा नृत्ते प्रकर्ष प्रापिता तथा।
नृत्यन्त्यपि सपत्नीनां स्पृहणीयाऽभवद्यथा।।

सहवासाच्च तस्याथ नृत्तशिक्षारसादपि।
नाट्याचार्यस्य सानङ्गप्रभाभूदनुरागिणी।।

तस्याश्च रूपनृनाभ्यानाकृष्ट स शनैरहो।
नाट्याचार्योऽपि कामेन किमप्यन्यदनृत्यत ।।

विजने चैकदानङ्गप्रभा सा नाट्यवेश्मनि।
प्रसह्य नाट्याचार्य तमुपागाद्रतलालसा।।

सुरतान्ते च सात्यन्तसानुरागा जगाद तम्।
'त्वया विना कृता नाहं स्थातुं शक्ष्याम्यहं क्षणम्।।

राजा हरिवरश्चैतद्बुध्वा नैव क्षमिष्यते।
तदेह्यन्यत्र गच्छावो यत्र राजा न बुध्यते।

अस्ति हेमहयोष्ट्रादि धनं च तव भूभृता।
नाट्यतुष्टेन यद्दत्तमस्ति चाभरणं मा।।
तत्तत्र त्वरितं याम: स्थास्यामो यत्र निर्भया: -लम्बक ९ / तरंग २/ २६५-२७४

१५. तस्मिन्प्रयाते यातेषु दिवसेष्वेकदात्र सा।
देवी वातायनाग्रस्था कञ्चत्पुरुषमैक्षत।।

स दृष्ट एवं रूपेण तस्याश्चित्तमपाहरत्।
स्मरेणाकृष्यमाणा य तत्क्षणं सा व्यचिन्तयत्।।

जानेऽहं नार्यपुत्राद्यत्सुरूपोऽन्यो न शौर्यवान्।
धावत्येव तथाप्यस्मिन् पुरुषे बत मे मन:।।

तदद्यैव भजाम्येनमिति सञ्चिन्त्य सा तदा।
सख्यै रहस्यधारिण्यै स्वाभिप्रायं शशंस तम्।।

तयैवानाय्य नक्तं च वातायनपथेन सा।
अन्तःपुरं तं पुरुषं रज्जत्क्षिप्तं न्यवेशयेत्।। -लम्बक १०/तरंग१/ १२०-१२४

१६. निष्कास्यते तथैवात्र पश्चिमायां पुनर्निशि।
पानमत्ता च सा नैव निभालयति किञ्चन।।

एषा च तत्स्थितिः ख्याति नगरेऽत्राखिले गता।
बहुकालो गतोऽद्यापि न चायाति स तत्पतिः ।।

एतद्वृद्धावचः श्रुत्वा धनदेवस्ततैव साः।
युक्त्या निर्गत्य तत्रागात् सान्तर्दुःख ससंशयः।।

दृष्ट्वा स तत्र दासीभि. पेटा रज्ज्ववलम्बिताम्।
विवेश स ततस्ताभिरुत्क्षिप्यान्तरनीयत।। -कथा/लम्बक १०/तरंग ८/१०१-१०४,

१७ (क) Courtesans had a peculiar position in Ancient India ...... Spending their earnings.

-डा० ए० एस० अल्तेकर : दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन/ पृष्ठ १८१

(ख) तेन खो पन समयेन राजगहे सालवती नाम कुमारी अभिरूपा होति दस्सनीया पासादिका परमाय वुड्डापेसि, अथ को सालवती गणिका नचिरस्सेव पदक्खिणा अहोसि नच्चे च गीते च वादिते च, अभिसटा। - महावग्ग/८/३२८

१८. एवं तया सेव्यमान कदाचिन्मन्त्रिणं रहः।
राजा सहचरं सोऽत्र तं बुद्धिवरमभ्यधात्।।

अर्थार्थिनी न कामेऽपि वेश्या रज्यति तं विना।
तासां लोभो हि विधिना दत्तो निर्माय याचकान्।।-लम्बक ७/तरंग ४/३८-३९

१९. तत्किमद्यापि वेश्यासु जानन्नप्यनुरज्यसे।
नह्यासां चास्ति सद्भावस्तथा चैतां कथां शृणु।।-लम्बक १०/ तरंग १/ ५३,

२०. किमयं निर्धनः पुत्रि! सेव्यते पुरुषस्त्वया।
शवं स्पृशन्ति सुजना गणिका न तु निर्धनम्।।

क्वानुरागः क्व वेश्यात्वमिति से विस्मृतं कथम्।
सन्ध्येव रागिणी वेश्या न चिरं पुत्रि! दीप्यते।।

नटीव कृत्रिमं प्रेम गणिकार्थाय दर्शयेत्।
तदेनं विर्धनं मुञ्च मा कृथा नाशमात्मनः।। -लम्बक १०/तरंग १/९०-९६

२१. तत्र प्रतिग्रहार्थी सन् प्रख्यातयशसो गृहम्।
अहं मदनमालाया गणिकाया गतोऽभवम्।।

तस्या: सकाशे दिव्यो हि कोऽप्युषित्वा चिरं पुमान्।
गत क्वाप्यक्षयान् दत्त्वा पुरुषान् पञ्च काञ्चनान्।।

ततस्तग्प्रियोगार्त्ता जीवितं विषवेदनाम्।
देहं निष्फलमायास नाहारं चौरयातनाम्।।

मन्यमाना गतधृति: कथञ्चिदनुजीविभि.।
आश्वास्यमाना व्यधित प्रतिधां सा मनस्विनी।।

यदि षण्मासमध्ये मां न स सम्भावयिष्यति।
तन्मयाग्नौ प्रवेष्टव्यं दौर्भाग्योपहतात्मना ।।

इति बद्ध प्रतिज्ञा सा------ -लम्बक ७/तरंग ४/ १०६-११४

२२. तत्र तेन सह बद्धसौहृदस्तस्थिवान् स नरसिंहभूभृता।
अन्वितो मदनमालाय तया प्रेमुक्तनिजदेशया सुखम्।

इति देव भवत्युदारसत्तवो दृढ़रक्तश्च विलासिनीजनोऽपि।
अवरोधसमो महीपतीनां किमुतान्य: कुलज: पुरन्ध्रिलोक:।।

-लम्बक ७/तरग ४/ १५९-६०

२३. नगरं तत्र चासन्नबाह्योद्याने समावसत्।
स्नातभुक्तानुलिप्तश्च प्रविश्य नगरेऽत्र स:।।

युवा प्रेक्षणकं द्रष्टुमेकं देवकुलं ययौ।
तत्रापश्यच्च नृत्यन्ती सुन्दरी नाम ळासिकीम्।।

तारुण्यवातोच्छलितां रुपाब्धेर्ळहरीमिव। -लम्बक १०/तरंग १/७३-७५

२४. कथासरित्सागर तथा भारतीय संस्कृति: डॉ० एस०एन० प्रसास/ पृष्ठ ११९

२५. अथ मार्गगितं काचित्क्षीण कोषं ददर्शसा।
राजपुत्र परिवृतिं पुरुसौद्र शस्त्रपाणिभि: ।।

उपगम्य द्रुतं तंच नीलेकस्तं जगाद् सा।
निर्धनेन म मैकेन कामुकेनावृतं गन्हम।।

तत्वमरगच्छ तमाद्रयतथा च कसयेन स:।
गृहा-मम निवर्तेत भदीयां च सुतां मज्।।

२६. गृहाणेश्वरवर्मस्त्वमेतं मर्कटपोतकम्।।

पुनस्तत्सुन्दरीवेश्म प्राग्वद् गत्व दिने दिने।
एवं गुप्तनिगीर्णांस्तान्मृगयस्यामुतो व्यये ।।

दृष्ट्वा चिन्तामणिप्रख्यं सैतमालं च सुन्दरी।
दत्त्वा ते प्राथ्यं सर्वस्वं कपिमेकं ग्रहीष्यति। -लम्बक १०/ तरंग १/ १४०-४२

२७. तदर्पयामि कुट्टन्याः [illegible]।
वेश्ययाजोपशिक्षार्थ येन ताभिर्न वञ्चयेत ॥

इत्यालोच्य स पुत्रेण सहैवेश्वरवर्णमा।
यमजिह्वाभिधानायाः कुट्टन्याः सदनं ययौ॥

तत्र स्थूलहनुं दीर्घदशना भुग्ननासिकाम्।
शिक्षायन्तीं दुहितरं कुट्टनी ता ददर्श सः॥

'धनेने पूज्यते पुत्रि सर्वो वेश्या विशेषतः।
तच्च नास्त्यनुरागिण्या रागं वेश्या त्यजेदतः॥

द्रोषाग्रदूतो रागो हि वेश्यापश्चिमसन्ध्ययोः।
मिथ्यैव दर्शयेग्श्या तं नटीव सुशिक्षिता॥-लम्बक १०/ तरंग १/५८-६२

२८. अथ विरलोन्नतदशनां निम्नहनुं स्थूलचिपिटनासाग्राम् ।
उल्वणचूचुकलक्षितशुष्ककुचस्थानशिथिलकृत्रितनुम् ॥

गम्भीरारक्तदृशं निर्भूषणलम्बकर्णपाली च।
कतिपयपाण्डुरचिकुरां प्रकटशिरासन्ततायतग्रीवाम् ॥ -कुट्टनीमतम्/२७-८

अस्थियन्त्रशिसतन्त्री ... विरोधिनाम् ॥ -समयमातृका, चतुर्थ समय

२९. पुनस्तं चाब्रवीन्मित्र नाकार्षीस्त्वं वचो हि मे।
तदद्य वेश्यासद्भावो दृष्टः प्रत्यक्षतस्त्वया॥

अर्धचन्द्रस्त्वया प्राप्तो दत्त्वा तत्कोटिपञ्चकम्।
कः प्राज्ञो वाञ्छति स्नेहं वेश्यासु सिकतासु च॥-लम्बक १०/तरंग १/१२७-२८

३०. तेनापणात्स गोधूमचूर्ण क्रीत्वा दिनात्यये।
चकारापूपिकाः क्वापि मृदित्वा कर्परेऽम्भसा॥

गत्वा श्मशाने पक्त्वा ताश्चिताग्नावेत्य चाग्रतः।
महाकालस्य तद्दीपघृताभ्यक्ता अभक्षयत्॥-लम्बक १८/तरंग २/ ७४-७५

३१. न्यधाच्च तस्यास्तत्रान्तः प्रत्यहं सा दिनात्यये।
पापा तादृगवस्थाया भक्तस्यार्धशरावकम् ॥-लम्बक ६/तरंग ३ /८८

अपतत् स्वादधृतक्षीरशालिभक्तादिभोजनम्।
चिन्तितं चिन्तितं चान्यन्मम भोज्यमुपागत्।
तद्भुक्त्वा चाहमभवं देवातीवेह निर्वृतः॥ -लम्बक ७/ तरंग ९/५५-५६,

अर्थवर्मा तु भुङ्क्ते स्म घृतार्धपलसंयुतान्।
सक्तन् भक्तमपि स्तोक मांसव्यञ्जनमल्पकम् ।।-लम्बक ९ /तरंग ४/ १७१

कृसरं ब्राह्मणकृते पर्वण्यद्य पचेरिति। -लम्बक १०/तरंग ५/ ९९-१००

-लम्बक १०/ तरंग ९/ ४९-५०

३२. तत्र दिव्यानि भक्ष्याणि मोदकादीन्यवाप्य सः।
भुञ्जानो न्यवसद् भौतो दिनानि कतिचित् सुखम् ।।-लम्बक १०/ तरंग ९/ १८६

३३. अयं चापूपिकामुग्धः संक्षेपेण निशम्यताम्।
क्रीणाति स्माध्वगः कश्चित्पणेनाष्टावपूपकान्।।

तेषां च यावत् षड्भुङ्क्ते तावन्मेने न तृप्तताम्।
सप्तमेनाथ भुक्तेन तृप्तिस्तस्योदपद्यत।।

ततश्चक्रन्द स जडो मुषितोऽस्मि न किं मया।
एष एवादितो भुक्तोऽपूपो येनास्मि तर्पितः।। -लम्बक १०/तरंग ६/ २०४-२०६

३४. प्रिये राजाज्ञया दूरं स्वव्यापाराय याम्यहम्।
तत्त्वया मम सक्त्वादि पाथेयं दीयतामिति।। -लम्बक १० /तरंग ६/ १०६

सदा तु धृतकर्ष च सक्तूंश्चाश्नामि केवलान्।
अतोऽधिकं मे मन्दाग्नेरुदरे नैव जीर्यते ।। -लम्बक ९/तरंग ४/ १७४,

३५. घृतकर्षपयोमांसभक्तमभ्यधिकं च यत्।
भुक्तं तत्सर्वमुदरादाचकर्षुश्च तस्य ते।। -लम्बक ९/तरंग ८/१८२

३६. तत्क्षणं च क्षुधाक्रान्तः शाकवाटेऽवतीर्य सः।
तत्र सुन्दरकश्चक्रे वृत्तिमुत्खातमूलकैः।।

ततोऽत्र भुक्त्वा कतिचिन्मूलकान्यपराणि च।
नेतुं प्रक्षिप्य गोवाटे तत्र तस्थौ स पूर्ववत्।।

ययौ भोजनमूल्यार्थी विपणीमात्तमूलकः।
विक्रीणानस्य तस्यात्र मूलकं राजसेवकाः।।

मालवीया बिना मूल्यं जहरुर्दृष्ट्वा स्वदेशजम्।।

मालवात्कथमानीय कान्यकुब्जेऽत्र मूलकम्।
विक्रीणीषे सदेत्येष पृष्ठोऽस्माभिर्न जल्पसि।।

-लम्बक३/तरंग ६/१४३,१६३,१६५,६६ और १६८,

३७. गच्छंश्च तत्र कलकूजितराजहंसमच्छं सुधासरसशीतलभूरिवारि।
आम्रावलीपनसदाडिमरम्यरोधः सायं सरो विकचवारिजमाससाद।।

तस्मिन्स्नात्वा हिमगिरिसुताकान्तमभ्यर्च्य भक्त्या।
कृत्संहारं सुरभिमधुरास्वादहृद्यै: फलैस्तै:।

सख्या सार्ध मृदुकिसलयास्तीर्णशय्याप्रसुप्त स्तनीरे तां रजनिमनयत्सोऽत्र वत्सेशमूनु:।

लम्बक ६/तरग ८/२२४-२५

३८. तत: क्रमेण सर्वाणि वृथ्व्यां तीर्थानि सोऽभ्रमत्।
विसोढानेककान्तारकष्टो मूलफळाशन:।। -लम्बक ९/तरंग २/१४३

३९. विपणिस्थमुपागच्छत् कुर्वाणं मांसविक्रयम्।
ईदृशं ते कथं ज्ञानं मांसविक्रयिण: सत:।।

मांसं चान्यहतस्याहं मृगादेर्वृत्तये परम्।
स्वधर्म चर येनाशु पर ज्योतिरवाप्स्यसि।। -लम्बक ९/तरंग ६/१८३-९०,

४०. एकदाहर्म्य पृष्ठअस्थो घृतगोमांसधारकं..... पश्यायम् पापकृत्कथम् ।।

-लम्वक ९ /तरंग ३/१५८-५९

४१. देवपूजा पदेशेन मद्यं मदान्वितम् . ..... परितोषादिवाहृतम्।।

-लम्बक २/तरंग २/१५,८५,१५२,१५९

४२. हर्म्याग्रे निजकीत्तर्येव ज्योत्स्नया धवले च स:।
धाराविगलित सीधु पपौ मदमिव द्विषाम्।।

आजहरु: स्वर्णकलशौस्तस्य वाराङ्गना रह।
स्मरराज्याभिषेकाम्भ इव रागोज्ज्वलं मधु।।

आरक्तसुरसस्वच्छमन्त: स्फुरिततन्मुखम् ।
उपनिन्ये ग्योर्मध्ये स स्वचित्तमिवासवम्।।

ईर्ष्यारुषामभावेऽपि भङ्गरभ्रुणि रागिणि।
न मुखे तत्तयो राज्योस्तद्दृष्टस्तृप्तिमाययौ।।

समधुस्फटिकानेकचषा तस्य पानभू:।
बभौ बालातपारक्तसितपद्मेव पद्मिनी।। -लम्बक ४/तरंग १/ ६-१०

४३. -लम्बक७/तरंग ३/ ३३, लम्बक वही/तरंग ५/२०७, लम्बक वही/तरंग ६/४, ११६, लम्बक ८/तरंग २/२२९-३०, लम्बक १०/तरंग १०/१४१, १४९-५०।

४४. तावदेत्य द्वितीया मां स्वगृहादवदत्सखी।
उत्तिष्ठाहारभौ त्वां पिता मुग्धे प्रतीक्षते।। -लम्बक १०/तरंग ३/१०२

४५. समधुस्फटिकानेक चषका तस्य पानम्:।
बमो वाला तथा रक्तसित पद्मेव पद्ममिनी।। -लम्बक ४/तरंग ३/१०

४६. उत्थाय चैकवस्त्रां तां दमयन्ती विमुच्य स:।
छिन्नं तदुत्तरीयार्ध प्रावृत्य च ततो ययौ।

अत्रान्तरे स राजा च नलस्तस्मिन् वने निशि।
प्रावृतार्धपटो दूरं गत्वा दावाग्निमैक्षत।। -लम्बक ९/तरंग ६/३१७,३४०

४७. गृहाण चाग्निशौचाख्यमिदं वस्त्रयुगं मम।
अनेन प्रावृतेनैव स्वं रूपं प्रतिपत्स्यसे।।

इत्युक्त्वा दत्तगस्त्रयुगे कार्कोटके गते।

नलस्तसमाग्नाद् गत्वा ------- लम्बक ९/तरंग ६/३५१-५२

४८ तत: प्रविश्य नगर वीरदेवबलौ च स·।
क्षत्तृसेनापती पट्ट बद्ध्वा रत्नैरपूरयत्।। -लम्बक ९/तरग ४/ २३३

४९. जाने जहार पृष्ठान्मे स्वप्ने स्त्री कृष्णकम्बलम्।-लम्बक ६/तरंग ३/ १६५

५०. नागीव विस्फुरद्रत्नमूर्धा धवलकञ्चुका।
अब्धिवीचीव लावण्यपूर्णा मुक्तावलीचिता।। -लम्बक १३/ तरंग १/१६५,

५१. गृहीत्वा तत्र तस्यान्तर्वस्त्राण्याभरणानि च।
चैलखण्ड तमेकं च दत्वान्तर्वाससः कृते।। - लम्बक १/तरंग ४/१५२

आपणे रत्नमेकं च गत्वा विक्रीत वास्तत:।
अध वस्त्रांगटागादि क्रीतवान् भोजने तथा:।। -लम्बक २/तरंग १२/१५०-१५१

तथा च राजलोकं तौ रञ्जयामासतुर्यथा।
मदेकप्रवणावेताविति सर्वोऽप्यमन्यत।

तौ चाप्यपूजयद्राजा सचिवौ स्वकरार्पितै:।
वस्त्राङ्गरागाभरणैर्ग्रामैश्च सवसन्तकौ।। -लम्बक २/तरंग ६/५९-६०

मुखैर्धौर्य ताञ्जनाताम्रनेत्रैर्जह्नजलाप्लुतै: ।
अङ्गै: सक्ताम्बरव्यक्तविभागैश्च तमङ्ना:।।

विदलत्पत्रतिलका· स चक्रे वनमध्यगा:।
च्युताभरणपुष्पास्ता लता वायुरिव प्रिया:।।

अथैका तस्य महिषी राज्ञ: स्तनभरालसा:।
शिरीषसुकुमाराङ्गी क्रीडन्ती क्लममभ्यगात्।।

-लम्बक १/तरंग ६/१११-११३

५२ इत्यन्योन्यं प्रतिज्ञाते सा शेते स्म पराङ्गमुखी।
स्वाङ्गुलीयमह चास्या सुप्ताया अंगुलौन्यघात् ।। लम्बक १८/तरंग ५, १२४,

५३ कष्ट्वा च स्वकरान्माता नम्य स्नेहान्मृगावती।
सहस्रानीकानामङ्क चकार कटंक करे।।

विक्रीणानश्च तत्त्र राजनामाङ्कमापणे।
वष्टभ्य राजपुरुषैर्निन्ये राजकुलं च सः।।

कुतस्त्वयेदं कटकं सम्प्राप्तमिति तत्र सः।
राज्ञा सहस्रानीकेन स्वयं शोकादपृच्छत।। -लम्बक २/तरंग १/७३ व ८४-८५

५४. अङ्गुलीयं विषघ्नं च सास्मै दैत्यसुता ददौ।
ततः सोऽत्र स्थितस्तस्यां साभिलाषोऽभवद्युवा।।

खड्गाङ्गुलीयके पश्यन्यातालादुत्थितोऽथ सः।
विषण्णो विस्मितश्चासीद् वञ्जितोऽसुरकन्यया।। -लम्बक २ /तरंग २/ ५० एवं ५३,

५५. सोऽपि तस्यास्तदङ्गुल्यां निचिक्षेपाङ्गुलीयकम्।
ततो जजाप विद्यां च तेचन प्रत्युज्जिजीव सा।

तेना सौ सखिभि. सार्धमगृहीताङ्गुलीयकः।
प्रत्याजगाम श्रीदत्तो भवनं बाहुशालिन·।। -लम्बक २/तरंग २/९७-९९

५६. तत्र तत्प्रत्यभिप्राय वस्त्र हारमवाप्य च।
स चौर इत्यवष्टभ्य निन्ये नगररक्षिभिः।। -वही/वही/ १६९,

५७. -वही/वही/८२-८३ तथा ९०

५८. ग्राम्यः कश्चित्खनन्भूमिं प्रापालङ्करणं महत्।
यद्गृहीत्वा स तत्रैव भार्यां तेन व्यभूषयत्।।
बबन्ध मेखलां मूर्ध्नि हारं च जघनस्थले।
नूपुरौ करयोस्तस्याः कर्णयोरपि कङ्कणौ।। -लम्बक १०/ तरंग ५/२४-२६

५९. एव तयोक्ते गगनात्सोऽत्र विद्याधराधिपः।
अवातरद्दिव्यरूपो हारकेयूरराजितः।। -लम्बक ६/तरंग ७/२११

६०. वसन्तकसुतं क्रीडासखीत्वे तु तपन्तकम् ।
गोमुखं च प्रतीहारधुरायामित्यकात्मजम् ।। -लम्बक ६/तरंग ८/११५

६१. वत्सेशेन समं पित्रा वयस्यैश्चाटवी ययौ।
नरवाहनदत्तोऽश्वैर्गजैश्च परिवारितः।।

तत्र भिन्नेभकुम्भानां नखोदरपरिच्युतैः।
सिंहानां हतसुप्तानामुप्तजेव मौक्तिकैः।।

व्याघ्राणां भल्लव्हूनानां दंष्ट्रभिः साङ्कुरेव च।
सपल्लवेव क्षतजैर्हरिणानां परिस्रुतैः।।

निमग्नकङ्कपत्राङ्कै क्रोडै स्तबकितेव च।
शरीरै. शरभाणां च पतितैः फलितेव च।।

बभूव तस्य निपतद्घनशब्दशिलीमुखा।
प्रीतये मृगयालीलालता शोभितकानना।। -लम्बक ७/तरंग ८/ १-७

६२ शनैः श्रान्त स विश्रम्य प्रविवेश वनान्तरम्।
तत्रारेभे च गुलिकाक्रीडां कामपि तत्क्षणम्।। -लम्बक ७/तरंग ८/१-९

६३. अन्तरा च मिलद्व्याधः पळाशश्यामकञ्चुकः।
स सबाणासोन भेजे स्वोपमं मृगकाननम्।।

जघान पङ्ककलुषान्वराहनिवहान्शरैः।
तिमिरौघानविलैः करैरिव मरीचिमान्।।

वित्रस्तप्रसृतास्तस्मिन्कृष्णसारा प्रधाविते।
बभुः पूर्वाभिभूतानां कटाक्षाः ककुभामिव ।।

रेजे रक्तारुपणा चास्य मही महषिधातिनः।
सेवागतेव तच्छृङ्गपातमुक्ता वनाब्जिनी।।

व्यात्तवक्त्रपतत्प्रासप्रोतेष्वपि मृगारिषु।
सान्तर्गर्जितनिष्क्रान्तजीवितेषु तुतोष स ।।

श्वानः श्वभ्रे वने तस्मिस्तस्य वर्त्मसु वागुराः।
सा स्वायुधैकसिद्धेऽभूत्प्रक्रिया मृगयारसे।। -लम्बक ८/तरंग १/११-१६

६४. -लम्बक ९/तरंग ६/९०-९२

६५. अस्यामेवोज्जयिन्यां स द्यूतकारोऽभवत्पुरि।
पूर्व ठिण्ठाकरालाख्यो विषमोऽन्वर्थनामकः।।

तस्यं हारयतो नित्यं द्यूते ये जयिनोऽपरे।
ते प्रत्यहं द्यूतकाराः कपर्दकशतं ददुः।। -लम्बक १८/तरंग २/ ७२-७३

६६. दीव्यन्तमक्षैर्मा तत्र दृष्टवाभिज्ञाननिश्चितम्।
ठिण्ठास्थानेत्य सर्वांश्च द्यूतेन जयति स्म सः।। -वही/ तरंग ५/ २१०,

६७. स च द्यूतविपत्क्लिष्टः कुमारत्वे भृशं यतः।
अतस्तेन कृतः स्फीतः कितवानां महामठः।।

लभन्ते कितवास्तत्र वसन्तोऽभीष्टभोजनम्।
तगत्स तत्र गच्छ त्वं भद्रं तव भविष्यति।। -लम्बक १२ /तरंग ६/१८९-९०

६८. शनैश्च स तनूभूतशोकोऽकृतपरिग्रहः।
द्यूतक्रीडाप्रसक्तोऽभूद्दैवात्प्राज्ञोऽप्यबान्धव. ।।

अचिरेण च कालेन तस्य क्षीणार्थसम्पद.।
तेन दुर्व्यसनेनासीद्भोजनेऽपि कदर्थना।।

एकदा द्यूतशालायां निराहारस्थितं त्र्यहम्।
अशक्नुवन्तं निर्गन्तु लज्जयानुचिताम्बरम्।। -लम्बक १२/तरंग वही, ७२-७४

६९. असिञ्चत्तत्र दयिता· सहेलं करवारिभि:।
असिच्यत स ताभिश्च वशाभिरिव वारण।।

मुखैर्धौ ताञ्जनाताम्रनेत्रैर्जह्वजलाप्लुतै ।
अङ्गै· सक्ताम्बरव्यक्तविभागैश्च तमङ्गना।। -लम्बक १/तरंग ६/११०-११

७० जलक्रीडाप्रवृत्तने नलेनाध्यासितं सर·।
नल· स राजा दृष्ट्वा तं राजहसं मनोरमम्।।

बबन्ध स्वोत्तरीयेण -----लम्बक ९/तरग ६/२४८-४९

७१. वत्सराजाय गान्धर्वशिक्षाहेतो: समर्थयत्।
उवाच चैनं गान्धर्व त्वमेतां शिक्षय प्रभो।। -लम्बक २/तरंग ४/२६-२७

७२. स्वयं स वादयन् वीणां देव्या वासवदत्तया।
पद्मावत्या च सहित: सङ्गीतकमसेवत।।

देवीकाकलिगीतस्य तद्वीणाननदस्य च।
अभेदे वादनाङ्गुष्ठकम्पोऽभूद् भेदसूचक:।। -लम्बक ४/तरंग १/४-५

७३. स्वराञ्श्रुतिषु युञ्जन्त्यास्तस्या ब्राह्मया इव श्रिय:।
नरवाहनदत्तोऽभूद्गीते रूपे च निस्मित:।।

ततोऽत्र वीक्ष्यते यावद्बालस्तावदवापि स:।
तेन सर्वेऽपि ते जग्मुर्गन्धर्वा अपि विस्मयम्।। -लम्बक १४/तरंग २/२४-२६

७४. द्वितीयोऽशोकदत्तख्यो बाहुयुद्धमशिक्षत् । आदि-आदि/लम्बक ५/ तरंग २/११८-२६

७५. तत्र वासवदत्ता च प्रविष्टा चित्रभित्तिषु।
पश्यन्ती रामचरिते सीता सेहे निजव्यथाम्।। -लम्बक ३/ तरग २/ २७

७६. दिव्यचित्रकलाभिज्ञो लिखन्विद्याधराङ्गना:।
कुर्वश्च नर्मवक्रोक्ती: कोपयामास ता: प्रिया: ।। -लम्बक ८/तरंग १/ ५२,

७७. तच्छ्रुत्वा तत्रतेऽभूवनवाणिजोऽन्ये साविस्मया:।
धीर्ण चित्रीयते कस्मादि्भित्तौ चित्रकर्माण:।। -लम्बक १/तंरग ६/५०

७८. चित्रस्थ इव पृष्टोऽपि नैव किञ्चिदभाषत।। -लम्बक १/तरंग ६/१२०

७९. चित्रभित्तेर्विनिर्गत्य गदाचक्रधर: पुमान्।
दष्टाधरौष्ठी दशनै: क्षतस्तनतटां नखै:।।

कृत्वोपभुज्य रात्रौ मां तद् भित्तावेव लीयते।
एतत्किमिति व: पृच्छाम्युत्तरं मेऽत्रदीयताम्।। -लम्बक १०/तरंग १०/६६-६७

८०. सोऽतच देवजयो गत्वा तत्सर्वं मकरन्दिकाम्।
तथैवाबोधयत्तेन जज्ञे सा विरहातुरा ।।
नोद्याने सा रतिं लेभे न गीते न सखीजने।
शुकानामपि शुश्राव न विनोदवतीर्गिर:।। -लम्बक १०/तरंग ३/ १४९-५०,

८१. तद्यदीच्छति सुश्रोणि सोमस्वामी प्रिय: स ते।
तदेतं मर्कटशिशुं सम्प्रत्येव करोम्यमहम्।।

तत· क्रीडानिभादेत गृहीत्वा मधुरां व्रज।
मन्त्रयुक्तिग्य चैतद् भवती शिक्षायाम्यहम्।। -लम्बक ७/ तरंग ३/ १११-१८

८२ तत सोमप्रभा प्रातस्तद्विनोदोपपादिर्नीम् ।
न्यस्तदारुमयानेकमायासद्यन्त्रपुत्रिकाम्।।

करण्डिका समादाय सा नभस्तलचारिणी।
तस्या. कलिङ्गसेनाया निकटं पुनराययौ।। -लम्बक ६/तरंग ३/१-२

८३. सा जातु गुलिकाक्रीडा कुर्वन् गुलिकया छलात्।
तापसीं राजतनयो भार्गयानामताडयत्।। -लम्बक १०/ तरंग ९/२१६

८४ इन्द्रोत्सवं कदाचिच्च प्रेक्षितु निर्गता वयम्।
कन्यामेकामपश्याम कामस्यास्त्रमसायकम्।। -लम्बक १/तरंग ४/३

८५. तस्यान्मधूत्सवाक्षिप्तपौरलोके गृहं मम।
आगन्तव्यं ध्रुवं रात्रे: प्रथमे प्रहरे त्वया।। -लम्बक १/तरंग ४/३५,

तत· कदाचिद्ध्यास्त वसन्त समयोत्सवे।
देवीकृतं तदुधानं स राजा रातवाहन:।। -लम्बक १/तरंग ४/१०८,

कदाचित्सोऽथ सम्प्राप्ते मधुमासमहोत्सवे।
यात्रामुपवने द्रष्टं जगाम सखिभि· सह।। -लम्बक २/तरंग २/८७,

पुराहं पितृवेश्मस्था कन्या मधुमहोत्सवे।
एवमुक्त्वा वयस्याभि: समेत्योद्यानवर्त्तिनी।।

अस्तीह प्रमदोद्याने तरुमण्डलमध्यग:।
दृष्टप्रभावो वरदो देवदेवो विनायक:।। -लम्बक ३/तरंग ६/५४-५५,

८६. एकदा चाजगामात्र विकसत्केसरावलि:।
दलयन्मानिनीमानमातडंग मधुकेसरी।।

लग्नालिमालामौर्वीका: पुष्पेषो. कुसुमाकर:।
सज्जीचकार चोत्फुल्लचूतवल्लीधनुर्लता।। -इत्यादि- लम्बक ९/तरंग ५/१०७-११७,

८७. अम्भोविहारविचलद्वस्त्रव्यक्ताङ्गर्भाङ्गषु ।
रेमे कनकवर्षस्य तासु तस्य तदा मन:।। -लम्बक वही/ वही/ ११८-२१,

८८. नभोविहारसंस्कारमदाच्चिक्रीड दोलया। -लम्बक १०/ तरंग १०/१३८,

पंचम अध्याय

कथासरित्सागर में प्रतिबिम्बित आर्थिक स्थिति

- कृषि एवं पशुपालन
- व्यवसाय एवं उद्योग धन्धे
- वाणिज्य एवं व्यापार
- कर एवं राजस्व प्रणाली

कथासरित्सागर में प्रतिबिम्बित आर्थिक स्थिति

कथासरित्सागर में तत्कालीन सामाजिक स्थिति का प्रतिविम्बन विवेचित करते समय खान-पान, परिधान, वस्त्राभूषण, मनोरंजन आदि का एक स्वस्थ स्वरूप उपस्थित किया गया है। विवेचन से स्पष्ट है कि समाज सुसंस्कृत, आचार परिष्कृत तथा समृद्ध रहा। जन जीवन सुसंगठित, सुसंगमित और सुखमय था। खान-पान मे गोधूम, चावल, शाक, दूध फल आदि का जन समाज प्राय: प्रयोग करता था। जिसका संकेत है कि कृषि और व्यवसाय समुन्नत रहे होगे। गोपालन भी अवश्य होता रहा। आलोच्य ग्रन्थ कथाकाव्य और केवल कथानुकथा का संग्रह है, अत: उसमें समाज के सभी पक्षों का सावयव चित्रण कथमपि नहीं है। यत्र-तत्र आख्यान क्रम में, घटना एवं घटनान्तर्गत चरित्रों के अनुशीलन-क्रम में कृषि क्षेत्र अथवा शाकोपवन के आभास अवश्य मिलते है। लेकिन कृषि के उपकरण अथवा उसके ढंग आदि पर किञ्चिदपि प्रकाश नहीं पड़ता है इसी परिप्रेक्ष्य में एतद्विषयक विवेचन द्रष्टव्य है-

कृषि

आख्यानो, कथा-प्रकृति एवं विधेय प्रतिपादनार्थ कृषि क्षेत्र एवं फसल का अंकन ही हमारे लिए उस समय के कृषि कार्य के अस्तित्व का संकेत करते हैं- 'कोई धोबी अपने क्षीणकाय गधे को पुष्ट करने के लिए बाघ के चर्म से उसे ढ़ककर दूसरो के खेत मे चरने के लिए छोड़ देता है। वह निर्द्वन्द रूप से खेतों मे फसल यथेच्छ रूप से खाता था। रखवाले उसे बाघ समझकर रोक नहीं पाते थे।[१] तिवलकार्षिक की कथा से ज्ञात होता है कि - एक मूर्ख किसान था, जिसने तिल बोया था एक बार उने तिलो को भून कर खाया, जो उसे अतिशय स्वादिष्ट लगा। उसने भूने हुए तिलों को ही स्वादिष्ट एवं मधुर तेल प्राप्त करने की इच्छा से खेत में बो दिया। भूने तिल खेत मे उगे ही नहीं। परिणामत: वह उपहास का पात्र बन गया।[२] कथासरित्सागर के अनुशीलन से संकेत मिलता है कि जलाशय के निकट शाक की वाटिकाएँ लगायी जाती थी। जहाँ मूली-कटहल आदि उगाये जाते थे। इसके अतिरिक्त अन्य फलदार वृक्ष भी रहते थे। कालरात्रि के आख्यान में सुन्दरक ने शाक-वाडे से मूली उखाड़ी और उसे ही खाकर अपनी क्षुधा शान्त की था।[३] एक अन्य संदर्भ उल्लेखनीय है- मार्ग में जाते हुए उसने एक सुन्दर-सरोवर देखा, उसमे सुंदर, मधुर शब्द करते हुए हंस विचरण कर रहे थे सम्पूर्ण सरोवर ही मुखरित हो रहा था। जल अमृत-सम मधुर तृप्तिदायक था। उसके तट पर आम, अनार एवं कटहल के सुन्दर वृक्ष लहलहा रहे थे। सुन्दर मधुर फलों का उसने आहार किया।[४] खान-पान के स्तर से

प्रतीत होता है कि कथासरित्सागर कालीन समाज मे कृषि एक महत्वपूर्ण व्यवसाय के रूप में अवश्यमेव प्रतिष्ठित रहा होगा।

पशुपालन

दूध, घी और दूध मिश्रित मिष्ठान भोजन इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि कथासरित्सागर कालीन समाज मे गाय आदि पशुओं का पालन अवश्य होता था। आलोच्य ग्रन्थ के आख्यानो मे- ग्वाला, गड़ेरिया आदि का अंकन प्राप्त होता है- ग्वालो ने कहा- महाराज हम लोग गौएँ चराते हैं और निर्जन वन में खेते है। हमारे बीच देवसेन नामक एक ग्वाला है। वह जंगल मं एक स्थान पर चट्टान पर बैठकर कहता है- मैं तुम्हारा राजा हूँ और हमारा शासन चलता है। हम लोगो में से कोई उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता।[५] ग्वाले ने कहा - ऐसा करो, यह मेरा काला कम्बल ले लो, लाढी भी ले लो, तब तक यहाँ बैठो जब तक दासी न आ जाय।[६] कथासरित्सागर के इस अंकन से ग्वाले की वेषभूषा का भी परिज्ञान होता है। इसी प्रकार एक मूर्ख ग्वाले का सन्दर्भ अत्यन्त रोचक है। एक गंवार ग्वाला था, उसके पास एक गाय था। वह प्रतिदिन पाँच सेर दूध देती था। उसके घर में एक उत्सव होने वाला था, अत: उसने गाय दुहना रोक दिया कि उत्सव के ही अवसर पर सारा दूध इकट्ठा दुह लूंगा। उत्सव के दिन जब गाय दूहने गया तो सारा दूध सूख चुका था।[७] एक मूर्ख गड़ेरिये का आख्यान अत्यन्त

रोचक है- एक धनी गडेरिया था। कुछ ठगो ने उसे विवाह करने का लोभ देकर उससे धन लिया। कुछ दिन बाद उसने पुत्र के लिए उत्सुकता प्रकट किया तथा रोने लगा, पशुपालन करने से जिसमें पशुता आ गयी था, ऐसा वह गड़ेरिया, धूर्तो द्वारा ठगा गया।[८] कथासरित्सागर में गड़ेरिया के लिए 'पशुपाल' शब्द प्रयोग हुआ है।

व्यवसाय एवं उद्योग धन्धे

. कथासरित्सागर मे व्यवसाय अथवा उद्योग धन्धो का नामत: अंकन न के समान है। आख्यानों के क्रम मे यत्र-तत्र पात्र विशेष के चारित्रिक वर्णन मे उनके गुण विशेष का उल्लेख हो गया है, अथवा घटना क्रम मे वस्तु विशेष के संदर्भ का अंकन होने से, यह निष्कर्ष निकलता है कि तत्कालीन समाज में वस्तु विशेष का निर्माण अवश्य होता था। षष्ठ लम्बक में कलिंग सेना-वृतान्त में 'डोलची' और लकड़ी की पुत्तलिकाओं का वर्णन प्राप्त होता है। इससे स्पष्टत: संकेतित होता है कि उस काल में काष्ठ डोलची बनती थी और पुत्तलिकाएँ भी निर्मित होती था। निश्चयत: इनके निर्माता भी रहे होंगे। अर्थात् यह एक उद्योग के रूप मे गतिशील अवश्य रहा होगा। इसी प्रकार मूर्तियों का, चित्रों का, हार, केयूर, आदि के अंकनों से आभासित होता था कि मूर्तिकार, चित्रकार एवं जौहरी थे और वह अपना व्यवसाय करते थे- अपनी सास से एकान्त में बात करके देवस्मिता ने अपनी सहेलियों के साथ व्यापारी बनिए का सा वेष बनाया। व्यापार करने

के बहाने जहाज पर बैठकर कटाहद्वीप पहुँची, वहाँ उसका पति ठहरा था। कटाह द्वीप के जौहरी बाजार मे व्यापारियो के मध्य बैठे हुए मूर्तिमान धैर्य के समान अपने पति को देखा।[९] स्पष्ट है कि उस समय आभूषण निर्माण व्यवसाय रहा और इस व्यवसाय वाले जौहरी कहे जाते थे, इनके निवास का नाम जौहरी बाजार रहा। कथासरित्सागर मे चित्रकार के भी संदर्भ प्राप्त होते है। रोलदेव नामक चित्रकार ने राजभवन के द्वार पर चित्रपट मे एक चित्र बनाकर लटका दिया है। राजा ने आदर सहित उसे लाने का आदेश दिया, द्वारपाल चित्रकार को लेकर उपस्थित हुआ। उस चित्रकार ने चित्रभवन में प्रवेश करके चित्रो को देखने के विनोद मे राजा कनक वर्ण को एकान्त में देखा। तद्नन्तर सुन्दरी स्त्री के कुचो के बीच शरीर का भार दिये हुए, आसन पर बैठे हुए, हाथ में पान का बीड़ा उठाये हुए, राजा से उस चित्रकार ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया- आप आज्ञा दे कि चित्र मे किसका रूप अंकित करुँ, जिससे चित्रकला सीखने का मेरा प्रयास सफर हो। चित्रकार द्वारा ऐसा निवेदन किये जाने पर राजदरबारियो ने कहा- 'तुम राजा का ही चित्र बनाओ' अन्य किसी विरुप का चित्र बनाने से क्या लाभ? चित्रकार ने राजा का चित्र बनाया, फिर दरबारियों ने राजा के अनुरूप किसी रानी का भी चित्र राजा के साथ बना दो। चित्रकार ने कहा- इस योग्य कोई सुन्दर है ही नहीं।[१०] इसी प्रकार एक मूर्तिकार का भी उल्लेख है- प्रतिदिन पीठ से रगड़ने के कारण वह खम्भा अत्यन्त चिक्कण और सुन्दर हो गया था। एक बार एक चित्रकार और एक मूर्तिकार उधर से निकले। चित्रकार ने सुन्दर और चिक्कण खंभा

देखकर उस पर गौरी का चित्र निर्मित कर दिया। मूर्तिकार ने भी क्रीडावश छेनी और हथोड़ी से उसे खोदकर मूर्ति का एक सुन्दर रूप प्रदान कर दिया।[११]

आख्यान क्रम मे मिस्त्री, बढ़ई, तन्तुवाय भी संदर्भित है, इससे यह ध्वनित होता है कि मिस्त्री, बढ़ई और तन्तुवाय भी अपने-अपने व्यवसाय मे निरत रहे- एक बनिया ने मन्दिर बनवाने के लिए बहुत सी लकड़ियाँ एकत्र कर रखी थीं। वहाँ काम करने वाले मिस्त्रयों ने एक लकड़ी को आरे से ऊपर की ओर से आधा चीरकर उसके बीच मे एक खूंटा लगाकर उसे छोड़ दिया, और सांयकाल काम बन्द कर घरो को चले गये।[१२] इस आख्यान से स्पष्ट होता है कि उस समय लकड़ी-काटने और चीरने का काम करने वाला एक वर्ग था जो मिस्त्री संज्ञा से अभिहित होता था। बुनकर एवं जुलाहे का संदर्भ भी कथासरित्सागर में उल्लिखित है। इससे यह सूचना प्राप्त होती है कि कपड़ा बुनना भी एक व्यवसाय के रूप में उस समय प्रतिष्ठित था।- "मैं पञ्चपट्टिक नाम का जुलाहा हूँ और कपड़ा बुनने का विज्ञान जानता हूँ, और प्रतिदिन पांच जोड़े कपड़े बुनता हूँ। एक जोड़ा ब्राह्मण को देता हूँ दूसरा जोड़ा ईश्वर को अर्पित करता हूँ, तीसरा स्वयं पहिनता हूँ। चौथा जोड़ा यदि मेरी पत्नी हो तो उसे दूँ तथा पाँचवा जोड़ा स्वयं बेचकर जीवन निर्वाह करता हूँ।[१३] कथासरित्सागर में संग्रहीत आख्यानों में जौहरी, मिस्त्री, चित्रकार, मूर्तिकार और तन्तुवाय संदर्भित हैं जिससे यह निश्चयत: संकेत है कि उस समय चित्रकारी, मूर्ति-निर्मिति, काष्ठ-कला, बुनकरी आदि व्यवसाय एवं उद्योग अस्तित्व में थे।

वाणिज्य एवं व्यापार

कथासरित्सागर गुणाढ्‌ य की पैशाची भाषा निबद्ध 'बड्‌ढकहा' (वृहत्कथा) का सार संग्रह है (कथा०/लम्बक०१/तरंग१/३) अर्थ यह कि सोमदेव भट्ट रचनाकार नही हैं। उन्होने मात्र पूर्व की कृति का संक्षिप्त रूप उपस्थित किया है। कथासरित्सागर संक्षेपण है वृहत्कथा का। कदाचित यह वृहत्कथा भी मौलिक रचना नही है यह भी आख्यानों का एक वृहत्संग्रह है। वह समय गुप्तकालीन वृहत्तर भारत के परिवेश का युग था। भारतीय इतिहास का स्वर्णिम युग था। निरन्तर सार्थवाहो का दल समुद्रीमार्ग से द्वीप-दीपान्तरो की यात्राएँ करता रहता था। सार्थवाहो से भरी नौकाओ को ले जाने वाले शत-सहस्त्र कर्मचारी साथ चलते थे। मार्ग की श्रान्ति की शान्ति के लिए अथवा मन बहलाव के लिए परस्पर कथा-आख्यान सुनते सुनाते थे। इस क्रम मे मार्ग लघु हो जाता। आख्यान सुनाने वाले लोक कवि और भाषा ठेठ होती था। इन्ही श्रमजीवियो के बीच सुनी-सुनायी जाने वाली कथाओं को गुणाढ्य ने संकलित कर लिया। कथाएं गुणाढ्य की कल्पना प्रसूत नही अपितु तत्कालीन सार्थवाह, व्यापारियों द्वारा सुनी-सुनायी जाने वाली तत्देशीय लोकाख्यान- लोक कथाएँ थी। हमारा विश्वास है कि वृहत्कथा एवं उसके सारसंग्रह रूप कथासरित्सागर का उपजीव्य समुद्र यात्रा करने वाले व्यापारियों-सार्थवाहो द्वारा कही गयी कथाएँ है। अत: हम यह कहेगें कि ये व्यापारी एवं सार्थवाह ही उसका जीवन है। ग्रन्थ के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि इस आख्यान-संग्रह की सर्वाधिक कथाएँ नारी-चरित्र से सम्बंधित मिलती है

और दूसरे पर वैश्य, वणिक् , व्यापारियों से सम्बंध रखने वाली कहानियाँ है। इससे प्रतीत होता है कि उस काल मे वाण्ज्यि-व्यापार समुन्नत था। भारतीय व्यापारी द्वीप-द्वीपान्तरो तक समुद्र मात्राएँ करते थे।

भारतीय वणिक् द्वीपान्तर यात्रा करना और व्यापार द्वारा धनार्जन करना अपना गौरव मानता था। द्वीपो में सर्वाधिक महत्वशाली द्वीप था 'नारिकेल द्वीप'। यह समुद्र की यात्राएँ करने वालो के लिए विश्राम भूमि, पड़ाव के समान था- चार दिव्य पुरुषो की कथा मे अंकन है- उन चारों ने पूँछने के पश्चात् अपना परिचय देते हुए बताया- महासागर के मध्य अति सम्पन्न एवं विशाल समुद्र द्वीप है जो जगत में 'नारिकेल द्वीप' नाम से प्रख्यात है। उसमें चार पर्वत मेनाक, वृषाभ, चक्र और बलाहक हैं, जो दिव्य भूमि सदृश है। उन चारों पर्वतों पर हम चारो जन निवसते हैं।[१४] अन्य द्वीप जहाँ की वणिक् जन यात्रा करते हैं वह है - व्यापारियो द्वारा सुनने के पश्चात् चन्द्रस्वामी जलयान द्वारा कटाह द्वीप गया। वहाँ उसे ज्ञात हुआ कि कनकवर्मा वहाँ से कर्पूर द्वीप चला गया। उसी क्रम में कर्पूर, सुवर्ण तथा सिंहल द्वीप मे वैश्यों के साथ जाने पर भी वह कनकवर्मा को प्राप्त न कर सका।[१५] नारिकेल द्वीप का अंकन सर्वाधिक प्राप्त होता है।[१६] वणिक् जनों को इन यात्राओं में अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ता था, लेकिन वह साहस एकत्रकर अपने उद्देश्य की ओर ही उन्मुख रहते थे। समुद्र शूर वैश्य की कथा में भीषण, समुद्री, तूफान और लूटेरों के आक्रमण का अंकन प्राप्त होता है- समुद्रशूर वाणिज्यार्थ सुवर्ण

द्वीप को प्रस्थान करते हुए माल-सामान लेकर समुद्रतट पर पहुँचकर नाव पर चढ़ा कुछ ही मार्ग शेष रहने पर आकाश मे भयानक मेघ छा गए एवं सागर को क्षुब्ध कर देने वाला भीषण तूफान आ गया। समुद्र की लहरों मे पड़ गया। साहसकर कूद पड़ा। तैरते हुए उसे एक शव हाथ लग गया। वह उस पर बैठकर, वायु अनुकूल से सुवर्णद्वीप के तट पर पहुँच गया।[१७] वह समुद्र शूर पुनः वणिक् समूह में सम्मिलित होकर स्वदेश के लिए प्रस्थित हुआ। मार्ग मे लुटेरो ने वणिक् दल पर आक्रमण कर दिया। व्यापारियो का माल लुटेरे लूट ले गये, व्यापारी मारे गये, वह बच गया, पूरी रात एक वृक्ष पर व्यतीत किया। प्रातःकाल समुद्रशूर को पत्तो के झुरमुट मे एक तेज प्रकाश दिखायी पड़ा। उसने वहाँ जाकर देखा- एक गीध के कोटर में बहुत सा धन पड़ा था। उसने घोसले से वह समस्त धन हस्तगत कर लिया। इस प्रकार अनन्त धन की प्राप्ति होने के पश्चात् वैश्य उस वट वृक्ष से नीचे उतरा और आनन्दित मानस चलकर निज नगर हर्षपुर पहुंच गया। अधिक धन की लालसा त्याग वह अपने परिवार के संग सुखपूर्वक निवसने लगा। यह दैवयोग ही है- समुद्र मे उसका डूबना, उसका सारा घन समुद्र मे नष्ट होना, कण्ठहार की प्राप्ति, शव पर बैठ समुद्र पार करना, प्रसन्न द्वीप के राजा से धन प्राप्ति, उसका लूटा जाना और पुनः वट वृक्ष से प्रचुर धन की प्राप्ति।[१८]

अर्थलोभ की कथा से ज्ञात होता है कि कथासरित्सागरकालीन वणिक् जनों का व्यापारिक सम्पर्क न केवल राष्ट्र में अपितु अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर भी समुन्नत था। चीनी

व्यापारी द्वारा सहस्राधिक अश्वो और विविध भॉति के चीन मे निर्मित वस्त्र विक्रयार्थ लेकर भारत मे आया था - बाहुबल नामक राजा का एक दरवारी था, अर्थलोभी वह अपनी सुन्दर स्त्री मानपरा के माध्यम से वाणिड्य व्यापार का कार्य करता थआ। वह इतना लोभी था कि धन लोभ मे अपनी स्त्री तक को दांव पर भेज देना। वह सुन्दरी हार्थी घोड़े, रत्न, वस्त्र आदि के विक्रय से प्रचुर धन कमाती थी। एक बार दूरस्थ देश निवासी एक व्यापारी घोड़े आदि सामान के विक्रय निमित्त कांची आ पहुॅचा। उसका नाम था सुखधन। अर्थ लोभ वणिक् ने अपनी पत्नी मानपरा से कहा- सुखधन नामक बनिया दूर देश से यहॉ आया हुआ है, प्रिये! उसके पास बीस हजार चीनी घोड़े एवं भांति-भांति के प्रभूत मात्रा मे चीनी वस्त्र है। तुम जाकर उसके पास से पांच हजार घोड़े, दस हजार जोड़े वस्त्र खरीद लो। उससे हम अपना व्यापार प्रारम्भ करेगें। सुखधन, उस अर्थलोभ से भी कुछ आगे रहा। उसने मानपरा से कहा - यदि तुम एक रात मेरे साथ व्यतीत करो तो मै तमाम घोड़े और वस्त्र के जोड़े तुमको बिना मूल्य लिए दे दूॅगा। अर्थलोभ ने पत्नी को तदर्थ धन-लोभ में अनुमत कर दिया। [११] आधुनिक युग में बड़े-बड़े और प्रतिष्ठित व्यापारिक प्रतिष्ठानों में बिक्री वृद्धि की दृष्टि से ग्राहको को आकृष्ट करने के लिए विविध मनोरंजनोपकरण रखते है, यह आधुनिक काल की ही नही अपितु सदियों पुरातन परम्परा है, जिसका जीवन्त प्रमाण यह कथा है- जब मानपरा का पति कहता है - 'प्रिये यदि एक दिन में (रात में) पांच हजार वस्त्र तथा पांच सौ चीनी घोड़े प्राप्त

होते है तो क्या दोष? तुम उसके पास जाओ और प्रात: शीघ्रातिशीघ्र चली आना।[२०]

'कथासरित्सागर' मे वणिक् , बनिया, वैश्य, व्यापारी शब्द समानार्थक है और वह समानार्थ है व्यापारी, अर्थात् वस्तुओं का क्रय विक्रय करने वाला व्यक्ति। बनिया वस्तुत: जन्मजात व्यापार-दृष्टि से युक्त होता है। एक वणिक् पुत्र अपनी बुद्धि के बल से मृत मूषक-विक्रय से एक सम्पत्तिशाली सेठ बन गया। चूहे से धनी बने सेठ की कथा अत्यन्त ही रोचक है- सामान्य लिपि ज्ञान और गणित की शिक्षा दिलाने के पश्चात् माता ने अपने एकमात्र पुत्र से कहा- बेटा, बनिये के बालक हो, व्यापार करो। इस नगर मे विशाखिल नामक एक धनी व्यापारी बनिया है। कुलीन घर के दरिद्रजनों को वह व्यापार के लिए सामान देता है, अत: तुम उसी के पास जाओ और मांगो। 'बनिया-पुत्र गया। उस समय विशाखिल सेठ ने उस बनिये के लड़के से कहा- भूमि पर एक मरा चूहा पड़ा है, चतुर बनिया हो तो इस सौदे से भी धन कमा सकता है। वणिक् पुत्र ने मृत मूषक ले लिया। मूषक को उठाकर एक डिब्बे में रखा और सेठ की बही में लिख दिया। दो अंजुली चने लेकर उसने मृत मूषक को एक सेठ की भूखी बिल्ली के भोजनार्थ दे दिया। चने को भुनाकर उसने एक घड़ा पानी के साथ नगर से बाहर चौराहे पर अड्डा जमा लिया। वह लकड़ी का बोझ लेकर जाने वाले मजदूरों को चना देकर पानी पिलाता और उनसे एक-एक, दो-दो लकड़ी मांगता। इस प्रकार कुछ दिन में उसके पास एक गट्ठर लकड़िया संचित हो गयी। दैवयोग से लकडिया बिक गयी। उस धन से उसने दो-

तीन, कई लकड़हारों से लकड़ी खरीदकर संचित कर लिया। वर्षाकाल में लकड़ियो का जंगल से आना बन्द हो गया। उसकी लकड़ियॉ अधिक दाम पर बिक गयी। उस धन से दुकान स्थापित कर व्यापार से प्रभूत धन अर्जित किया। वह अति सम्पत्तिशाली सेठ बन गया, और सेठ विशाखिल को सोने का मूषक बनाकर भेंट किया।[२१]

आलोच्य ग्रन्थ में यत्र-तत्र व्यापारियों की बुद्धिमता और मूर्खता की भी रोचक कथाएँ मिलती हैं। एक वैश्य पर्याप्त सामान लेकर धनार्जन के लिए कटाह द्वीप गया। वहाँ उसके सामान की बिक्री हुई और उसने धन प्राप्त किया। सामानों मे उसके पास पर्याप्त मात्रा में अंगरू की लकड़ियां भी थी। वहॉ के निवासी अगरु के महत्व के अनभिज्ञ रहे, परिणामत: किसी ने क्रय नहीं किया, वैश्यपुत्र ने अगरु की सारी लकड़ी जला दिया, कोयला बन गया। अब उसने कोयला बेंचकर सन्तोष किया। यह उसकी निरी मूर्खता रही। कटाह-द्वीप वासियों द्वारा लकड़हारों से कोयला क्रय करते देख उस वैश्य ने अगंरु की लकड़ी को जलाकर कोयला के भाव बेंच दिया। वापस आकर मित्रों से बताया तो उसका परिहास हुआ।[२२] एक रूई का व्यापारी था। वह भी पर्याप्त मात्रा में रूई लेकर बेंचने गया। खरीददारों ने यह कहकर कि रूई अच्छी नही है, खरीदा ही नही। वहीं एक सुनार सोने को आग में तपाकर बेंच रहा था। बनिए ने देखा और सोचा- क्यों न मैं भी रूई को आग मे तपाकर शुद्ध करु, फिर बेंचू। निश्चय ही मेरी शुद्ध रुई बिक जायेगी। उसने सारी रूई आग में झोंक दी।[२३] लघु व्यापारी अगरु, रूई, वस्त्र आदि के विक्रय से धनार्जन

करते थे।[२४] वणिक वर्ग में से ही कुछ जौहरी का काम भी करते थे। रत्न परीक्षण उनका मुख्य व्यवसाय था। कनकपुरी और शक्तिदेव के आख्यान मे रत्न परीक्षण का उल्लेख हुआ है - शिव और माधव दोनों ने परस्पर परामर्श करके पुरोहित का सम्पूर्ण धन हड़प लिया और स्वतंत्र रूप से ससुख रहने लगे। कालोपरान्त पुरोहित कुछ रत्न और आभूषण लेकर जौहरी के यहॉ बेचने गया। वहॉ वह हाथ का एक कंकण बेचने लगा। रत्न परीक्षण करने वाले जौहरियों ने उसके परिक्षणोंपरान्त पुरोहित से कहा- इस नकली माल का निर्माण करने वाला चतुर कौन है? विविध रंगों से रंगे कांच के टुकड़ो तथा स्फटिक खण्ड को पीतल में इस दक्षता से जड़ दिया गया है कि वे असली रत्न प्रतीत हो रहे हैं। यह सुन घबराया हुआ पुरोहित सभी आभूषण लेकर माधव को दिखाने के लिए गया। माधव ने कहा- ये नकली आभूषण सब तुम्हारें नकली आभूषण हैं।असली आभूषण पहले ही अलग कर लिया और नकली आभूषण रख दिये हो।[२५] समुद्रदन्त वैश्य की कथा से संकेत मिलता है कि उस समय वणिक् स्त्रियॉ भी पुरुषवेश में समुद्र की यात्राएँ करती था- एकान्त में अपनी सास से अपने पति की रक्षा करने का वचन देकर देवस्मिता में अपनी सखियों के साथ वणिक् व्यापारियों के सदृश वेष बनाया। व्यापार करने के बहाने जहाज पर सवार होकर कटाह द्वीप के तट पर उतरी। उसका पति वहीं रूका हुआ था। कटाहद्वीप में जौहरी बाजार में व्यापारियों के मध्य स्थित मूर्तिमान धैर्य के समान उसने अपने पति को देखा। उसका पति गुप्तसेन पुरुष वेषधारिणी अपनी भार्या को पहचान न

सका किन्तु शक अवश्य हुआ- यह उसी के सदृश कौन है।[२६] ग्रन्थ मे आख्यानान्तर्गत संदर्भित वणिक् की कथाएँ हमें तत्कालीन वाणिज्य-व्यापार की एक स्थिति का समुचित ज्ञान कराते है। आधुनिक काल की ही भांति उस समय भी सेठों, बनियों के यहाॅ हिसाब रखने के लिए 'बही' होती थी- ऐसा कहकर मैंने उस मूषक को उठाकर एक डिब्बे मे रखा और उस सेठ की बही में लिख दिया।[२७]

व्यापार के लिए प्रस्थान के पूर्व वणिक् मुहूर्त और शकुन-अपशकुन पर भी विचार करते थे। कथासरित्सागर में कतिपय अंकन प्राप्त होते हैं। श्रृंगाली का रूदन अपशकुन् माना जाता था और आज भी मान्य है। उस काल में भी वैश्य व्यापारी वाणिज्यर्थ प्रस्थान काल में इसका ध्यान रखते थे। कीर्ति सेना के आख्यान में सन्दर्भ है कि विश्रामोंपरान्त पुर्नप्रस्थानकाल मे श्रृंगाली ने अपशकुन कर दिया जिसका परिणाम हानि प्रद रहा। विश्राम के अनन्तर वणिक् दल वन प्रान्तर के मोड़ पर रुका उसी समय यमराज के दूति के समान एक श्रृंगाली ने भयंकर रूप से रोना प्रारम्भ कर दिया। अपशकुन को जानकर वैश्य व्यापारी चोर लुटेरों के भय की शंका से सजग हो गये रक्षक दल के सैनिक सन्नद्धसनन्ध्य हो गये। अन्धकार पूर्ण वातावरण में सभी चारों ओर फैल गये।[२८] भली भाँति सावधान और रक्षा के पश्चात् वणिक् दल आगे की यात्रा पर अग्रसर हुआ परन्तु अपशकुन् अपना प्रभाव कब नहीं छोड़ता है? व्यापारियों पर विपत्ति आनी ही थी। अर्धरात्रिकाल में लुटेरों के एक विशाल दल ने व्यापारियों को घेर लिया। भीषण वर्षाकाल सदृश युद्ध हुआ

कोलाहल करते हुए डाकू काले बादल के समान मालूम पड़ रहे थे। शस्त्रो के संघर्ष से निकलती अग्नि बिजली का काम कर रही थी। भीषण मारकाट के कारण रुधिर की घोर वर्षा सी प्रारम्भ हो गयी। लूटेरे समुद्रसेन व्यापारी को मारकर उसका समस्त धन लूट ले गये।[२९] वणिक् व्यापारी के समस्त कार्यकलाप मात्र धनार्जन- हेतु होता था, तदर्थ वह उचित-अनुचित, संगत-असंगत सभी साधन अथवा माध्यम का आश्रय स्वीकार लेता था। लोभ उसका प्रकृत गुण है। एक व्यापारी दल समुद्र मे यात्रा कर रहा था। मार्ग में एक स्थान पर उनका जहाज समुद्र में फॅस गया। व्यापारी और सार्थवाह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। दल में एक विदूषक नामक ब्राह्मण भी था। जहाज फॅसने पर बनियों ने रत्नो से पूजन कर समुद्र से प्रार्थना भी की किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। तब बनिया ने आर्त स्वर में कहा- इस फॅसे हुए जहाज को जो भी छुड़ा दे, उसे मैं अपना धन और अपनी कन्या दे दूँगा। यह सुनकर साहसी विदूषक ने कहा- मैं जल में उतर कर पता लगाऊँगा। आप लोग मुझे रस्सी से बाँधो और ऊपर से पकड़े रहो। जब जहाज चल पड़े तो ऊपर खींच लेना। वह समुद्र में नीचे उतरा। उसके हाथ में तलवार थी। समुद्र तल में विशालकाय पुरुष सो रहा था। उसी की जांघ में जहाज फँस गया था। विदूषक ने उसकी जांघ तलवार से काट दी और इस प्रकार जहाज चल पड़ा। बनिये को धन देना पड़ेगा यह सोचकर धनलोभ में रस्सियाँ काट दी और स्वयं समुद्र पार हो गया तथा विदूषक समुद्र में ही गिर गया।[३०]

कथासरित्सागर के आख्यानो का अध्ययन संदर्शित करता है उस काल मे व्यापार का राष्ट्रीय ही नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप भी था। अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य समुद्र मार्ग से और राष्ट्रीय व्यापार स्थल मार्ग द्वारा होता था। भारतीय व्यापार दोनो ही मार्गो से समानतः उन्नतिशील था। स्थल मार्ग उत्तरापथ और दक्षिणापथ नाम से प्रख्यात रहे। उत्तरापथ मार्ग विशेष स्थान रखता था। इसी मार्ग पर ताम्रलिप्ति के बन्दरगाह से लगाकर उत्तर पश्चिम मे पुष्कलावती तक चला जाता था। इस महापथ में पुष्कलावती, ताम्रलिप्ति भाग पर तक्षशिला, शाकल, हस्तिनापुर, कान्यकुब्ज, प्रयाग, वाराणसी, वैशाली, गया, राजगृह, पाटलिपुत्र तथा चम्पा आदि भारत के सुप्रसिद्ध नगर थे। जिनमें भारत के अनेक राजवंशों की राजधानियाँ समय -समय पर प्रतिष्ठित हुई थी।[३१] उत्तरापथ मार्ग द्वारा व्यापारी दल के प्रस्थान और वाणिज्य दल के प्रस्थान और वाणिज्य करने का सन्दर्भ कथासरित्सागर में अंकित है- गुहसेन व्यापार-निमित्त कटाहद्वीप की ओर प्रस्थान किया। कटाहद्वीप पहुँच जाने पर उसने अपने रत्नों को बेचनें का कार्य प्रारम्भ कर दिया। उसके हाथ में एक विकसित कमल था। यह देखकर अन्य वैश्य पुत्र विस्मित हो गये तथा गुहसेन को अपने घर ले गये। मदिरा पान करा कर सारा वृतान्त जान लिया। वैश्य पुत्रों को परिव्राजिका मिली। उसने अपनी एक सिद्धिकरी नाम की शिष्या का सन्दर्भ दिया और कहा कि उसकी कृपा से मुझे प्रभूत धन प्राप्त हुआ है। वैश्य पुत्रों ने कहा- अपनी शिष्या की कृपा से आपको प्रचुर मात्रा में धन की प्राप्ति हुई कैसे? परिव्राजिका ने बताया- सुनने की अभिलाषा

है तो सुनो- एकबार उत्तरापथ से कोई बनिया यहाँ आया था। एक अन्य आख्यान द्रष्टव्य है- 'निश्चय दत्त एवं अनुरागपरा में वर्णन से भी उत्तरापथ स्थल मार्ग का ज्ञान हमें प्राप्त होता है- उस कामपीड़ित वैश्य ने एकदिन किसी प्रकार व्यतीत करने के उपरान्त प्रात:काल उठकर तत्काल उत्तर दिशा की ओर प्रस्थित हो गया। जाते हुए उसे मार्ग मे तीन बनिया सहयात्री मिल गये जो उत्तरापथ की ओर जा रहे थे।[३२]

वणिक् जन सामान्यत: अर्थलोलूप होते है। कथासरित्सागर का व्यापारी धनार्जन करने के लिए अनुचित माध्यम यहाँ तक कि मध्यस्थ (दलाल) का भी उपयोग करता अंकित किया गया है।[३३] अर्थलोभ वश अपने सहायक हितैषी के संग भी धोखा, छल-छद्म करना अपना धर्म मानता था। अपनी भार्या तक को भी माध्यम ही नहीं अपितु अर्थलाभ के लिए प्रयोग किया करते थे। यहाँ तक कि धन वस्त्र की प्राप्ति निमित्त दूसरे व्यापारी के हाथों उसे विक्रय कर देते थे।[३४] उसके लिए धन ही जीवन है, उसका धन उनके निज सुख-विलास के लिए ही होता रहा। आलोच्य ग्रन्थ में ऐसे सन्दर्भों के अंकन बहुसंख्यक है इसका अर्थ यह कथमपि नहीं है कि व्यापारी, वणिक्, वैश्य अथवा बनिया में औदार्य, संवेदना, सदाशयता का लेश ही नहीं होता था। उदार संवेदनशील चरित्र एक वैश्य की कथा द्रष्टव्य है- लम्पा नामक एक सुन्दर नगरी मे एक कुसुमसार नामक एक धनिक वैश्य रहता था। अपना वृतांत युवराज नरवाहन दत्त को बताते हुए उसका पुत्र कहता है- मैं उसी परम धार्मिक वैश्य का चन्द्रसार नामक पुत्र हुँ। मैं उसे शंकर की

आराधना के फलस्वरूप प्राप्त हुआ था। एक बार मै मित्रगण-संग देवयात्रा के लिए गया था। वहाँ मैने भिक्षुको को धनिक बनियो से धन मांगते हुए देखा। मेरे मन मे दान देने की श्रद्धा वश धन उपार्जित करने की इच्छा बलवती हुई। मैं पिता द्वारा उपार्जित अतुल धन-लक्ष्मी से संतुष्ट न था। इस कारण मैं समुद्र मार्ग से जाकर अन्य द्वीपों में वाणिज्य करके धनार्जन करने का विचार किया। विविध रत्नों से भरी नाव पर सवार होकर व्यापारिक यात्रा किया। देव तथा वायु की अनुकूलता के कारण मेरी नाव कतिपय देशो के अन्तराल में निर्दिष्ट द्वीप पर पहुँच गयी। मेरे जवाहरात की धूम देखकर उस द्वीप के नृप ने, मुझे ठग, अविश्वासी समझकर, धन के लोभ मे बाँध कर कारागार में डाल दिया।[३५] सभी वणिक् व्यापार के उत्कट अभिलाषी थे।

कर तथा राजस्व

वर्ण व्यवस्था समाज-संगठन की आधारभूमि है तदनुसार द्वितीय वर्ण क्षत्रिय का प्रमुख धर्म वर्ण-व्यवस्था को संरक्षित रखना और राष्ट्र की सुरक्षा करना था। क्षत्रिय नृप का धर्म प्रजा पालन होता है। धर्म शास्त्रकारों ने राजा को अधिकार दिया है कि वह राज व्यवस्था के संचालनार्थ कर भी लगाये- राजा अपने विश्वस्त कर्मचारियों द्वारा प्रजा से वार्षिक कर का संग्रह करे। उसे लोक में वेदानुसार व्यवहृत करे। अर्थात् कर आदि ले किन्तु निज प्रजा संग पितृ-सम व्यवहार अवश्य करे। खरीदने और बेचने का मूल्य, मार्ग,

भोजन तथा रक्षा का व्यय एवं लाभ इसका हिसाब करके व्यापारी से कर लेना चाहिए।[३६] इस राज धर्म का अंकन कथासरित्सागर में भी मिलता है। व्यापारियों के रक्षण, उनके धनादि की लुटेरों से संरक्षित रखने के शुल्क स्वरूप उस काल मे कर-राजस्व ग्रहण होते थे। कतिपय व्यापारी इसे न देना पड़े ऐसा भी प्रयास करते थे। मार्ग शुल्क प्रत्येक मार्ग पर प्रत्येक व्यापारी के लिए अनिवार्यत: देय था। कदाचित् कुछ मार्ग ऐसे भी थे जो वाणिज्य की दृष्टि से लाभकर थे किन्तु शुल्क की दृष्टि से अलाभकर थे। इस कारण व्यापारियों का दल कम देय शुल्क वाले मार्ग का अनुसरण करने के निमित्त प्रयास करता था- व्यापारी वैश्यो का दल मार्ग शुल्क अथवा चुंगी कर के आधिक्य से बचने की दृष्टि से उस मार्ग को त्याग, दूसरे वन प्रान्तर वाले मार्ग पर अग्रसर होकर उस गतिशील मार्ग का अनुसरण किया। जो अधिकाधिक गमनागमन पूर्ण रहा।[३७] तत्कालीन व्यापारिक मार्ग अबाध पूर्ण न थे। व्यापारी दल क्षण-प्रतिक्षण चोर-लूटेरों के आक्रमण से आशंकित रहता था, वह ऐसा मार्ग चुनता था जो ऐसी आपत्तियों से रहित, सुरक्षित हो साथ ही साथ उस प्रान्तर का शासक अथवा राजा उनकी सुरक्षा पर ध्यान देता हो। राजा व्यापारियो से कर ग्रहण करता, उसके बदले में उनकी सुरक्षा का दायित्व भी निर्वहन करता था। कथासरित्सागर के एक अंकन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है- उस भैरव ने मेरा नाम गोत्र पूंछकर मुझे अनुमति दिया। हे भयंकरि! तुम खरदूषण के वंश में उत्पन्न हुई हो तथा कुलीन भी हो, इसलिए समीपस्थ वसुदत्तपुर की ओर जाओ वहाँ का नृप वसुदत्त अत्यन्त

धर्मप्रवण और प्रजापालक है। वह वहीं जंगल के निकट निवसता है और पूरे प्रान्तर की सुरक्षा-व्यवस्था भी सुदृढ़ रखता है। मार्ग शुल्क अवश्य ग्रहण करता है परन्तु चोर लुटेरो का निग्रहण करना भी अपना कर्तव्य मानता है।[३८] कथासरित्सागर का एक और अंकन इस प्रकार द्रष्टव्य है- वह जंगल के छोर पर रहकर अत्यन्त अल्प मार्ग शुल्क ग्रहण करके इस मार्ग से जाने वालो की रक्षा भी करता है। जिसके परिणामस्वरूप अधिकतर व्यापारियों का दल उसी रास्ते जाना हितकर समझता है।[३९]

कथासरित्सागर में वर्णित समाज सुसम्पन्न रहा समाज के लोगो का जीवन स्तर सुखमय था। वाणिज्य-व्यापार राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समुन्नत था। व्यापार करने वाले वणिक् धन धान्य, वस्त्र, आभूषण, छत्र, जवाहर, अश्व, अगरू आदि लकड़ी एवं सामान्य जनों के उपयोग के वस्तुओं तूल आदि का क्रय-विक्रय करते थे। स्वर्ण तथा स्वर्णनिर्मित आभूषणों का भी व्यापार एक वर्ग विशेष करता था जिसे कथासरित्सागर मे जौहरी नाम से अभिहित किया गया है। अश्वादि का भी व्यापार कथासरित्सागार में बहुश: संदर्भित है। व्यापार में विनिमय-मुद्राये भी विविध प्रकार की प्रचलन में थी। जिनमें प्रमुखत: दीनार, मोहर, स्वर्ण मुद्रा, सिक्के, कार्षापण, कपर्दक आदि का उल्लेख ग्रन्थ में संकलित आख्यान-क्रम में प्राप्त होते हैं- एक हाथ से माल खरीदकर, तत्काल दूसरे के हाथ विक्रय कर दिया, इस प्रकार बिना धन लगाये ही मध्यस्थ रूप में ही दीनार अर्जित कर लिया। मात्र इतने बड़े कुटुम्ब के लिए उसने राजा से पाँच सौ दीनार प्रतिदिन का वेतन मांगा।[४०]

दीनार का ही अपरनाम कदाचित् मोहर ही व्यवहृत होता था- राजा ने उसके पीछे गुप्तचर लगा दिये- देखो यह दो हाथों वाला इनती मुहरो को कैसे खर्च करता है? उस वीरवर ने पाँच सौ मुहरों में से एक सौ मुहरो से अपने भोजनादि के प्रबन्धन-हेतु अपनी पत्नी को देता, एक सौ से कपड़े, मालायें आदि क्रय करता, एक सौ मुहरे स्नानोपरान्त विष्णु, शिव आदि के पूजन में व्यय करता था, शेष दो सौ मुहरे प्रतिदिन ब्राह्मण एवं भिक्षुओं को दान में दे देता। इस प्रकार वह पाँच सौ मुहरें प्रतिदिन व्यय कर देता था।[४१] ठिण्ठाकराल नामक उज्जयिनी का द्यूतकार प्रतिदिन हार जाता था। जीते हुए द्यूतकार उसे एक सौ कपर्दक दिया करते थे।[४२]

कथासरित्सागर के अनुशीलन से यह भी संकेत मिलता है कि उस काल तक म्लेच्छ, ताजिक अथवा तुरुष्क (तुर्क) भी व्यापारियो के मार्ग में विपत्ति के कारण बनते रहे। निश्चय दत्त और अनुरागपता के आख्यान में व्यापारियों को पकड़कर दामो में दूसरो के हाथ बेंच देने का सन्दर्भ कथासरित्सागर में प्राप्त होता है- वहाँ पर वह उन यात्रियों के साथ ताजिक (म्लेच्छों) लोगों से पकड़ा जाकर दूसरे ताजिक के हाथ दामों में बेच दिया गया। उसने भी उन चारों को खरीदकर नौकर के हाथों उपहार स्वरूप मुरवार नामक तुर्क के पास भिजवा दिया जब उस ताजिक के और उन तीनों के साथ निश्चयदत्त को लेकर मुरवार के पास पहुँचे वह मर चुका था। अत: उन्हें उसके पुत्र को सौंप दिया। उस तुर्क के पुत्र ने 'यह मेरे मित्र ने पिता के लिए उपहार स्वरूप भेजा है अत: इन्हें

कल प्रात: उन्ही के पास कब्र मे गाड़ दिया जाये' कहा तथा उन्हे कसकर बॉधा फिर एक तरफ रख दिया।[४३] ऐसी स्थिति देखकर निश्चयदत्त देवी भगवती की स्तुति करने लगा। स्तुति करते-करते वह सो गया। स्वप्न मे उसे सुनायी पड़ा- उठो तुम्हारे बन्धन कट गये हैं। मार्ग उन साथियों ने निश्चयदत्त से कहा- म्लेच्छो से आक्रान्त उत्तर दिशा को छोड़ो, दक्षिणापथ ही अच्छा है। और इस प्रकार निश्चयदत्त उत्तरापथ की ओर गया।[४४]

कथासरित्सागर के आख्यानों में घटनानुक्रमान्तर्गत सन्दर्भो के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि तत्कालीन समाज में जनजीवन सामान्यत: सहज ही रहा। लोग अपनी जीविकोपार्जन-निमित्त चित्र निर्माण, मूर्ति-उट्टंकण, काष्ठ-कला, गार्हस्थ्य जीवन के उपयोग में आने वाली वस्तुओं जैसे डोलची और काष्ठपुत्तलिकायें भी बनाते थे। अहिर अथवा ग्वाले गाय पालन करते हुए उनसे दूध प्राप्त करते थे। कथासरित्सागर मे दुग्ध विक्रय करने का उल्लेख भी वही प्राप्त होता है। कृषि का सन्दर्भ यत्र-तत्र है परन्तु कृषि का सांगोपांग विवरण नही मिलता। वणिक् जन राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में संलग्न रहते थे और इस प्रकार सम्पूर्ण वृहत्तर भारत उनके लिए व्यापारिक क्षेत्र सदृश था। विक्रय वस्तुओं में स्वर्ण, रत्न, जवाहरात, स्वर्णाभूषण, अगरू, तूल आदि थीं। वस्त्र और अश्वों का भी क्रय-विक्रय होता था। उस समय उत्तरापथ और दक्षिणापथ दो विशेष व्यापारिक मार्ग थे। व्यापार विनिमय में दीनार, मुहर, कर्पदक आदि का प्रचलन था। कथासरित्सागर कालीन समाज की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ तो थी लेकिन अस्त-व्यस्त भी थी।

सन्दर्भ एवं पाद-टिप्पणी

१. केनापि रजकेनैत्य गर्दभः पुष्टये कृशः।
परसस्येषु मुक्तोऽभूदाच्छाद्य द्वीपिचर्मणा।।

स तानि खादन् द्वीपीति जनैस्त्रासात्र वारितः।
एकेन ददृशे जातु कार्षिकेण धनुर्भृता।। - कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरंग ६/१९-२०

२. स कदाचित्तिलान् भृष्टान्भुक्त्वा स्वादूनवेत्य तान् ।
भृष्टानेवावपद् भूरीस्तादृशोत्पत्तिवाञ्छया।। - कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरंग ५/८

३. तत्क्षणं च क्षुधाक्रान्त शाकवाटेऽवतीर्य स।
तत्र सुन्दरकश्चक्रे वृत्तिमुत्खातमूलकैः।। - कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरंग ६/१४३

४. गच्छंश्च तत्र कलकूजितराजहंसमच्छं सुधासरसशीतलभूरिवारि।
आम्रावलीपनसदाडिमरम्यरोधः सायं सरो विकचवारिजमाससाद।।

कथासरित्सागर/लम्बक ७/तरंग ८/२२४

५. गोपालकान्स पप्रच्छ ततस्तेऽप्येवमब्रुवन्।।

देव! गोपालका भूत्वा क्रीडामो विजने वयम् ।
तत्रैका देवसेनाख्यो मध्ये गोपालकोऽस्ति नः।।

एकादेशे च सोऽटव्यामुपविष्टः शिलासने।
राजा युष्माकमस्तीति वक्त्यस्माननुशआस्ति च।।

अस्मन्मध्ये च केनापि तस्याज्ञा न विलङ् घ्यते।
एवं गोपालकोऽरण्ये राज्यं स कुरुते प्रभोः।। - कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरंग ४/३०-३३

६. यद्येवमतिथिस्तेऽहं स्ववेषं देह्यमुं मम।
यावत् त्वमिव तत्राद्य याम्यहं कौतूकं हि मे।।

एवं कुरु गृहाणेमं मदीयं कालकम्बलम् ।
लगुडं चास्व चैवेह तद्दासी यावदेष्यति।। - कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरंग ८/१७-१८

७. सा च तस्यान्वहं धेनुः पयःपलशतं ददौ।
कदाचिच्चाभवत्तस्य प्रत्यासन्नः किलोत्सवः।।

एकवारं ग्रहीष्यामि पयोऽस्याः प्राज्येमुत्सवे।
इति मूर्खः स नैवैतां मासमात्रं दुदोह गाम् ।।

प्राप्तोत्सवश्च यावत्तां दोग्धि तावत्पयोऽखिलम् ।
तत्तस्याश्छिन्नमच्छिन्नं लोकस्य हसितं त्वभूत।। - कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरंग ५/४५-४७

८ ततः सोमप्रभा प्रातस्तद्विनोदोपपादिनीम्।
न्यस्तदारुमयानेकमायासद्यन्त्रपुत्रिकान्।।

करण्डिकां समादाय सा नभस्तलचारिणी।
तस्याः कलिङ्गसेनाया निकट पुनराययौ।। -कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरंग ३/१-२

९. इति देवस्मिता श्वश्रूं रह उक्त्वा तपस्विनी।
स्वचेटिकाभि· सहिता वणिग्वेषं चकार सा।।

आरुह्य च प्रवहणं वणिज्याव्याजतस्ततः।
कटाहद्वीपमगमद्यत्र सोऽस्याः पतिः स्थितः।। - कथासरित्सागर/लम्बक २/तरंग ५/१७९-१८०

१०. रोलदेवाभिधानेन सिंहद्वारेऽत्र तेन च।
एतद्देवाभिलिख्याद्य चीरिकोल्लम्बिता किल।।

तच्छ्रुत्वैवादराद् भूपेनादिष्टानयनं स तम् ।
आनिनाय प्रतीहारो गत्वा चित्रकर क्षणात् ।।

स प्रविश्य ददर्शात्र चित्रालोकनलीलया।
स्थितं कनकवर्ष तं नृपं चित्रकारो रहः।।

वरनारीकुचासङ्गसमर्पिततनूभरम् ।
सहेलोदञ्चितकरोपात्तताम्बूलवीटिकम्।।

प्रणम्य चोपविष्टस्यं राजानं विहितादरम्।
शनैर्विज्ञापयामास रोलदेवः स चित्रकृत् ।।

चीरिकोल्लम्बिता देव त्वत्पादाब्जदिदृक्षया।
मया न विज्ञानमदात् तत्क्षन्तव्यमिदं मम।।

आदिश्यतां च चित्रे किमालिखामीह रूपकम्।
भवत्वेत्कलाशिक्षायत्नो से सफलः प्रभो।।

इति चित्रकरेणोक्ते स राजा निजगाद तम्।
उपाध्याय यथाकामं किञ्चिदालिख्यतां त्वया।।

ह्लादयमो वयं चक्षुर्भ्रान्तिस्त्वत्कौशले तु का।
इत्युक्ते तेन राज्ञाऽत्र तत्पार्श्वस्था बभाषिरे।।

राजैवालिख्यतामन्यैर्विरूपैः किं प्रयोजनम्।
तच्छ्रुत्वा चित्रकृत्तुष्टः स तं राजानमालिखत्।।

तुङ्गेन नासावंशेन दीघरक्तेन चक्षुषा।
विपुलेन ललाटेन कुन्तलै. कुञ्चितासितै:।।

- इत्यादि कथासग्न्सागर/लम्व्रक ९/तरंग ५/३७-४७

११ तेन स्तम्भ. स सुश्लक्ष्ण: कालेनाभवदेकत.।
अथागाच्चित्रकृत्तेन पथा रूपकृता सह।।

ततस्तयोर्गतवतोर्महाकालार्चनागता।
विद्याधरसुतैकात्र स्तम्भे देवी ददर्श ताम्।। - कथासरित्सागर/लम्बक ७/तरंग ३/८-९

१२. नगरे क्वापि केनापि वणिजा देवतागृहम्।
कर्तुमारब्धमभवद् भूरिसम्भृतदारुकम्।।

तत्र कर्मकरा: काष्ठं क्रकचोर्ध्वार्धताटितम्।
दत्तान्त:कीलयन्त्रं ते स्थापयित्वा गृहं यय:।।

- कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरंग ४/२७-२८

१३. पञ्चपट्टिकनामाहं शूद्रो विज्ञानमस्ति मे।
व्यामि प्रत्यहं पञ्च पट्टिकायुगलानि च।।

तेभ्य एकं प्रयच्छामि ब्राह्मणाय ददामि च।
द्वितीयं परमेशाय तृतीयं च वसे स्वयम्।।

चतुर्थ मे भवेद् भार्या यदि तस्यै ददामि तत्।
शरीरयात्रां विक्रीय पञ्चमेन करोम्यहम्।। - कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरंग २/९९-१०१

१४. तेऽप्येवं दर्शनप्रीता: पृष्टवन्तं तमब्रुवन्।
अस्ति मध्ये महाम्भोधे: श्रीमद्द्वीपवरं महत्।।

यन्नारिकेलद्वीपाख्यं ख्यातं जगति सुन्दरम्।
तत्र सन्ति च चत्वार: पर्वता दिव्यभूमय:।।

मैनाको व्रभश्चक्रो बलाहक इति स्मृता:।
चतुर्षु तेषु चत्वारो निवसाम इमे वयम्।।

- कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरंग ४/१४-१६

तच्छ्रुत्वा स ततो विप्रो वणिजा दानवर्मणा।
पोतेन गच्छता साकं कटाहद्वीपमभ्यगात्।।

तत्रापि स द्विजोऽश्रौषीद् गतं तं वणिजं तत:।
द्वीपात् कनकवर्माणं द्वीपं कर्पूरसंज्ञकम्।।

एवं क्रमेण कर्पूरसुवर्णद्वीपसिंहलान्।
वणिग्भिश्च सह गत्वापि तं प्राप वणिजं न स:।।

- कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरंग ६/५६-६२

१६ आरुह्य देवपुत्रैस्ते साकं कृतनिमन्त्रणै।
नारिकेलमगद्द्वीपं देवैश्चैव कृतस्पृह ।।

तत्र तैरर्चितो रूपसिद्धिप्रभृतिभि. कृती।
चतुर्भिर्दिव्यपुरुषै: शक्रसारथिना युत:।।

मैनाकवृषभाद्येषु तन्निवासाद्रिषु क्रमात्।
अप्सरोभि: समं ताभि: स्वर्गस्पर्धिष्वरंस्त स:।।

- कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरंग ४/४९-५१

१७. स वणिज्यावशाद् गच्छन् सुवर्णद्वीपमेकदा।
आरुरोह प्रवहणं तटं प्राप्य महाम्बुधे:।।

गच्छतस्तस्य तेनाब्धौ किञ्चिच्छेषे तदध्वनि।
घोर: समुदभून्मेघो वायुश्च क्षोभितार्णव:।।

तेनोर्मिगविक्षिप्ते वहने मकराहते।
भग्ने परिकरं बद्ध्वा सोऽम्बुधावपतद्वणिक्।।

यावच्च बाहुविक्षेपैर्वीरोऽत्र तरति क्षणम्।
तावच्चिरमृतं पृराप पुरुषं पवनेरितम्।।

तदारूढश्च बाहुभ्या क्षिप्ताम्बुर्विधिनैव स:।
नीत: सुवर्णद्वीपं तदनुकूलेन वायुना।।

- कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरंग ४/१००-१०४

तत्रावतीर्ण: पुलिने स तस्मान्मृतमानुषात्।
कटीनिबद्धं सग्रन्थिं तस्यावैक्षत शाटकम्।।

उन्मुच्य वीक्षते यावच्छाटकं कटितोऽस्य तत्।
तावत्तदन्तराद्दिव्यं रत्नाढ्यं प्राप कण्ठकम्।।

तं दृष्ट्वानर्घमादाय कृतस्नानस्तुतोष स:।
मन्वानोऽधौ विनष्टं तद्धनं तस्याग्रतस्तृणम्।। - वही/१०५-१०७

१८. समुद्रशूरो न्यग्रोधमारूढोऽभूदलक्षित:।।

हताशेषधने याते चौरसैन्ये भयाकुलं:

तत्रैव तां तरौ रात्रिं दुःखार्त्तश्च निनाय सः।।

प्रातस्तस्य तरो. पृष्ठे गतदृष्टिः स दैवतः।
दीपप्रभामिवापश्यत्स्फुरन्ती पत्रमध्यगाम्।।

विस्मयात्तत्र चारूढो गृध्रनीढमवैक्षत।
अन्तःस्थभास्वरानर्घरत्नाभरणसञ्चयम्।।

जग्राह तस्मात्सर्वं तत्तन्मध्ये प्राप कण्ठकम्।
तं स यं प्राप्तवान् स्वर्णद्वीपे गृध्रेऽहरच्च यम्।।

ततः प्राप्तामितधनो न्यग्रोधादवरुह्य सः।
हृष्टो गच्छन् क्रमात् प्राप निजं हर्षपुरं पुरम्।।

- कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरंग ४/१२५-१३०

१९. गजाश्वरत्नवस्त्रादिविक्रयं यं व्यधत्त सा।
तं तं सोपचयं दृष्ट्वा सोऽर्थलोभोऽन्वमोदत।।

एकदा चात्र कोऽप्यागाद् दूराद्देसान्तराद्वणिक् ।
महान्सुखधनो नाम प्रभूताश्वादिभाण्डधृत्।।

तं बुद्ध्वैवागतमं भार्यामर्थलोभोऽब्रवीत्स ताम् ।
बणिक्सुखधनो नाम प्राप्तो देशान्तरादिह।।

प्रिये वाजिसहस्राणि तेनानीतानि विंशति.।
चीनदेशजसद्वस्त्रयुग्मान्यगणनानि च।।

तद्गत्वाश्वसहस्राणि पञ्च तस्मात्त्वमानय।
क्रीत्वा सद्वस्त्रयुग्मानां सहस्राणि तथा दश।।

यावदश्वसहस्रैः स्वैस्तथा तैश्चापि चञ्चभिः।
करोमि दर्शनं राज्ञो वणिज्यां विदधामि च।।

एवमुक्त्वार्थलोभेन प्रेषिता तेन पाप्मना ।
आगान्मानपरा तस्य पार्श्वं सुखधनस्य सा।।

मार्गति स्म च मूल्येन तान्वस्त्रसहितान्हयान्।
चितस्वागतात्तस्मात्तद्रूपाहृतचक्षुषः।।

स च तां कामविवशो नीत्वैकान्तेऽब्रवीद्वणिक्।
मूल्येन वस्त्रमेकं ते हयं वा न ददाम्यहम्।।

वत्स्यस्येकां निशां साकं मया चेत्तद्ददामि ते।
शतानि वाजिनां पञ्च सहस्राणि च वाससाम्।।

इत्युक्त्वा सोऽधिकेनापि तां प्रार्थयत सुन्दरीम्।
स्त्रीष्वनर्गलचेष्टासु कस्येच्छा नोपजायते।।

ततः सा प्रत्यवोचत्तमेवं पृच्छाम्यहं पतिम्।

अत्रापि हि स जाने मां प्रेयेदतिलोभत:।।

इत्युक्त्वा स्वगृहं गत्वा पत्यै तस्मै तदब्रवीत्।
यदुक्ता तेन वणिजा रह: सुखधनेन सा।।

सोऽथ पापोऽर्थलोभस्तां कीनाश: पतिरब्रवीत्।
प्रिये वस्त्रसहस्राणि पञ्च वाजिशतानि च।।

एकया यदि लभ्यन्ते रात्र्या दोषस्तदत्र क:।
तद्गच्छ पार्श्वं तस्याद्य प्रभाते द्रुतमेष्यसि।। - कथासरित्सागर/लम्बक ७/तरग ९, ७२-८६

२०. आनाययच्च भृत्यैस्तद् गृहीत्वा प्रविलोक्य च।
वैद्यं तरुणचन्द्रं तं जगाद निकटस्थितम्।।

नदीतीरेण गच्छ त्वमुपरिष्टादितोऽमुना।
उत्पत्तिस्थानमेतेषां पङ्कजानां गवेषय।। - कथासरित्सागर/लम्बक ७/तरंग ६/८५-८६

२१. वणिक्पुत्रोऽसि तत्पुत्र! वाणिज्यं कुरु साम्प्रतम्।
विशाखिलाख्यो देशेऽस्मिन् वणिक्चास्ति महाधन:।।

दरिद्राणां कुलीनानां भाण्डमूल्यं ददाति स:।
गच्छयाचस्व तं मूल्यमिति माताब्रवीच्च माम्।।

ततोऽहमगमं तस्य सकाशं सोऽपि तत्क्षण्।
इत्यवोचत् क्रुधा कञ्चिद् वणिक्पुत्रं विशाखिल:।।

मूषकौ दृश्ये योऽयं गतप्राणोऽत्र भूतले।
एतेना हि पण्येन कुशलो धनमर्जयेत्।।

दत्तास्तव पुन: पाप दीनारा बहवो मया।
दूरे तिष्ठतु तद्वृद्धिस्त्वया तेऽपि न रक्षिता:।।

तच्छ्रुत्वा सहसैवाहं तमवोचं विशाखिलम्।
गृहीतोऽयं मया त्वत्तो भाणडमूल्याय मूषक:।।

इत्युक्त्वा मूषकं हस्ते गृहीत्वा सम्पुटे च तम्।
लिखित्वास्य गतोऽभूवमहं सोऽप्यहसद् वणिक्।।

चणकाञ्जलियुग्मेन मूल्येन स च मूषक:।
मार्जारस्य कृते दत्त: कस्यचिद् वणिजो मया।।

कृत्वा तांश्चणकान्भृष्टान्गृहीत्वा जलकुम्भिकाम्।
अतिष्ठं चत्वरे गत्वा छआयां नगराद् बहि:।।

तत्र श्रान्तागतायाम्भ: शईतलं चमकांश्च तान्।
काष्ठभारिकसङ्घाय सप्रश्रयमदामहम्।।

एकैक: काष्ठिक: प्रीत्या काष्ठे द्वे द्वे ददौ मम।
विक्रीतवानहं हानि नीत्वा काष्ठानि चापणे।।

तत स्तोकेन मूल्येन क्रीत्वा तांश्चणकास्तत।
तथैव काष्ठिकेभ्योऽहमन्येद्यु. काष्ठमाहरम्।।

एवं प्रतिदिनं कृत्वा प्राप्य मूल्यं क्रमान्मया।
काष्ठिकेऽभ्योऽखिलं दारु क्रीतं तेभ्यो दिनत्रयम्।।

अकस्मादथ सञ्जाते काष्ठच्छेदेऽतिवृष्टिभि:।
मया तद्दारु विक्रीतं पणानां बहुभि: शते:।।

तेनैव विपणिं कृत्वा धनेन निजकौशलात्।
कुर्वन्वणिज्यां क्रमश: सम्पन्नोऽस्मि महाधन:।।

सौवर्णो मूषक: कृत्वा मया तस्मै समर्पित।
विशाखिलाय सोऽपि स्वां कन्यां मह्यमदात्तत।।

- कथासरित्सागर/लम्बक १/तरंग ६/३३-४८

२२. जगाम स वणिज्यायै कटाहद्वीपमेकदा।
भाण्डमध्ये च तस्याभून्महानगुरुसञ्चय:।।

विक्रीता परभाण्डम्य न तस्यागुरु तत्र तत्।
कश्चिज्जग्राह तद्वार्सी जनो वेत्ति न तत्र तत्।।

काष्ठिकेभ्यस्ततोऽङ्गारान् दृष्ट्वापि क्रीणतो जनान्।
ल रावाहुपु दग्धवा तदङ्गारानकरोज्जड:।।

विक्रीयांङ्गारमूल्येन तच्चागत्य ततो गृहम्।

- कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरंग ५/ ३-६

२३. मूर्ख: कश्चित् पुमांस्तूलविक्रयायापॅ ययौ।

अशुद्धमिति तत्तस्य न जग्राहात्र कश्चन।
तावद्ददर्श तत्राग्नौ हेम निष्टप्तशोधितम्।।

स्वर्णकारेण विक्रीतं गृहीतं ग्राहकेण च।
तद्दृष्ट्वाऽपि स तत्तूलमिच्छञ्शोधयितुं जड:।।
अग्नौ चिक्षेप दग्धे च तस्मिंलोको जहास तम्। - कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरंग ५/ २८-३०

२४. कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरंग ५/ २-३०

२५ गते काले च मूल्यार्थी स पुरोधा: किलापणे।
ततोऽलङ्करणादेकं विक्रेतुं कटकं ययौ।।

तत्रैतद्रत्नतत्त्वज्ञा परीक्ष्य वणिजोऽब्रुबनम्।
अहो कस्यास्ति विज्ञानं येनैतत्कृत्रिमं कृतम्।।

काचस्फटिकखण्डा हि नाना रागोपरञ्जिता:।
रीतिबद्धा इमे नैते मणयो न च काञ्चनम्।।

- इत्यादि/कथासरित्सागर/लम्बक ५/तरंग १/ १७६-१८१

२६. इति देवस्मिता श्वश्रूं रह उक्त्वा तपस्विनी।
स्वचेटिकाभि: सहिता वणिग्वेषं चकार सा।।

आरुह्य च प्रवहणं वणिज्याव्याजतस्तत:।
कटाहद्वीपमगनद्यत्र सोऽस्या: पति: स्थित:।। - कथासरित्सागर/लम्बक २/तरंग ५/१७९-१८०

२७. इत्युक्त्वा मूषकं हस्ते गृहीत्वा सम्पुटे च तम्।
लिखित्वास्य गतोऽभूवमहं सोऽप्यहसद् वणिक्।। -कथासरित्सागर/लम्बक १/तरंग ६/३९

२८. चक्रे कृतान्तदूतीव शब्दं भयकरं शिवा।।

तदभिज्ञे वणिग्लोके चौराद्यापातशङ्किनि।
हस्ते गृहीतशस्त्रेषु सर्वतो रिपुरक्षिषु।।

ध्वान्ते धावति दस्यूनामग्रयायिबलोपमे। - कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरंग ३/१०६-१०८

२९. ततो निशीथे सहसा निपत्यैवोद्यतायुधा।
चौरसेना सुमहती सार्थं वैष्टपति स्म तम्।।

निनदद्दस्युकालाग्रं शस्त्रज्वालाचिरप्रभम्।
तत: सरुधिरासां तत्राभूद्युद्धदुर्दिनम्।।

हत्वा समुद्रसेनं च सानुगं तं वणिक्पतिम्।
बलिनोऽथ ययुश्चौरा गृहीतधनसञ्चया:।। - कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरंग ३/११७-११९

३०. तत: समुद्रमध्ये तद्यानपात्रमुपागतम्।
अकस्मादभवद्रुद्धं व्यासक्तमिव केनचित्।।

अर्चितेऽप्यर्णवे रत्नैर्यदा न विचचाल तत्।
तदा स वणिगार्त्त: सन् स्कन्ददासोऽब्रवीदिदम्।।

यो मोचयति संरुद्धमिदं प्रवहणं मम।
तस्मै निजधनार्थं च स्वसुतां च ददाम्यहम्।।

तच्छ्रुत्वैव जगादैनं धीरचेता विदूषक:।
अहमत्रावतीर्यान्तर्विचिनोम्यम्बुधेर्जलम्।।

क्षणाच्च मोचयाम्येतद्रुद्धं प्रवहणं तव।
यूयं चाप्यवलम्बध्वं बद्ध्वा मां पाशरज्जुभि:।।

विमुक्ते च प्रवहणे तत्क्षणं वारिमध्यत:।
उद्धर्त्तव्योऽस्मि युष्माभिरवलम्बन-रज्जुभि:।।

आदि-आदि कथासरित्सागर/लम्बक ३/तरंग ४/२९४-३०७

३१. प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन : डॉ० उदय नारायण राय पृष्ठ १६

३२. गुहसेनोऽपि तं प्राप कटाहद्वीपमाशु सः।
कर्त्तुं प्रववृते चात्र रत्नानां क्रयविक्रयौ।।

हस्ते च तस्य तद्दृष्ट्वा सदैवाम्लानमम्बुजम्।
तत्र केचिद् वणिक्पुत्राश्चत्वारो विस्मयं ययुः ।।

पप्रच्छुः पद्मवृत्तान्तं सोऽपि क्षीबः शशंस तम्।
प्रव्राजिकामुपाजग्मर्नाम्न योगगकरण्डिकाम्।

कथं शिष्याप्रसादेन भऊ प्राप्तं धनं त्वया।
कौतुकं यदि तत्पुत्राः श्रूयतां वर्णयामि वः।

इह कोऽपि वणिक्पूर्वमाययावुत्तारापथात्।। - कथासरित्सागर/लम्बक २/तरंग ५/८२-९३

इति सञ्चिन्तयन् नीत्वा स्मरार्त्तः सोऽत्र तद्दिनम्।
प्रातिष्ठत ततः प्रातरवलम्व्योत्तरां दिशम्।।

ततः प्रक्रामतस्तस्य त्रयोऽन्ये सहयायिनः।
मिलन्ति स्म वणिक्पुत्रा उत्तरापथगामिनः।। - कथासरित्सागर/लम्बक ७/तरंग ३/३३-३४

३३. कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरंग ४/१९१

३४. कथासरित्सागर/लम्बक ७/तरंग ९/७२-७५

३५. तस्यां कुसुमसाराख्यो वणिगाढ्यो महानभूत् ।।

तस्य धर्मैकवसतेः शङ्करारधनार्जितः।
एकोऽहं चन्द्रसाराख्यः पुत्रो वत्सेशनन्दन।।

सोऽहं मित्रैः समं जातु देवयात्रामवेक्षितुम् ।
गतस्तत्रापरानाढ्यानद्राक्षं ददतोऽर्थिषु।।

ततो धनार्जनेच्छा में प्रदानश्रद्धयोदभूत् ।
असन्तुष्टस्य बह्वयापि पित्रुर्जितया श्रिया।।

तेन द्वीपान्तरं गन्तुमहमम्बुधिवर्त्मना।
आरूढवान् प्रवहणं नानारत्नप्रपूरितम् ।।

दैवेनेवानुकूलेन वायुना प्रेरितं च तत् ।
अल्पैरेव दिनैः प्राप तं द्वीपं वहनं मम।।

तत्राप्रतीतमुद्रिक्तरत्नव्यवहृतिं च माम् ।
बुद्ध्वा राजार्थलोभेन बद्ध्वा कारागृहे न्यधात्।।

- कथासरित्सागर/लम्बक ११/तरंग १/३६-४२

३६. मनु०/अध्याय ७/८० और १२६

३७. ययौ च स वणिक्सार्थः पुरस्कृत्याटवीपथम् ।
बहुशुल्कभयत्यक्तमार्गान्तरजनाश्रितम् ।। – कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरंग ३/१०५

३८. स च नामान्वयौ पृष्ट्वा देवो मामेवमादिशत्।
भयङ्करि कुलीनासि खरदूषणवंशजा।।

तदितो नातिदूरस्थं वसुदत्तपरं ब्रज।
तत्रास्ते वसुदत्ताख्यो राजा धर्मपरो महान् ।।

यः कृत्स्नामटवीमेतां पर्यन्तस्थोऽभिरक्षति।
स्वयं हृणाति शुल्कं निगृह्णाति च तस्करान्।।

– कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरंग ३/१३३-१३५

३९. एतामेवाटवीं सोऽल्पशुल्कः प्रान्तस्थितोऽवति।
तत्सौकर्याच्च वणिजः सर्वे यान्त्यमुना पथा।। – कथासरित्सागर/लम्बक ६/तरंग ३/१५०

४०. अन्यस्माद् भाण्डमादाय ददावन्यस्य तत्क्षणम्।
विनैव स्वधनं मध्याद्दीनारानुदपादयत्।।

– कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरंग ४/१९१

एवं क्रमेण सर्वेभ्यो नियोगिभ्यः स बुद्धिमान् ।
राजभ्यो राजपुत्रेभ्यः सेवकेभ्यश्च युक्तिभिः।।

बह्वीभिराददानोऽर्थानर्जयामास सर्वतः।
पञ्च कोटीः सुवर्णस्य कुर्वन् राजा समं कथाः।।

ततो रहसि राजानं धूर्त्तमन्त्री जगाद सः।
देव दत्त्वापि नित्यं ते दीनारशतपञ्चकम् ।।

त्वत्प्रसादान्मया प्राप्ताः पञ्च काञ्चनकोटयः।
तत्प्रसीद गृहाणैतत् स्वं स्वर्णमहमत्र कः।।

– कथासरित्सागर/लम्बक १०/तरंग १०/१२८-१३१

इयन्मात्रे परिकरे वृत्तयेऽर्थयते स्म सः।
प्रत्यहं नृपतेस्तस्माद्दीनारशतपञ्चकम्।। – कथासरित्सागर/लम्बक९/तरंग ३/९२

४१. ददौ च तस्य चारान्स पश्चाज्जिज्ञासितुं नपः।
कुर्यादियदि् भर्दीनारैः किं द्विबाहुरसाविति।।

स च वीरवरस्तेषां दीनाराणां दिने दिने।
शतं हस्ते स्वभार्याया भोजनादिकृते ददौ।।

शतेन वस्त्रमाल्यादि क्रीणाति स्म शतं पुनः।
स्नात्वा हरिहरादीनामर्चनार्थमकल्पयत्।।

द्विजातिकृपणादिभ्यो ददावन्यच्छतद्वयम्।
एवं स विनियुङ्क्ते स्म नित्यं पञ्चशतीमपि।।

– कथासरित्सागर/लम्बक ९/तरंग ३/९४-९७

४२. तस्यं हारयतो नित्यं द्यूते ये जयिनोऽपरे।
ते प्रत्यहं द्यूतकाराः कपर्दकशतं ददुः।। – कथासरित्सागर/लम्बक १८/तरंग २/७३

४३. तत्र तैरेव सहितः पथि प्राप्यैव जातिकैः।
नीत्वा परस्मै मूल्येन दत्तोऽभऊत्ताजिकाय सः।।

तेनाऽपि तावद् भृत्यानां हस्ते कोशलिकाकृते।
मुरवाराभिधानस्य तुरुष्कस्य व्यसृज्यत।।

तत्र नीतः स तद्भृत्यैर्युक्तैस्तैरपरैस्त्रिभिः।
मुरवारं मृतं बुद्ध्वा तत्पुत्राय न्यवेदयत्।।

पितुः कोशलिका ह्येषा मित्रेण प्रेषिता मम।
तत्तस्यैवान्तिके प्रातः खाते क्षेप्या इमे मया।।

इत्यात्मना चतुर्थं तं तत्पुत्रोऽपि स तां निशाम्।
संयम्य स्थापयामास तुरुष्को निगडैर्दृढम्।। – कथासरित्सागर/लम्बक ७/तरंग ३/३६-४०

४४. स्मरतैकां भगतीं दुर्गामापद्विमोचनीम्।
इति तान् धीरयन् भक्त्या देवीं तुष्टाव सोऽथ ताम्।।

'नमस्तुभ्यं महादेवि पादौ ते यावकाह्कितौ।
मृदितासुरलग्नास्त्रपङ्काविव नमाम्यहम्।।

जितं शक्त्या शिवस्यापि विश्वैश्वर्यकृता त्वया।
त्वदनुप्राणितं चेदं चेष्टते भुवनत्रयम्।।

परित्रातास्त्वया लोका महिषासुरसूदिनि।
परित्रायस्व मां भक्तवत्सले शरणागतम्'।।

इत्यादि सम्यग्देवीं तां स्तुत्वा सहचरैः सह।
सोऽथ निश्चयदत्तोऽत्र श्रान्तो निद्रामगाद्द्रुतम्।।

उत्तिष्ठत सुता यात विगतं बन्धनं हि वः।
इत्यादिदेश सा स्वप्ने देवी तं चापरांश्च तान्।।

प्रबुध्य च तदा रात्रौ दृष्ट्वा बन्धान् स्वतश्च्युतान्।

अन्योन्यं स्वप्नमाख्याय हृष्टास्ते निर्युयुस्ततः।।

गत्वा दुरमथाध्वानं क्षीणायां निशि तेऽपरे।
ऊचुर्निश्चयदत्तं तं दृष्टत्रासा वणिक्सुताः।।

आस्तां बहुम्लेच्छतया दिगेषा दक्षिणापथम्।
वयं यामः सखे त्वं तु यथाभिमतमाचर।। - कथासरित्सागर/लम्बक ७/तरंग ३/४३-५१

उपसंहार

'कथासरित्सागर' गुणाढ्य की पैशाची भाषा निबद्ध 'बड्ढकहा' (वृहत्कथा) का सार संग्रह रूप संस्कृत रूपान्तर है यह उद्‌घोष स्वयं उसके रचनाकार सोमदेव ने कृति के प्रथम लम्बक में किया है। साथ ही भारतीय और अभारतीय सभी विद्वान् भी यही स्वीकारते है। बात बड़ी विचित्र है। गुणाढ्य ने वृहत्कथा की रचना विविध, देश-प्रदेश के व्यापारियो उनके सार्थवाहो तथा अन्य कर्मचारियो द्वारा यात्रा की श्रान्ति मिटाने के लिए मनोरंजनार्थ विश्रान्तिक्षणो, मे कही गयी कौतूहल प्रद एवं चमत्कृत करने वाली, तद्‌वद्‌देशी लोककथाओं की कथाओं के चयन-प्रक्रिया द्वारा की। उन कथाओं में वर्णित चरित्र, परिवेश वद्‌तद्‌देशीय लोक एवं उसके जन समूह के रहे। ये कथाएं लोक-प्रचलित आख्यान रहे होंगे। इस स्थिति में कथासरित्सागर यदि वृहत्कथा का संस्कृत रूपान्तर है तो उसके वर्ण्य विषय की अति विस्तृति से हमें विशाल दृष्टिलोक में विचरना चाहिए। दूसरी ओर यदि यह माना जाय कि यदि सोमदेव ने वृहत्कथा को मूल आधार कल्पित करके कथासरित्सागर में अपने समय और समाज के भोग का रस तत्त्व एवं परिवेशानुगत अनुभवों का समाविष्ट किया है

तो एक काल विशेष की सीमायें, समाज, संस्कृति, परिवेश को केन्द्रित करने का उसका परिवीक्षण संगत है। कवि सोमदेव ने सातवें लम्बक में वितस्ता सरि को जाह्नवी कहकर वर्णित किया है, अन्य भी स्थल हैं जहॉ कश्मीर के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। यदि कहा जाय कि कथासरित्सागर के आख्यान कश्मीर भूमि मे ही रचे-बचे हैं वही उदय एवं वहीं अस्त।

दसवी शती के उत्तरार्द्ध एवं ग्यारहवी शती का मध्यभाग एक ऐसी कालावधि रही जब कश्मीर में तीन रचनाकारों का अवतरण हुआ, वह थे कल्हण, क्षेमेन्द्र तथा सोमदेव। इनकी रचनाएॅ क्रमश:-राजतरंगिणी, वृहत्कथा मंजरी और कथासरित्सागर है। तीनों ही रचनाकारो ने तत्समायिक समाज पर अपनी आन्वीक्षिकी दृष्टि का क्षेपण किया है। राजतरंगिणी के कवि कल्हण ने समाज को राजकुल, राजकर्मचारी एवं राज सम्बन्धित अन्य जनों की पृष्ठभूमि पर अवस्थित होकर देखा है। यदि हम कहें कि कल्हण ने पूरे समाज को राजनीति परिधि में आवृत्त कर चित्रित करना चाहा है। तो यह कथमपि अनुचित न कहा जायेगा। प्रकारान्तर से, राजतरंगिणी कश्मीर राजाओं का विवरणात्मक ग्रन्थ है। कश्मीरी संस्कृति, परम्परा एवं प्रवृत्तियों अथवा ऐसी कोई घटना स्पष्ट रूप से अंकित नहीं जिससे यह आभास हो सके कि कश्मीर राजवंश, समाज-संस्कृति के प्रति उसकी जागरूकता का परिचय मिले। कवि क्षेमेन्द्र की दृष्टि अधिक उन्मीलित, स्वंत्रत तथा तीक्ष्ण है, कवि स्वत्रंत चेता है। उसने

समाज को अपनी पैनी और आन्वीक्षिकी-प्रक्रिया द्वारा संदर्शित कराने का प्रयास किया है, पूरे समाज का चरित्र चित्रण कर दिया है। कवि सोमदेव की मात्र एक रचना है- कथासरित्सागर एक आख्यान संग्रह। यहां कवि कथा-कथक है, उस परिवेश मे यदि समाज-संस्कृति अभिनिवेशगत प्रतिबिम्बित हो गयी तो हम इसे संयोग कहेगे।

यह निर्विवाद है कि तीनों ही कश्मीरी कवि समाज का विकृत स्वरूप ही वर्णित किया है। तीनों की ही दृष्टि में सामाजिक विद्रुपण के मूल में कायस्थ, वेश्या, एवं बनिया रहे हैं। कल्हण ने कायस्थ को प्रथमत: लिया है, बनिया एवं गणिका को प्रसंगत: ग्रहण किया है, क्षेमेन्द्र ने इन तीनों को समानत: तथा सोमदेव भी तीनों के योगदान स्वीकारते हैं। कल्हण ने सर्वप्रथम कायस्थ को राजकर्मचारी होने का उल्लेख किया। नृप शंकर वर्मन के राजत्वकाल में वह गृहकृत्याधिपति के रूपमें पांच दिविरों के अधिकारी रूप में नियुक्त किया (राज०/५/१६७ व १७६)। क्षेमेन्द्र ने इस दिविर को परिभाषित करते हुए लिखा है- वरदायक कलि ने कहा - दैत्यों का विष्णु द्वारा विनाश होने पर तू आकाश में रोया (दिविरोदितं) इसलिए दिविर नाम से विख्यात होगा। शरीर में स्याही पोते, सेवाकाल में चापलूस, लालची और ठग (नर्ममाला/१/२-३२) कथासरित्सागर में कवि सोमदेव ने भी कायस्थ को प्रशासकीय लेखाधिकारी के रूप में चित्रित किया है। उसको ग्रहण कर उसने मनोवांछित राज्यादेश तैयार कर दिया था। (लम्बक ७/तंरग ८/९१) कल्हण ने लिखा है, कि

मंत्री तुंग ने भद्रेश्वर (कायस्थ) को गृहकृत्य बना दिया। उसने देव, ब्राह्मण गौ एवं अनाथों की वृत्तियां बन्द कर दीं। अतिथि एवं नृप के अन्यान्य कर्मचारी भी उसके कोपभाजन बने (राज०/७/३७-४३)।

मध्यकाल में कश्मीर राज्य एक प्रकार के इन कायस्थो के ही नियंत्रण मे रहा। समस्त राजकीय पदों पर कायस्थ आसीन रहे। कारण था उनका बुद्धि चातुर्य, चापलूसी, उत्कोच ग्रहण करना, इसका स्वभाव। वह राज्य में गृहकृत्य के पद पर आसीन होता। एक प्रकार से गृह मंत्रालय ही उसके अधीन होता। जिसमें मन्दिरो, ब्राह्मणों, निर्धनों को दान पशुओं का चारा एवं कर्मचारियों का वेतन इत्यादि मद होते हैं। वह विभागीय कर्मचारी स्वयं नियुक्त करता था, अत: उसके स्वच्छन्द-आचरण में बाधक नहीं हो सकता था। कवि क्षेमेन्द्र ने नर्म माला तथा समयमातृका में कायस्थ के राज्याधीन पदों एवं कार्यों का सविस्तार विवरण दिया है। क्षेमेन्द्र स्त्रियों के 'शृंगार प्रसाधन' पर भी अच्छा ध्यान दिया है-

शृंगार में कर्पूर तथा चन्दन का विशेषत: उपयोग होता था, ललाट पर तिलक लगाने की परम्परा थी। चमेली के फूल की आकृति वाला तिलक 'श्रीखण्डोज्जवल मल्लिकातिलक' कहा जाता था। वेश्याएं अपनी शृंगार मोती के आभूषण और धमिल्ल जूड़ा से करती थी। तत्कालीन समाज में स्त्री-पुरुष दोनों ही आभूषण प्रिय रहे।

गणिकाएं मेखला धारण करती थीं। जिसमे नूपुर रहते। किंकिणी भी वेश्याओं का प्रिय गहना था। स्त्रियां शंखलतिका एवं विद्रुममालिका धारण करती। हेमबालक् बालिका जिसमें स्थूल त्रिगुणवाल की अर्थात पेंच होते थे, प्रिय अलंकरण था। पुरुष कान में बाला पहनते थे। हेमरथा तथा सजावर्त मणि-जटित कण्ढाभरण धारण किया जाता था।[१] सोमदेव ने भी कथासरित्सागर में आभूषण-प्रियता का उल्लेख किया है उनके अनुसार स्त्री-पुरुष दोनों हाथों में अंगूठी पहनते थे।[२] जघन स्थल पर मेखला और कण्ठाभरण अर्थात् हार पहने जाते थे।[३] हाथ में कंकण धारण करने[४] की परम्परा थी। बाहुओ पर केयूर धारण किया जाता था। नारिया ताटंक, कर्णाभूषण पहिन ती थीं।[५] इससे प्रतीत होता है कि कथासरित्सागर का वर्णन चरित्र और परिवेश सापेक्ष है और कवि क्षेमेन्द्र का अंकन सामान्य सामाजिक परम्परागत। महाकवि क्षेमेन्द्र ने गणिका-प्रवृत्ति का सूक्ष्म दिग्दर्शन कराया है। वह लिखते हैं- अत्यन्त चालाक, अपने कृत्रिम प्रेम से लोगों को लूटने वाली, वेश्याएं अपने कपटा चार से कूबेर तक को भिखमंगा बना देती हैं। कवि ने कला विलास के चतुर्थ सर्ग में वेश्या की चौसठ कालाओं का भी अंकन किया है - लुटेरी, तरंगी और नीचों का संसर्ग करने वाली वेश्याएँ ढहाने वाली, तरंगों से भरी, चपल और निम्नगा नदियो की तरह हैं, जैसे नदियाँ समुद्र में मिलती हैं उसी तरह वेश्या के ह्रदय में चौंसठ कलाएँ बसती हैं यथा - (१) वेशकला, (२) नृत्यकला, (३) गीत कला, (४)

नजारे मारने की कला (बहुवीक्षण कला), (५) काम परिज्ञान कला, (६) फॅसाने की कला (ग्रहण कला), (७) मित्रों के ठगने की कला (मित्रवचन कला), (८) पान कला, (९) केलि कला, (१०) सुरत कला, (११) आलिंगन कला, (१२) अंतर रति कला, (१३) चुंबन कला, (१४) दूसरे को देखने की कला (पर कला), (१५) निर्लज्जता की कला, (१६) आवेश कला, (१७) घबड़ाहट दिखाने की कला (संभ्रम कला), (१८) ईर्ष्या दिखाने की कला, (१९) कलह की कला (कलिकेलि कला), (२०) रोने की कला, (२१) मान छोड़ने की कला (मान संक्षय कला), (२२) पसीना लाने की कला, (२३) भ्रम पैदा करने की कला, (२४) कंपकला, (२५) एकांत में रहने की कला, (२६) शृंगार पटार की कला, (२७) नेत्र निमीलन कला, (२८) निःस्पन्द कला, (२९) मरने की नकल साधने की कला, (३०) विरह से यार को वश में करने की कला (विरहासहराग कला), (३१) कोप कला, (३२) अपने यार के मना करने अथवा उसकी भलाई के निश्चय की कला (प्रतिषेध निश्चय कला), (३३) खाला से लड़ने की कला, (३४) अच्छों के घर जाने की कला, (३५) तमाशा देखने की कला (उत्सवेक्षण कला, (३६) अच्छों के घर जाने की कला,. (३७) जाति कला, (३८) केलि कला, (३९) चोर कला, (४०) राजसी ठाठ से रहने की कला, (४१) बड़प्पन दिखलाने की कला, (४२) अकारण निन्दा की कला, (४३) शैथिल्य कला, (४४) पेट दर्द या सिर दर्द के बहाने की कला,

(४५) उबटन लगाने की कला (अभ्यंग कला), (४६) नीद लाने की कला, (४७) रजस्वला होने के बहाने सेकपड़ा दिखलाने की कला, (४८) रुखाई दिखलाने की कला , (४९) तेजी दिखलाने की कला, (५०) गले में हाथ देकर निकाल बाहर करने की कला (गलहस्त कला), (५१) घर के दरवाजे पर ब्योंडा चढ़ा देने की कला, (५२) त्यक्त कामी का धन पाने की आशा से उसे वापस बुलाने की कला, (५३) दर्शन कला (५४) यात्राकला, (५५) स्तुति कला, (५६)सार्थ, उत्कट या मौज से घुमने की कला, (५७) हँसी-मजाक की कला, (५८) घर के कामकाज की कला, (५९) वशीकरण के लिए मंत्र और औषधियों की जानकारी की कला, (६०) पेड़ लगाने की कला, (६१) बाल सॅवारने की कला (केश-रंजन कला, (६२) भिक्षुओं और तापसों को विविध प्रकार के दान देना, (६३) द्वीप घूमने की कला तथा इन सब कलाओं का अंत होने पर वेश्या (६४) कुटनी का कला साधती हैं।[६]

ये सारे गुण कवि क्षेमेन्द्र के स्वकल्पित और परिभाषित हैं किन्तु हैं समीचीन। क्षेमेन्द्र ने तत्कालीन समाज के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला है। समाज का नैतिक पतन हो चुका था। चारित्रिक पावनता के दर्शन कथंचित ही सम्भव थे। स्त्रियों का चारित्रिक पतन अत्यन्त ही क्षोभकारक था। कला विलास में चित्रण है- कुलटा स्त्रियाँ अपनी वंचक प्रवृत्ति द्वारा लोगों को ठगती और अपना काम साधती, 'वह कहती

कुछ और करती कुछ'। वे घर की खिड़कियों से झांकती रहतीं। ऐसी कुलटाओ की कोटिमें थी- बृद्ध-भार्या, दासी, नियोगी भार्या, नाटक में अभिनय शीला, स्त्रियॉ, कृपण भार्या, सार्थवाहमार्या, द्यूत एवं मद्यपान-व्यसनी स्त्रियाँ, युवकाभिलाषिर्णा इत्यादि।[७] स्त्री समाज के नैतिक पतन का ही चित्रण विशेष रूप से सोमदेव ने कथासरित्सागर में भी किया- जार से संगमन के लिए स्त्रियां खिड़की से रस्सी की सहायता से अपनी सखी अथवा सेविकाओं से ऊपर अपने कक्ष में बुला लेती थीं। यद्यपि सोमदेव ने नारी चित्रण का पूर्ण प्रयास किया है- उन्होंने राजकुमारियों, महारानियों, गणिकाओ, कुलटाओं सबको आख्यानुक्रम में संदर्शित किया है, किन्तु क्षेमेन्द्र की आन्वीक्षिकी दृष्टि उनके पास कहाँ? क्षेमेन्द्र ने कायस्थ सुन्दरी का रूप अंकित किया है- उस चोर लेखक की हवा से अहोरात्रि सुलगती आंच से जन रूपी वन को भस्म कर डाला। शीघ्र ही उस रईस के घर मे गहने, माला से सज्जित पान चर्वण में तत्पर, दर्पण देखने वाली, राजमार्ग पर दृष्टि गड़ाने वाली, उससे अलग उसकी घर की रानी जैसा घमण्ड करने लगी। हार मुझे भार मालूम पड़ता है, स्वर्णकाताटंक मुझे प्रिय नहीं, मोटी सोने की करधनी (कमर सूत्रिका) को धिक्कार, केवल सुन्दर एकावली ही मेरे लिए प्रियकर है। उसकी इस अभिमान पूर्ण बात के किसको विस्मित नहीं करती। वाह रे काम में सफलता प्राप्त कराने वाली भगवती स्याही, अहो, बलवती लक्ष्मी के लिए आश्रय-भूत लेखनी, जो टूटे

तथा जुड़े हुए पत्थर के बर्तन में कभी मांगी गयी कच्ची शराब पीता था, वही आज चांदी के प्याले में कस्तूरिका मधु पीती है। महल पर बैठी उस कायस्थ सुन्दरी को नीचे से देखकर पड़ोसियों की लड़कियों ने उसे एक कुलीन समझा।[८]

इस चित्रण में तत्कालीन समाज को खोखला करने वाले वर्ग विशेष जो 'कायस्थ' संज्ञा से अभिहित होता रहा, उसके छल छद्म, पिशुनता, परद्रोह इत्यादि गुणों का आभास मिलता है। ऐसे असाधारण दुर्गुणों पर आकर यह कायस्थ किन-किन रूपों, किन-किन भेषो, किन-किन व्यापारो द्वारा पूरे समाज का नियन्ता बना हुआ था एवं किस प्रकार कश्मीर की शासन-सूत्र संचालन कर रहा, सबका, सम्यक् चित्रण कविवर क्षेमेन्द्र ने उपस्थित किया है- उसके प्रमुख रूप रहे- पिशुन, परिपालक, गंजदिविर, लेखकोपाध्याय मार्गपति, ग्राम-दिविर, अधिकर्ण भट्ट, नगरादिकृत, सस्यपाल आदि।

नियोगी- इस शब्द का प्रयोग क्षेमेन्द्र ने अधीक्षक के अर्थ में किया है। गृहकृत्य के अधीन सात नियोगी होते थे। गृहकृत्य की सभा में वे उपस्थित रहते थे। सरदी में लगान वसूली के समय उन्हें गहरी रकम मिलती थी।

पिशुन- चाक्रिक, पुंश्चलक, गृहकृत्य के अधीन भेदिये होते थे जिनका काम गृहकृत्य को मंदिरों इत्यादि में इकट्ठी रकम की खबर देना होता था। ऐसे ही एक

भेदिये का क्षेमेन्द्र ने जीता-जागता चित्र खीचा है। उस नियोगी कार्यदूत के पैरो मे अशुभ था, मंदिर लूटने की कतरब्योंत मे वह होशियार था। उसका इतना प्रभाव था कि गृहकृत्य ने स्वयं उठकर उसको स्थान दिया। उसकी कृपा से ही दूरस्थ होते हुए भी नियोगी हजारों आखें और कान वाले हो जाते थे। उसने आते ही विजयेश्वर, वाराह और मार्तण्ड के मंदिरों के इकट्ठी संपत्ति का ब्योरा बतलाया और परिचालक द्वारा उसके हरण की युक्ति बतायी।

परिपालक- यह अधिकारी गृहकृत्य का सहायक होता था। लगता है इसका चुनाव उसकी कठोरता पर ही निर्भर होता था। अपवादों से वह न डरने वाला, पातकों ने निःशंक, अपनी बुद्धि के बल ही प्रसिद्ध होता था। ब्रह्महत्या और गोहत्या उसके लिए कुछ न थी। उसकी गर्दन अकड़ी थी तथा निगाह टकटकी लगाए। वह मोटा ताजा और क्रोधी था। उसने पीले-हरे रंग की पगड़ी (शिरःशाटक) और कुरता (कंचुक) पहन रखा था। परिपालक बनने पर वह असंख्य प्यादों के साथ वसूलियाती (अधवेला) के लिए निकला। उसी आज्ञा से मंदिर लूट लिये गये तथा सिपाहियों ने घरों के दरवाजे तोड़कर, बरतन भांडे लेकर स्त्री और बच्चों को रोते बिलखते छोड़ दिया।

लेखकोपाध्याय- यह अधिकारी परिपालक का प्रधान लेखक होता था और

इस बात में हमेशा प्रयत्नशील रहता था कि उसके मालिक का भला हो। उसके पास गुप्त कागज-पत्र रहते थे। लेखकोपाध्याय बनने के पहले वह भूखा-नंगा था। दुपट्टी फटी पुरानी थी, और सूखे जूते मंगनी के थे। पर गरीब होने पर भी उसे अपनी मुंशीगीरी का गर्व था। पति के लेखकोपाध्याय बनने पर भी उसकी गरीब पत्नी ने गणेश की पूजा की। अपने मालिक के हुक्म से उसने जबर्दस्ती वसूलियाती के लिए हुक्मनामे लिखे। परिपालक को जो कुछ भी सामान की जरूरत पड़ती थी उसके लिए वह हुक्म जारी करता था। लेखपत्रों को पढ़ते हुए वह अजीब तरह से मुँह बनाता था। वह हिसाब-किताब लिखने में पटु होता था।

गंजदिविर- यह अधिकारी परिपालक के नीचे अर्थ विभाग का अध्यक्ष होता था। वह परिपालक के सामने आय-व्यय का छमाही चिट्ठा (शरत्षण्मास कल्पना) पेश करता था। आय मद्धे उसमें साढ़े चार लाख दिखलाया गया था। देव ब्राह्मणो की वृत्तियाँ वह काटने वाला था। उसे इस बात की शेखी थी कि जिन-जिन अधिकारियों ने उसका विरोध किया, उन्हें भाग जाना पड़ा। उसने परिपालक को सलाह दी कि किस तरह मंदिरों की संपत्ति हडप ली जाए क्योंकि उसे पार्षद खाये जा रहे थे- उसने यह भी सलाह दी कि मंदिर में जमा धान की खरीद बेच से भी परिपालक रकम .पैदा कर सकता था।

मार्गपति अथवा व्यापारी- यह अधिकारी विषय अथवा परगने का अधिपति होता था। वह ग्रामों की देखभाल, उनके हिसाब-किताब का निरीक्षण तथा सड़को की देखभाल करता था। वह दीवानी और फौजदारी मुकदमों को सुनने भी सुनता था। नगर में वेश्याओं को लेकर जो खून-खराबी होती थी उसकी वह जांच पड़ताल करता था तथा वह बराबर नागरिकों के चरित्र स्खलन पर भी निगाह रखता था। समय-समय पर उसे सैनिक कर्तव्य भी पालन करने पड़ते थे।

सस्यपाल- इस अधिकारी के क्या कर्तव्य होते थे, इसका तो ठीक पता नहीं चलता पर शायद यह फसलो की निगरानी करता था।

प्रासादपाल- लगता है यह देव मंदिर का कोई अधिकारी था, जिसके जिम्मे मंदिर का प्रबंध होता था। ऐसे ही एक प्रासादपाल को मंदिर के गर्भ-गृह में घुसा कर लूट लिये जाने का उल्लेख है। एक अधिकरण भट्ट का पहले ग्राम गणेश मंदिर के प्रासादपाल होने का भी उल्लेख है।

दूत- क्षेमेन्द्र के काव्यों में दूत शब्द का प्रयोग हरकारे के अर्थ में हुआ है। अधिकरण भट्ट एक समय संधि-विग्रहिक कायस्थ चक्रिका (कार्यकारिणी) का एकसा मामूली दूत था, जो दंग देश में अनेक बार आने-जाने से भट्ट बन बैठा। उसकी बँधी कमर, फटा कंबल और धूल से सने पैर उसके मामूली पद के द्योतक थे।

दूत को हरकारे के अर्थ में धावक भी कहते थे। कश्मीर के पर्वतीय प्रदेश मे रक्षा अट्टालकों के सैनिक बचाव के लिए दंगाधियों को नियुक्ति होती थी। घाटी मे इनका संबंध स्थापित करने के लिए धावकों की बड़ी आवश्यकता होती थी।

बंधनपाल- आधुनिक जेलर, चोरी का माल लेकर छिपाने पर सिपाहियों ने (शठचेटक) कंकाली को बाँधकर कारागृह (बंधन) में बंद कर दिया, पर यहां उसने बंधन-पाल से मित्रता कर ली और एक दिन जब वह नशे में बेहोश था, उसकी जीभ काटकर तथा अपनी बेड़ियाँ हटाकर वह भाग खड़ी हुई।

अदालती कागज-पत्र के संबंध में भी कई शब्द आये हैं। धनधारणपत्रिका में शायद मतलब भरण पोषण की रकम के संबंध का एकरारनामा था उज्जासपत्रिका में, लगता है, दी जाने वाली रकम और वस्तुओं की पूरी फिहरिस्त वसूल करने वाले का नाम के सहित होती थी।

अश्वशालादिविर- यह अधिकारी घुड़साल का प्रबंध करता था। खूब कागज पत्र लिखकर वह दिन भर लोगों को लूटता था और रात भर खूब सोकर सबेरे नहा कर दाह मिटाता था।

अदालत- समयमातृका में एक जगह तत्कालीन दीवानी अदालत का चित्र खींचा गया है। कंकाली ने अपने पति अश्वशाला दिविर का घर बेचना चाहा।[१]

कवि क्षेमेन्द्र कायस्थ के उन गुणो का व्याख्यान भी अपनी मति-गति के अनुसार करना नही भूले हैं जो उनकी कुलागत गुणवत्ता सिन्धु से उच्चरित होकर उन्हें सर्वथा अमर किये हुए हैं-[१०]

मोह कायस्थो के मुख और लेख मे बसता है। उसके देखते ही भरी फसल नष्ट हो जाती है। जनता के लिए वह मानोकाल है। कायस्थ रूपी कालपुरुष लाठियो से लोगों को पीटकर हिसाब लगाते हुए भूर्जपत्र लिए हुए घूमते रहते है। कायस्थ की कलम से झरती हुई मसि की बूँदें मानो राज्यश्री के आंसू हों। उसके कुटिल अंकन्यास लोगों को ठगते हैं तथा उसकी भूर्जपत्र पर लिखी टेढी-मेढी लिपि (कुटिलालिपि) मानो कुंडली मारे सर्प की तरह लगती है। चित्रगुप्त का वह बुद्धिमान वंशज रेखा मात्र से हेरफेर से सहित को रहित कर देता है। उसकी गुप्त कलाओं का कोई पता नहीं पा सकता। टेढ़ी लिपि लिखना (वक्र विन्यास कला), गुप्त आंकड़ों की जानकारी, हर बात में दखल देना (सततप्रवेश), लोगों को अपने वश में करना (संग्रहलोक), व्यय बढ़ाना, लेने वाली वस्तु को पहले से ही बॉटने की ब्योंत बाँधना (ग्राह्यपरिच्छेद कला), कर्ज लेना-देना (देयवनादान), बाकी निकालने की तरकीब (शेषस्यविवेककला) जसा-जत्था हजम करना (संकलितराशिसर्वभक्षणकला), उपज छिपाना (उत्पन्नगोपनकला), माल खराब कर देना और गायब कर देना (नष्टविशीर्णप्रदर्शन कला), खरीद कर खाने की नकल करना (क्रयमाणैर्भरणकला), योजनाएं दिखलाकर

चिट्ठे मे घाटा दिखलाना (योजनाचार्यादिभिः क्षयकला) तथा कागज-पत्र जला देना, कायस्थ की कलाएँ हैं।

कथासरित्सागर में वणिक् अथवा बनिया की लोभ-प्रवृत्ति, धनार्जन-हेतु, उचित अनुचित माध्यमों, साधनों का आश्रय ग्रहण करने वाला एवं निजकार्य सिद्धि के उपरान्त, सिद्धि में सहायक बनने वालों को ही धोखा देना। आदि विश्वासघाती का उल्लेख हुआ है। समुद्रतल मे जहाज फंस जाने पर जो जहाज का परिचालित करा सके, वह मेरी सम्पत्ति के अर्द्धभाग का अधिकारी बनेगा और मैं उसके साथ अपनी पुत्री का व्याह भी कर दूंगा। घोषणा सुनकर जब वीरवर विदूषक ने स्वयं को रस्सियो के सहारे समुद्रतल पर उतार, जहाज के अवरोधक विशालकाय पुरुष की जांघ तलवार से काटकर उस जहाज को मुक्त करा दिया तो उस विश्वासघाती वैश्य ने रस्सी काटकर उसे ही समुद्र में डुबा दिया। यह कथमपि विस्मयकारक नहीं, यह तो वैश्य का सहज गुण-स्वभाव है।

हम संकेत कर चुके है कि राजतरंगिणी का कल्हण राजसभा, राजकुल-संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में अपने समय का समाज देख और परख रहा है, कथासरित्सागर का कवि सोमदेव आख्यानान्तर्गत घटनानुघटना के परिवेशगत चारित्रिक आलोक में समाज की छवि देखता है। किन्तु तीसरे कवि क्षेमेन्द्र ने अपनी पैनी स्वतंत्र दृष्टि से समाज-समग्र देखते दृष्टिगत होते हैं। उनकी दृष्टि-सीमा में समाज के सभी पक्ष

साक्षात् होते है। वह प्रत्येक वर्ग के क्रिया-कलापों का अध्ययन करते है एवं उसके निहितार्थ का सामाजिक शिव-अशिव के परिप्रेक्ष्य मे परिणामपरक भाव भूमि पर अवतरित करते है। उन्होंने यदि समाज के नैतिक स्तर को विद्रूपण करने वाला विलासी एवं विलासियों का चित्र उपस्थित है किया तो वह आर्थिक स्थिति को जर्जर करने वाले व्यापारियों-वणिकों एवं स्वर्णकारों की वृत्ति-प्रवृत्ति का भी आकलन करना विस्मृत नही करते। उन्होने अपनी कृति 'कलाविलास' में कहा है- सत्व, प्रशय, और तप इत्यादि से विजित होकर लोभ ने व्यापारियों अर्थात बनियों के हृदय में आश्रय ले लिया। इसीलिए वह लोभी हो गया और तदर्थ वह कार्य-अकार्य पर विचार नहीं करता क्षेमेन्द्र बनिये ने इस गुण को भली भांति परखा है —

"एक चतुर बेईमान बनिए के संबंध में 'कला विलास' से कुछ और सूचनाएं मिलती हैं। वह खड़िया हाथ में लेकर हिसाब किताब करता था। जब जमा करने वाला देश यात्रा से लौटने पर अपनी जमा की हुई रकम वापिस मांगता था तो वह उसे पहचानने से भी इन्कार कर देता था और कहता था- बता, तूने कब किसे कहां रकम दी। मेरे प्रसिद्ध कुल में भला कोई रकम क्यों जमा करेगा और फिर जमा करके उसे छिपायेगा क्यों, खैर किस दिन तूने रकम जमा की, उस दिन का लेखा स्वयं देख ले। अरे, मेरे पुत्र के पास खाता रहता है। पुत्र के पास जाने पर वह उसे पिता के पास भेज देता था। राजा के पास फरियाद करने

पर भी बनिया रकम जमा करने की बात नकार गया।''

कवि क्षेमेन्द्र ने बनिया के प्रमुख गुणों का उल्लेख अपने देशोपदेश में भी किया है- जमाधन डकार जाने वाला, छिपाने में निपुण, ब्याज कलारूप रात्रि का यक्ष, धन पैदा करने का अभिलाषी बनिया गुरु के यहां जाता है, इसका अर्थ यह नही कि वह मोक्षार्थी है अपितु धनार्जन के लिए उपयुक्त युक्ति जानने का इच्छुक है। झाड से पड़ी धूल से धूसरित विकराल, गुड, शहद, घी तथा पीले तेल से सने हाथों वाला ग्राहक को ठगने वाला बनिया हाट में पिशाच का साक्षात् रूप है। भीषण दुर्गन्धपूर्ण, धन बटोरने से गन्दे, हाट की जंजीर से बंधे, विधाता ने ऐसे बनिए को श्री गुरुनाथ के बहने का (माल खाने का) पनाला बनाया है।[११] बनिया याचकों के लिए अंधा, बंधक की रकम पर ब्याज से मुक्ति चाहने वालो के लिए बहरा और विक्रय वस्तु के लिए अल्प मूल्य लगाने वाले के लिए गुंगा होता है।[१२]

समाज की आर्थिक स्थिति के आधार रूप वाणिज्य व्यवसाय के दोनों स्तम्भ बनियां एवं सोनार की प्रवृत्ति-वृत्ति तथा प्रकृति का जितना सुन्दर चित्रण क्षेमेन्द्र की रचनाओं में है। उसी स्तम्भ को कथासरित्सागर में सम्यक् स्थान नहीं प्राप्त हो सका है। क्षेमेन्द्र ने सोनारों की बंचक वृत्ति पर आन्वीक्षिकी दृष्टि डाली है-

वे सोना चुराने मे दक्ष होते हैं। सोना लेते समय उनका कस मद्धिम (मंदरुचि) बैठता है पर बेचते समय तेज (पुरुषकषा)। सोना तौलते समय वे चिकने (सोसस्नेहः), चिपचिपे (स्वच्छः) मोम भरे (सिक्थक मुद्रः), रेतीले (बालुका प्रायः) बटखरे काम में लाते हैं। वे दोपरती (द्विपुटा), खुली (स्फोटविपाका), सोना पी जाने वाली (सुवर्ण रसपायिनी), तमैली (सुताम्र) तथा सीसे और कांच चूर्ण ग्रहण करने वाली धरियां (मूषा) व्यवहार करते हैं। उनकी तराजू सोलह तरह की होती थी- यथा बांके कांटेवाली (वक्रमुखी), नीची ऊंची (विषमपुटा), छेदीली(सुषिरतला), पारा भरी (न्यस्तपारदा), नरम पत्तर से बनी (मृद्वी), बगल कटी (पक्षकटा), गांठ पड़ी डोरी वाली (ग्रंथिमती), मोम भरी, बहुत सी डोरियों वाली (बहुगुणा), आगे झुकी (पुरोनम्रा), हवा से डगमगाती (वातभ्रांता), हल्की (तन्वी), भारी (गुर्वी) तेज हवा में धूल इकट्ठा करने वाली (परुषवात धृतचूर्णा), निर्जीवा और सजीवा। उनकी फूंकें यथा धीमी, जोरदार, बीच से टूटती हुई, फुफकार भरी, तथा सी-सी भरी साभिप्राय होती हैं। वे छल्लेदार धुँवासी, चटकती, चिनगारीदार तथा पहले से ताँबा मिली आग व्यवहार में लाते हैं। प्रश्न करना, विचित्र बातें करना, भीतर की ओर दुपट्टे का पल्ला खींचना, सूरज देखना, हँसना, मक्खी हाँकना, तमाशा देखना, अपनों से खिलवाड़, जलपात्र तोड़ना, बार-बार बाहर जाना उनकी चेष्टाएं। सोना लूटने की उनकी निम्नलिखित जुगते हैं- गढ़े घाट वाले गहने को आग में तपाना, हलकी गोबर की आंच में लवणक्षार के गुनगुने लेप

से कृत्रिम वर्ण के प्रकाशन में बाग्रता एक पलड़े में कान्त लौह लगाने से खाली तराजू भी भरी दिखलाने की कला, लाख भरते समय (प्रतिवद्वेजतुयोग्ये) चुपके से सोने के कण गायब करना, ओप (उज्जवलन) के समय पत्थर पर ज्यादा सोना घिस देना, एक समान विचित्र आभरणों को सफाई से बदल देना, चासनी में मिलावट, खोने और चोरी जाने का बहाना, कमी पूरा करने की माँग तथा सारा माल लेकर चंपत हो जाना।[१३]

अन्तत: कथासरित्सागर का समग्रत: अनुशीलन हमें एक ऐसी सामाजिक संस्कृति का प्रतिबिम्ब उपस्थित करता है जिसमें नैतिक स्तर पतनोन्मुख, भव-भूति-संचयन, आत्मसुख-हेतु ही पूर्ण प्रयासोन्मुखी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। तत्कालीन समाज मे नैतिक मान्यताएँ, परम्परां, आस्थाएँ विश्रृंखलित होती जा रही थीं। सोमदेव ने समाज समग्र प्रतिच्छवित करने का प्रयास तो किया है किन्तु उनकी दृष्टि अशिव पक्ष पर ही विशेषत: केन्द्रित प्रतीत होती है। सर्वाधिक पतन नारी-समाज का प्रतिबिम्बत है जो कदाचित उस काल की नियति बन गयी थी क्योंकि ऐसे ही चित्रण समकालीन साहित्य राजतंरगिणी तथा महाकवि क्षेमेन्द्र की कृतियों- कलाविलास, नर्ममाला, देशोपदेश, वृहत्कथामंजरी में भी है। हां लोकमानस में इहलोक एवं परलोक की कल्पना एवं उसकी आस्था जीवित रही। तीर्थ यात्रा और देवयात्राएं की जाती थीं यहां तक कि तीर्थ स्थानों में प्राण विसर्जित करना श्रेयस्कर माना जाता था। यहां

तक कि शासक वर्ग भी इससे अछूता नहीं था। उनकी ऐसी अवधारणा की पृष्ठभूमि में मनोवैज्ञानिक सत्य भी छिपा हआ है। नरेशों का अधिकांश जीवन कुप्रथाओं के पोषण, अन्यान्य और दुराचार के मध्य व्यतीत होता था। मन में वे अशान्त रहते थे। किये हुए अनाचारों ने ग्लानि को जन्म दिया होगा। उससे मुक्ति के लिए उन्होने आत्महत्याओ को ही श्रयेस्कर समझा होगा। (कथा०/लम्बक २/ तरंग ४/१०६, लम्बक ५/ तरंग २/ ३ तथा लम्बक ६/ तंरग ७/१४०)। कालान्तर में कदाचित् उसने धर्म स्वीकृति ग्रहण कर ली होगी।[१४]

सोमदेव ने कथासरित्सागर में सागर की विविध तरंगों की भांति विविध प्रकृति, वृत्ति समन्वित पुरुष की तद्तदभावी कार्यकलापों के समुच्चय रूप को दृष्टि मे रखकर त्रिगुणात्मक सृष्टि-अनुकूल सत्, रज, तम गुणानुमी पुरुषों- सज्जन, दुर्जन, ओज एवं शौर्य भूमि वीरों आदि सबको चित्रित किया है। कथासरित्सागर इतना विशाल ग्रन्थ है कि उसमें जितनी सीमा तक रमे, उतनी ही भांति-गति से आलोडन करे तब कहीं किसी कथा सीप का उर्जस्थलबिम्ब प्रतिभास देगा। जिसकी रश्मि आभा में समाज का शिव रूप अनावृत्त हो सकेगा। जैसे सभी पुरुष आंख वाले एवं कान वाले होते हैं, सबके मन का आवेग पृथक होता है। जिस प्रकार कुछ जलाशय गले तक जल वाले, कुछ कटि-पर्यन्त जल वाले और कुछ ऐसे होते हैं, जहां चाहे जितनी बार अवगाहन किया जाय, गहराई की अनुमिति असम्भव है- यह तो कथारूप

सरिताओ का आश्रयभूत, सिन्धु है फिर इतनी सहजता से उसका अवगाहन कर मुक्ता संचय कैसे सम्भव है, तात्पर्य यह है कि ग्रन्थ में संकलित आख्यानों में घटनानुक्रम-संगमित और परिवेशगत पात्र के चारित्रिक विश्लेषण मात्र से तत्कालीन समाज के शिवाशिव रूप का विनिश्चय नहीं किया जा सकता।

सन्दर्भ एवं पाद-टिप्पणी

१. क्षेमन्द्र और उनका समाज : डॉ० मोती चन्द्र/पृष्ठ ६९-७०।

२. कथा०/लम्बक १८/ तरंग /१६४

३. कथा०/लम्बक / तरंग /२६

४. कथा०/लम्बक ४/ तरंग १/९०

५. वही/लम्बक २/ तरंग २/८२

६. क्षेमेन्द्र और उनका समाज : डॉ० मोती चन्द/पृष्ठ १०६ कलाविलास/सर्ग ४

७. क्षेमेन्द्र और उनका काव्य : डॉ० मोती चन्द/पृष्ठ ५६-५८ (नर्म माला सर्ग १ और समय रात्रि का/ समय १)

८. क्षेमन्द्र और उनका समाज : डॉ० मोती चन्द्र/पृष्ठ ५५ (कथा विलास /सर्ग ५/१-१८)।

९. क्षेमन्द्र और उनका समाज : डॉ० मोती चन्द्र/पृष्ठ ५४।

१०. वही/(नर्म माला/१४१-१५८)

११. वही/(कलाविलास/सर्ग २/३)

१२. क्षेमन्द्र और उनका समाज : डॉ० मोती चन्द्र/पृष्ठ ६२-६३ (कलाविलास/सर्ग ८/४-१८)।

१३. कथासरित्सागर और भारतीय संस्कृति : डॉ० एस. एन. प्रसाद/पृष्ठ १०९-११०।

मूल तथा सहायक ग्रन्थ

अर्थशास्त्र	-	कौटिल्य कृत (सम्पा ० एवं अनु ०) आर० पी० कांगले तीन खण्डो मे, बम्बई,१९६२, १९७२, १९६५, शामशास्त्री, मैसूर, १९२९
अभिज्ञानशाकुलन्तम्	-	कालिदास कृत (सम्पा ०) शारदा रञ्जन रे, कलकत्तास १९०८
अमरकोश	-	अमरसिह कृत (सम्पा ०) ए० डी० शर्मा तथा एन० जी० सरदेसाई पूना १९४९, गुरुप्रसाद शास्त्री, वाराणसी, १९५०
अभिधानचिन्तामणि	-	हेमचन्द्र कृत, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १९६४ निर्णय सागर प्रेस, शक १८१८
अपराजितपृच्छा	-	भुवनदेव कृत-गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज अं० ११५- १९५०
आख्यांकमणिकोश	-	प्राकृत टेक्स्ट सिरीज, वाराणसी, १९६२,
अलंकारसर्वस्व	-	रुय्यक-शारदा ग्रन्थमाला-१४
अग्निपुराण	-	अनु० आर० एल० मित्रा, तीन खण्ड, १८७६
आर्यञ्जुमूलकल्प	-	अनु०टी० गणपतिशास्त्री, त्रिवेन्द्रम, १९२०
आर्या शप्तशती	-	गोवर्धनाचार्य कृत, काव्यमाला, १८८६
औशनस स्मृति	-	स्मृतीनां समुच्चय: में संकलित (सम्पा०) वी० जी० आप्टे, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली, ग्रन्थाङ्क ४८, पूना, १९२९
औचित्यविचारचर्चा	-	क्षेमेन्द्र कृत-काव्यमाला ६, बम्बई १८८६
कविकण्ठाभरण	-	क्षेमेन्द्र कृत-काव्यमाला ४ बम्बई १८८७, हरिदास संस्कृत सिरीज २४, बनारस, १९३३
कलाविलास	-	क्षेमेन्द्र कृत काव्यमाला प्रथम
कथासरित्सागर	-	सोमदेव कृत (अनु०) ट्वायनी, लंदन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् , पटना
कथासरित्सागर (खण्ड १)	:	हिन्दी अनुवादक श्री केदारनाथ शर्मा सारस्वत (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् , पटना, सन् १९६०)

कथासरित्सागर (खण्ड २) : हिन्दी अनुवादक श्री केदारनाथ शर्मा सारस्वत बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, सन् १९६०

कथासरित्सगार (खण्ड ३) : हिन्दी अनुवादक, श्री प्रफुल्ल चन्द्र ओझा 'मुक्त' (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना १९६३ संस्कृति संस्थापना, बरेली सन् १९६६)

कर्णसुन्दरी - बिल्हण कृत अनु० दुर्गाप्रसाद, के० पी० परब, बम्बई १८८८

कथाकोषप्रकरण - जिनेश्वरसूरी कृत, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, १९४९

कर्पूरमञ्जरी - राजशेखर कृत (अनु०) स्टेन कोनो, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी १९०१

कामसूत्र - वात्स्यायन कृत (सम्पा०) गोस्वामी दामोदर शास्त्री, बनारस, १९२९ अनु० देवदत्त शास्त्री, वाराणसी १९६४, सम्पा० दुर्गाप्रसाद, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, द्वितीय संस्करण

कादम्बरी - बाणभट्ट कृत निर्णयसागर प्रेस, संस्करण १९४८

कात्यायनस्मृति - व्यवहार पर (सम्पा०) पी० वी० काणे, बम्बई १९३३

कप्फिणाभ्युदय - शिवस्वामी कृत (अनु०) गौरीशंकर, लाहौर; १९३७

कामन्दकनीतिसार - कामन्दक कृत (सम्पा०) टी० गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम १९२९ ज्वाला प्रसाद मिश्र, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सं० २००९

काव्यमीमांसा - राजशेखर कृत-गायकवाड़ ओरिएन्टल सिरीज

काव्यप्रकाश - मम्मट कृत-चौखम्बा संस्कृत सिरीज, १९२७

काव्यानुशासन - हेमचन्द्र कृत-खण्द दो, श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई, १९३८

कीर्तिकौमुदी - सोमेश्वर कृत (अनु०) ए० वी० कथावटे, गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल बुक डिपो, बम्बई, १८८३

कृत्यकल्पतरु - लक्ष्मीधर कृत, दानकाण्ड (१९२४), तीर्थविवेचनकाण्ड (१९४२) राजधर्मकाण्ड (१९४३), गृहस्थकाण्ड (१९४४) मोक्षकाण्ड (१९४५) ब्रह्मचारीकाण्ड (१९४८), श्राद्धकाण्ड (१९५०) ; नियतकलाकाण्ड (१९५३) गायकवाड़ ओरिएंटल सिरीज, बड़ौदा

कुमारपालचरित - जयसिंह कृत, निर्णयसागर प्रेस; १९२६

कूर्मपुराण - बिब्लियोथेका इण्डिका, एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल, १९९० (सम्पा०) आनन्दस्वरूप गुप्त, काशिराजन्यास, वाराणसी, १९७२

कुट्टनीमतम् - दामोदरगुप्त कृत (अनु०) पं० दुर्गाप्रसाद, काव्यमाला ३

खण्डनखण्डखाद्यम् - श्रीहर्ष कृत (अनु०) मदनमोहन लाल, बनारस, १९१७

गृहस्थरत्नाकर - चण्डेश्वर, कलकत्ता, १९२८

गीतगोविन्द - जयदेव, निर्णयसागर प्रेस, १९२९, दिल्ली १९५५

गौतम धर्म सूत्राणि - (अनु०) यू० सी० पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत सिरीज, १९६६

चतुर्वर्गसंग्रह - क्षेमेन्द्र कृत-(अनु०) पं० दुर्गाप्रसाद एवं के० पी० परब, काव्यमाला ५,बम्बई १८८८

चतुर्वर्गचिन्तामणि - हेमाद्रि कृत-एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल, १९२९

चौरपञ्चाशिका - बिल्हण कृत-(अनु०) एस० एन० तडपत्रिकर, ओरिएन्टल बुक एजेन्सी, १९४६

चारुचर्याशतक - क्षेमेन्द्र कृत-(अनु०) पं० दुर्गाप्रसाद एवं के० पी० परब, काव्यमाला-२, बम्बई १८८६

जातकमाला - आर्यशूर कृत (सम्पा०) पी०एल० वैद्य, बुद्धिस्ट संस्कृत टेक्स्ट्स, सं० २१, दरभंगा, १९५९

तंत्रलोक - अभिनवगुप्त कृत खण्ड ६ (अनु०) पं० मुकुन्दरामशास्त्री कश्मीर सिरीज ऑव टेक्स्टेस ऐण्ड स्टडीज, २३, बम्बई १९१८

तंत्रवार्तिक - कुमारिल कृत, बनारस संस्करण

तत्त्वसंग्रह - कमलशील कृत- गायकवाड़ ओरिएंटल सिरीज, सं० [illegible], १९३९

दशावतारचरित - क्षेमेन्द्र कृत (अनु०) पं० दुर्गाप्रसाद एवं के० पी० परब, काव्यमाला २६, बम्बई १८९१

दर्पदलन - क्षेमेन्द्र कृत-काव्यमाला ६ बम्बई १८९०

देशोपदेश - क्षेमेन्द्र कृत-(अनु०) पं० मधुसूदन कौल शास्त्री, कश्मीर सं० टे० सि० पूना, १९२३

दाकार्णव - अनु०एन० एस० चौधरी, कलकत्ता संस्कृत सिरीज, सं० [illegible], १९३५

दशकुमारचरित - दण्डिन कृत (सम्पा०) एस० आर० काले बम्बई १९१७

दायभाग - जीमूतवाहन कृत द्वितीय संस्करण सिद्धेश्वर प्रेस, कलकत्ता १८९३

देशीनाममाला - हेमचन्द्र कृत (अनु०) आर० पिस्चल, बाम्बे संस्कृत सिरीज, सं० [illegible] १९३८

दोहाकोश - सिद्ध सरहपाद कृत (अनु०) पी० सी० बागची, यूनिवर्सिटी ऑव कलकत्ता १९३५

गयाश्रय महाकाव्य - हेमचन्द्र कृत दो खण्डों में, बाम्बे संस्कृत सिरीज, १९१५

देवलस्मृति - सम्पा० वी० जी० आप्टे, आनन्दाश्रय संस्कृत ग्रन्थावली ग्रन्थाङ्क ४८, पूना १९२९

ध्वन्यालोक - आनन्दवर्धन कृत, बम्बई १९१७

नर्ममाला - क्षेमेन्द्र कृत (अनु०) पं० मधूसूदन कौल शास्त्री, कश्मीर संस्कृत टेक्स्ट्स सिरीज, पूना; १९२३

नीतिकल्पतरु - क्षेमेन्द्र कृत (अनु०) वी० पी० महाजन भण्डारकर ओरिएंटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना १९६५

नीलमतपुराण - अनु० वेद कुमारी जे० के० ऐकडमी ऑव आर्ट, कल्चर ऐण्ड लैन्ग्वेज श्रीनगर, १९९८

नारदस्मृति - अनु० सैक्रेड बुक ऑव द ईस्ट जिल्द ३३ ऑक्सफोर्ड १८८९ (पुनर्मुद्रण) दिल्ली १९७७

नैषधीयचरितम् - श्रीहर्ष कृत-निर्णयसागर प्रेस, १९३३

नारदीयमनुसंहिता - अनु० के० शम्बशिवशास्त्री, त्रिवेन्द्रम सिरीज, १९२९

नरसिंह पुराण - बम्बई १९११

नाट्यशास्त्र - भरत कृत (टीका) अभिनवगुप्त, गायकवाड ओरिएंटल सिरीज, सं० [illegible]

नवसाहशाङ्कचरित - पद्मगुप्त कृत-बाम्बे संस्कृत सिरीज सं० [illegible] १८९५

नीतिवाक्यामृत - सोमदेव कृत-मानिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, बम्बई १८८७-८८

नीतिसार - कामन्दक कृत (अनु०) आर० मित्रा, कलकत्ता १८८४

नीतिशतक - भर्तृहरि सिंधी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई १९४८

पञ्चतन्त्र - (सम्पा०) एस० पी० शास्त्री बनारस १९३८

पञ्चसिद्धान्तिका - वराहमिहिर कृत (सम्पा०) जी- थिबौत एवं सुधारक द्विवेदी, वाराणसी १८८९

पराशरस्मृति - (सम्पा०) श्री वासुदेव, वाराणसी, १९६८

परमार्थसार - अभिनवगुप्त कृत (सम्पा० एवं अनु०) एल० डी० बर्नेट-जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, १९१०

पद्मपुराण - सृष्टि काण्ड-आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज, पूना, १८९४

पराशरस्मृति - माधवाचार्य की टीका-एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल, कलकत्ता

परिशिष्टपर्वन - हेमचन्द्र कृत अनु० एच० जैकोबी, कलकत्ता, १८८३

पवनदूत	-	धोयी कृत संस्कृत साहित्य परिषद ग्रन्थमाला, स० १३ कलकत्ता, १९२६
प्रबन्ध चिन्तामणि	-	मेरुतुंग कृत अनु० के० एस० शास्त्री, गवर्नमेन्ट पब्लिकेशन त्रिवेन्द्रम, १९३६, आर० एस० मिश्रा, बनारस, १९५५
प्राचीन गुजरात काव्यसंग्रह	-	गायकवाड़ ओरिएंटल सिरीज, सं० छ्छ, १९२०
प्राकृत व्याकरण	-	हेमचन्द्र-बम्बई १९०५
पृथ्वीराजरासो	-	चन्दवरदाई कृत अनु० एम० वी० पाण्ड्या एवं श्याम सुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी ग्रन्थमाला सिरीज, बनारस, १९१३
पृथ्वीराजविजय	-	जयानक कृत (अनु०) जी० एच० ओझा एवं सी० गुलेरी, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, १९४१, बड़ौदा, १९२०
पुरुष परीक्षा	-	विद्यापति कृत-दरभंगा संस्करण
बोधिसत्त्वावदान कल्पलता	-	क्षेमेन्द्र कृत (अनु०) शरतचन्द्र दास एवं पं० एच० एम० विद्याभूषण बिब्लियोथेका इण्डिका, खण्ड प्रथम कलकत्ता, १८८८
बोधिसत्त्वभूमि	-	शङ्करभाष्य सहित (सम्पा०) अनन्ताकृष्ण शास्त्री, बम्बई, १९३८
ब्रह्माण्ड पुराण	-	(सम्पा०) जे० एल० शास्त्री दिल्ली, १९७३, बेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई १९१३
वृहज्जातक	-	वराहमिहिर कृत (सम्पा०) सीताराम झा, बनारस, १९३४ (सम्पा०) बी० वी० रमन, बंगलौर, १९५७
वृहत्कथाशलोक संग्रह	-	बुधस्वामिन् कृत वी० एस० अग्रवाल गरा अध्ययन तथा पी० के० अग्रवाल गरा मूल पाठ सहित सम्पादित, वाराणसी, १९७४
वृहत्संहिता	-	वराहमिहिर कृत, भट्टोत्पल कृत भाष्य सहित (सम्पा०) सुधाकर द्विवेदी दो खण्डों में, बनारस १८९५-९७
बृहस्पतिस्मृति	-	(सम्पा०) के० वी० आर० आयंगर, गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज, बड़ौदा, १९४१
बृहत्कथामञ्जरी	-	क्षेमेन्द्र कृत, काव्यमाला ६९,१९०१
वृहत्कथाकोश	-	हरिषेण कृत-सिंघी जैन ग्रन्थमाला सं० १७, ए० एन० उपाध्ये, बम्बई १९४३
भोजप्रबन्ध	-	बल्लाल कृत (अनु०) जे० एल० शास्त्री, पटना, १९६२
भविष्यपुराण	-	बेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई संस्करण

भागवतपुराण - गीता प्रेस, गोरखपुर वि० सं० २०११

मत्स्यपुराण - (सम्पा०) हरिनारायण आण्टे, सैक्रेड बुक्स ऑव द हिन्दूज सिरीज, पूना, १९०७

मनुस्मृति - कुल्लूक कृत महाभाष्य (सम्पा०) पं० गोपाल शास्त्री नेने वाराणसी १९७० भारुचि कृत भाष्य (सम्पा०) जी० एल० झा एशियाटिक सोसा० बंगाल, १९३२

महाभारत - सम्पा० वी० एस० सुक्थंकर एवं एस० के० बेल्वल्कर, भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना। गीताप्रेस गोरखपुर (तृतीय संस्करण) सं० २०२६

मार्कण्डेय पुराण - क्षेमराजच श्रीकृष्ण दास गरा प्रकाशित बम्बई: १८६२

मुद्राराक्षस - विशाखदत्त कृत (सम्पा०) आर० के० ध्रुव, पूना १९३०

मूलसर्वास्तिवाद विनयवस्तु - (सम्पा०) एस० बागची, दो खण्ड, बुद्धिस्ट संस्कृत टेक्स्ट्स संख्या-१६, दरभंगा, १९६७

मालिनीविजयोत्तरतंम् - अनु० पं० मधुसूदन कौल, कश्मीर संस्कृत टेक्स्ट्स सिरीज-३७ बम्बई १९२२

मानसार - अनु० पी० के० आचार्य, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, १९३३

मानसोल्लास - दो खण्ड,गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज, १९२६ एवं १९३९

मिताक्षरा - विज्ञानेश्वर कृत-निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९०९, सैक्रेड ब्रुक्स ऑव द हिन्दूज सिरीज, इलाहाबाद १९१८

महावीरचरितम् - भवभूति कृत (अनु०) काशीनाथ, बम्बई १९०१

महाराज पराजय - यशपाल-गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज सं० नवम

यशस्तिलकचम्पू महाकाव्य - सोमदेव सूरी कृत (सम्पा० एवं अनु०) सुन्दरलाल शास्त्री वाराणसी, १९६०

युक्तिकल्पतरु - भोज कृत-अनु० ईश्वरचन्द्रशास्त्री, कलकत्ता, १९१७

याज्ञवल्क्यस्मृति - मिताक्षरा भाष्य सहित (सम्पा०) नारायण शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सिरीज वाराणसी (अनु०) उमेश चन्द्र पाण्डेय (द्वितीय संस्करण) वाराणसी १९७७

योगयात्रा - वराहमिहिर कृत (सम्पा०) जे० एल० शास्त्री, लाहौर १९४४

रघुवंश - कालिदास कृत (सम्पा०) के० पी० परब, बम्बई १८८२

राजतरङ्गिणी - कल्हण कृत (सम्पा०) विश्वबन्धु दो खण्ड; होशियारपुर, १९६३, १९६५

(अनु०) आर० एस० पण्डित, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद १९३५

(अनु०) दुर्गाप्रसाद बम्बई; १८९२-९६

(अनु०) रामतेज शास्त्री पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत सिरीज

(अनु०) एम० ए० स्टेइन, बम्बई १८९२, बेस्टमिनिस्टर १९००, अनु० रघुनाथ सिंह

राजेन्द्रकर्णपूर - शम्भु कृत-काव्यमाला १

रामचरित - सन्ध्याकरनदी कृत-अनु० एच० जी० शास्त्री कलकत्ता १९१०

रम्भा मञ्जरीनाटिका - नवचन्द्रसूरी कृत-निर्णय सागर प्रेस; १८८९

रसरत्नसमुच्चय - वाणभट्ट कृत आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज पूना- सं० १९

रसार्णव - अनु० पी० सी० रे० १९१०

रूपशतंकम् - वत्सराज कृत गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज सं० ८;१९१८

रतिरहस्य - कोकक-(अनु०) सदानन्द शास्त्री, लाहौर

लघुकाव्यसंग्रह - क्षेमेन्द्र कृत (अनु०) आर्येन्द्र शर्मा, संस्कृत ऐकडमी सिरीज सं० ७, हैदराबाद १९६९

लोकप्रकाश - क्षेमेन्द्र कृत (अनु०) पं० जगद्धर जादू शास्त्री, कश्मीर संस्कृत टेक्स्ट्स सिरीज ७५, श्रीनगर १९४७

लटकमेलक - सांखधर कृत निर्णय सागर प्रेस: १८८९

लेखपद्धति - गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज, १९२५

लीलावती - भाष्कराचार्य कृत (अनु०) पं० राधाबल्लव, कलकत्ता, शक १८३५

लिङ्गपुराण - अनु० जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता १८८५

विक्रमाङ्कदेवचरित - बिल्हण कृत (अनु०) जी- ब्यूहलर, बाम्बे संस्कृत सिरीज सं० १४, १८७५, पं० विश्वनाथ शास्त्री भारगज, बनारस, १९६४

विष्णु पुराण - गीताप्रेस, गोरखपुर, वेकटेश्वर प्रेस संस्करण, बम्बई

वायु पुराण - (सम्पा०) आर० एल० मित्र, दो खण्ड; कलकत्ता, १८८०-८८, आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज, पूना, १९०५

विष्णुधर्मोत्तरपुराण - वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई १९१२

विवादरत्नाकर - चण्डेश्वर कृत:, कलकत्ता १८८७

विविध तीर्थकल्प - मुनि जिनविजय बम्बई १९५६

वीसलदेव रासो - (अनु०) माता प्रसाद गुप्त एवं अगरचन्द्र नहत, १९५३

वीर मित्रोदय - मित्रमिश्र कृत-चार खण्ड चौखम्बा संस्कृत सिरीज, बनारस १९१३

वामनपुराण - वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई १९२९

विजयन्ती - यादव प्रकाश कृत (अनु०) गुस्तव अपर्ट, गवर्नमेन्ट प्रेस, मद्रास, १८९३

वसन्तविलास - बालचन्द्र सूरी कृत-गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज सं० ᳵ १९१७

शिशुपालवध - माध कृत- हिन्दी साहित्य सम्मेलन संस्करण वि० सं० २००९

शुक्रनीति - अनु० बी० के० सरकार, पाणिनि ऑफिस, इलाहाबाद १९१४

श्रीकण्ठचरित - मंखक कृत काव्यमाला ३ निर्णयसागर प्रेस १८८७

समयमातृका - क्षेमेन्द्र कृत-काव्यमाला सिरीज १० बम्बई १९२५

सेव्यसेवकोपदेश - क्षेमेन्द्र कृत-काव्यमाला २ बम्बई १८८६

सुवर्त्ततिलक - क्षेमेन्द्र कृत-काव्यमाला २, बम्बई १८८६

साधनमाला - खण्ड दो (अनु०) वी० भट्टाचार्य, गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज, सं० ᳵ, १९२८

सदूक्तिकर्णामृत - श्रीधरदास कृत- द पंजाब संस्कृत बुक डिपो, लाहौर १९३०

समरैच्चकहा - हरिभद्रसूरी कृत (अनु०) एच० जैकोबी कलकत्ता; १९२६

समरांगणसूत्रधार - भोज कृत-टी० गणपतिशास्त्री, गायकवाड़, ओरिएण्टल सिरीज सं० ᳵ, १९२४

सन्देश रासक - अब्दुल रहमान कृत-सिंधी जौन ग्रंथमाला, १९४५

सङ्गीत रत्नाकर - सारङ्गदेव कृत-दो खण्ड आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज, १८९६

सिद्धान्तशिरोमणि - भाष्कराचार्य कृत नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ; १९११

स्कन्दपुराण - वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई

स्मृतिचन्द्रिका - देवाणभट्ट कृत (अनु०) जे० आर० घारपूरे, बम्बई १९१८

स्मृतिनामसमुच्चयः - आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज सं० ४८,१९०५ अनु० बी० जी० आप्टे, पूना १९२९

श्री भाष्य - रामानुज कृत निर्णयसागर प्रेस; १९१४

श्रीमद्देवीभागवतम् - पं० पुस्तकालय काशी वि० सं० २०१९

सुभाषितरत्नकोश - अनु० डी० डी० कौशाम्बी एवं वी० वी० गोखले, हर्बर्ट यूनिवर्सिटी, प्रेस, १९५७

सूक्तिमुक्तावली - जल्हण कृत अनु० ई० कृष्णामाचार्य, बड़ौदा, १९३८

हरविजय - रत्नाकर अनु० पं० दुर्गाप्रसाद एवं के० पी० परब, काव्यमाला-२२, बम्बई १८९०

हरिवंशपुराण - भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९६२

हर्षचरित - बाणभट्ट कृत (सम्पा०) पी० वी० काणे, बम्बई १९१८, (सम्पा०) ईश्वरचन्द्र विद्यासागर; कलकत्ता, १८८२

हिन्दी काव्यधारा - अनु० राहुल सांकृत्यायन, किताबमहल, इलाहाबाद, १९४५, हिस्ट्री ऑव द राइज ऑव द मुहम्डन पॉवर इन इण्डिया, खण्ड प्रथम ब्रिग्स जे; लांगमैन्स एवं ग्रीन; १८२९

त्रिशष्टिशलाका पुरुषचरित महाकाव्य - हेमचन्द्र कृत-श्री जैन आत्मानन्द शताब्दी सिरीज सं० VII १९२६ एवं VIII १९५०

विदेशी यात्रियों के विवरण

इलियट एच० एम० एवं डाउसन जे० - हिस्ट्री ऑव इण्डिया ऐज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स ८ खण्डों में लंदन १८६६-७७, छः खण्ड अलीगढ़ से एम० हबीव के प्रस्तावना के साथ।

कास्मस इण्डिकोप्लस्टस - क्रिश्चियन टोपोग्राफी ऑव कास्मस (अंग्रेजी अनु०) जे० डब्ल्यू० मैक्रिण्डल, इण्डियाच ऐज डेस्क्राइब्ड इन क्लासिकल लिटरेचर, वेस्टमिस्टर, १९०१

गाइल्स एच० ए० - द ट्रेवेल्स ऑव फाह्यान अथवा रिकार्डस ऑव बुद्धिस्टिक किंगडम्स, कैम्ब्रिज, १९२३

बील० एस० - (अनु०) ट्रेवेल्स ऑव फाह्यान ऐण्ड सुङ्ग्युन, लंदन १८६९

- बुद्धिस्ट रेकार्ड ऑव द वेस्टर्न वर्ल्ड (दो खण्ड) लंदन १९०६, दिल्ली १९६०

- लाइफ ऑव ह्वेनसांग : लंदन १९११,दिल्ली, १८७३

महेश प्रसाद - सुलेमान सौदागर, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वि० सं० १९७८

यूले०, सर हेनरी - द बुक ऑव सर मार्को पोलो (अनु० एवं संपा०) सर हेनरीयूले दो खण्ड, लंदन १९०३, १९२०

लेग्गे, जे० एच० - रेकार्ड ऑव बुद्धिस्टिक किंगडम्स बीइंग ऐन एकाउन्ट ऑव द चाइनीज मॉन्क फाह्यान्स ट्रेवेल्स, ऑक्सफोर्ड १८८६

वाटर्स, टी० - ऑन युवान च्वांग्स ट्रेवेल्स इन इण्डिया (सम्पा०) टी० डब्ल्यू० राइस डेविड्स एवं एस० डब्ल्यू० बुशेल दो खण्डो मे, लंदन १९०४, १९०५

सचाऊ, ई० सी० - अलबेरुनीज इण्डिया, दो खण्ड, लंदन १९१०

अभिलेख

आयंगर, के० वी० एस० - साउथ इण्डियन इंस्क्रिप्शंस, दो खण्डों मे, मद्रास, १९२८, १९३३

उपाध्याय, वासुदेव - गुप्त अभिलेख, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, १९७४

गोयल, श्री राम - मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युगीन अभिलेख, मेरठ, १९८७

थपलियाल, के० के० - इंस्क्रिप्शंस ऑव द मौखरीज, लेटर गुप्ताज, पुष्यभूतिज ऐण्ड यशोवर्मन् ऑव कन्नौज, दिल्ली, १९८५

पीटरसन, पी० - ए क्लेक्शन ऑव प्राकृत ऐण्ड संस्कृत इंस्क्रिप्शंस भावनगर आर्क्या डिपार्टमेन्ट, भावनगर, १९०५

फ्लीट, जे० एफ० - कार्पस इंस्क्रिप्शनम इण्डिकेरम, खण्ड-३, इंस्क्रिप्शंस, ऑव द अर्ली गुप्ता किंग्स ऐण्ड देयर सक्सेसर्स, वाराणसी, १९७०

भण्डारकर डी० आर० - 'इंस्क्रिप्शंस ऑव द अर्ली गुप्ता किंग्स ऐण्ड देयर सक्सेसर्स' इपि० इण्डि०, खण्ड १९ एवं २२ में परिशिष्ट के रूप मे संकलित।

मिराशी, वी० वी० - कार्पस इंस्क्रिप्शनम इण्डिकेरम, खण्ड-४ इंस्क्रिप्शंस ऑव द कलचुरि चेदि एरा, ओटकमण्ड, १९५५, खण्ड-५ इंस्क्रिप्शंस ऑव द वाकाटकाज, ओटकमण्ड; १९६३

मुखर्जी, आर० आर० एवं - (सम्पा०) कार्पस ऑव बंगाल इंस्क्रिप्शंस, कलकत्ता, १९६७ सरकार, डी०

मैती, एस० के० सी०- सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस बियरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री ऐण्ड सिविलिजेशन प्रथम खण्ड (द्वितीय संशोधित संस्करण) कलकत्ता, १९६५ द्वितीय खण्ड-दिल्ली, १९८३

वोगेल, जे० - (सम्पा०) एन्टीविक्टींज ऑव द चम्बा स्टेट, कलकत्ता, १९११

अल्टेकर, ए० एस० - कैटलॉग ऑव द गुप्ता गोल्ट क्वायन्स इन द बयाना होर्ड, बम्बई, १९५४

- गुप्तकालीन मुद्राएँ, पटना, १९४५

- द क्वायनेज ऑव द गुप्ता इम्पायर, बनारस, १९५७

एलन, जे० - कैटलॉग ऑव द क्वायन्स ऑव द गुप्ता डायनेस्टींज ऐण्ड ऑव शशाङ्क, द किंग ऑव गौड़, लन्दन, १९१४

- कैटलॉग ऑव द क्वायन्स ऑव ऐन्शिएन्ट इण्डिया, लन्दन, १९३६

कनिंघम, ए० - क्वायन्स ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डिया फ्राम दे अर्लिएस्ट टाइम्स डाउन टू दे सेवन्थ सेन्चुरी ए० डी०, लंदन, १८९१

- क्वायन्स ऑव मेडिवल इण्डिया फ्राम दे सेवन्थ सेन्चुरी डाउन टू द मुहम्डन कन्क्वेस्ट, लन्दन, १८९४

गोपाल एल० - अर्ली मेडिवल क्वायन-टाइप्स ऑव नार्दर्न इण्डिया, सं० १२

ब्राउन, सी० जे० - कैटलॉग ऑव द क्वायन्स ऑव गुप्ताज, मौखरीज, इटसेट्रा इन द प्राविन्शियल म्यूजियम, लखनऊ, इलाहाबाद, १९२०

- क्वायन्स ऑव इण्डिया, कलकत्ता १९२२

रैप्सन, ई० जे० - इण्डियन क्वायन्स, स्ट्रासबर्ग, १८९७

स्मिथ, वी० ए० - कैटलाग ऑव क्वायन्स इन इण्डिया म्यूजियम, कलकत्ता

पाण्डुलिपि-तालिका

- ए डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग ऑव मनुस्क्रिप्ट्स संस्कृत सिरीज इन द जैन भण्डार्स ऐट जैसलमेर, बड़ौदा, १९२३

- कैटचलाग ऑव मनुस्क्रिप्ट्स इन द इण्डिया आफिस लाइब्रेरी; लन्दन

- कैटलाग ऑव मनुस्क्रिप्ट्स इन द लाइब्रेरी ऑव पटना खण्ड ६ गायकवाड़ ओरिएंटल सिरीज, सं० [illegible]

- डिस्क्रिप्टिव कैटलाग ऑव मनुस्क्रिप्ट्स इन मिथिला-खण्ड प्रथम (अनु०) के० पी० जायसवाल एवं ए० बनर्जी शास्त्री

अग्रवाल वी० एस० - हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पटना, १९६४

- वृहत्कथाश्लेकसंग्रह-ए स्टडी वाराणसी; १९७४

- भारत की मौलिक एकता, इलाहाबाद, वि० सं० २०११
- इण्डिया ऐज नोन टू पाणिनि-यूनिवर्सिटी आव लखनऊ, १९५३

अल्टेकर ए० एस० - द पोजीशन ऑव वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन द्वितीय संस्करण बनारस १९५६
- स्टेट ऐण्ड गवर्नमेन्ट इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, बनारस, १९४९
- सोर्सेज ऑव हिन्दू धर्म; शोलापुर; १९५२
- द विलेज कम्यूनिटीज इन वेस्टर्न इण्डिया, ऑक्सफोर्ड प्रेस, १९२७

अशरफ के० एम० - लाइफ ऐण्ड कण्डीशन ऑव द पीपुल ऑव हिन्दुस्तान द्वितीय संस्करण, नई दिल्ली; १९७०

आप्टे, बी० एन० - सोशल ऐण्ड रिलिजस लाइफ इन दे गृह्यसूत्राज, बम्बई, १९५४

आयंगर के० बी० आर० - आस्पेक्ट्स ऑव ऐन्सिएण्ट इण्डियन इकनॉमिक थाट, बनारस, १९३४
- सम आस्पेक्ट्स ऑव हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ एकार्डिंग टु धर्मशास्त्र, बड़ौदा, १९५२

ओझा के० सी० - द हिस्ट्री ऑव फारेन रूल इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद, १९६८ हिस्टारिकल सर्वे ऑव नार्थ वेस्टर्न इण्डिया (ई० पू० ६००-७०० ई०) इ० वि० वि०

ओम प्रकाश - अर्ली इण्डियन लैण्ड ग्रान्ट्स ऐण्ड स्टेट इकॉनमी, इलाहाबाद, १९८८

ओम प्रकाश - फूड एण्ड ड्रिंक्स इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९६१
- प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, दिल्ली, १९८६

'प्रसाद' डॉ० एस० एन० - कथासरित्सागर तथा भारतीय संस्कृत (चौखम्बा ओरियण्डलिया, वाराणसी, सन् १९७८)

'प्रसाद'ओझा, आदित्य - प्राचीन भारत में सामाजिक स्तरीकरण (३००-६०० ई०) इलाहाबाद, १९९२

अच्छे लाल - प्राचीन भारत में कृषि, वाराणसी; १९८०

उपाध्याय वी० - द सोशियो रिलिजस कण्डीशन्स ऑव नार्दर्न इण्डिया (७००-१२०० ई०) वाराणसी, १९६४

उपाध्याय, एन० - तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य, काशी वि० सं० २०१५

उपाध्याय जी० पी० - ब्राह्मणज इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९७९

उपाध्याय, बी० एस० - गुप्तकाल एक सांस्कृतिक अध्ययन, लखनऊ १९८९

- भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण, नई दिल्ली, १९४३

- इण्डिया इन कालिदास; इलाहाबाद; १९४७

उडगॉवकर, पद्मा बी० - द पालिटिकल इन्स्टीट्यूशन्स ऐण्ड एडमिनिस्ट्रेशन ऑव नार्दर्न इण्डिया' ड्यूरिंग मेडिवल टाइम्स (७५०-१२०० ई०) दिल्ली, १९६९

ईश्वरी प्रसाद - हिस्ट्री ऑव मेडिवल इण्डिया- इलाहाबाद, १९२५

इलियट सी० - हिन्दूइज्म, ऐण्ड बुद्धिज्म खण्ड घ-छ्छ, लंदन, १९२१, १९६२

काणे, पी० वी० - हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र, ५ खण्डो मे, पूना, १९३०

- धर्मशास्त्र का इतिहास (हिन्दी अनु०) अर्जुन चौबे काश्यप, हिन्दी समिति, लखनऊ

कामेश्वर प्रसाद - सिटीज, क्राफ्ट्स ऐण्ड कामर्श अण्डर द कुषाणाज, दिल्ली, १९८१

कीथ, ए० बी० - ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर, दिल्ली, १९७३

- संस्कृत ड्रामा, ऑक्सफोर्ड; १९२४

- रिलिजन ऐण्ड फिलॉसफी ऑव द वेद, हार्बर्ट ओरिएंटल सिरीज

कुप्पूस्वामी, बी० - सोशल चेन्ज, दिल्ली, १९७७

केतकर, ए० बी० - द हिस्ट्री ऑव कास्ट इन इण्डिया, न्यूयार्क, १९०९

कौन्जे, एडवर्ड - बुद्धिज्म, आक्सफोर्ड, १९५३

कौशाम्बी, डी० डी० - ऐन इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑव इण्डियन हिस्ट्री, बम्बई, १९५६

- ओरिजिन्स ऑव फ्यूडिलिज्म इन कश्मीर १८०४-१९५४

- द कल्चर ऐण्ड सिविलाइजेशन ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डिया इन हिस्टारिकल आउटलाइन, लन्दन १९६५

कौल, जी० एल० - कश्मीर देन ऐण्ड नाऊ श्रीनगर- १९७२

- कश्मीर थ्रू द ऐजेज, श्रीनगर, सातवां संस्करण, १९६३

कपूर, एम० एल० - इमीनेन्ट रूलर्स ऑव एन्शिएण्ट कश्मीर, दिल्ली, १९७५

- स्टडीज इन हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर ऑव कश्मीर, जम्मू; १९७६

काक, आर० सी० - ऐन्शिएण्ट मानुमेन्ट्स ऑव कश्मीर, लन्दन, १९३३, नई दिल्ली, १९७१

- एन्टीक्विटीज ऑव वमोली ऐण्ड रामनगर (जे० के० स्टेट), दिल्ली १९७२
- हैण्डबुक ऑवद आर्क्यालॉजिकल ऐण्ड न्यूमिसमेटिक सेक्सन्स ऑव द श्री प्रतापसिंह म्यूजियम, श्रीनगर, कलकत्ता, शिमला, १९२३

कोले, एच० एच० - इलुस्ट्रेशन्स ऑव ऐन्शिएण्ट बिल्डिंग्स इन कश्मीर, लंदन, १८६९

कुमारस्वामी ए० के० - सती,लन्दन, १९१३

कॉलवॉर्न, आर० - फ्यूडलिज्म इन हिस्ट्री, प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी, प्रेस, १९५६

क्रूक, डब्ल्यू० - रिलिजन ऐण्ड फोल्कलोर ऑव नार्दर्न इण्डिया, आक्सफोर्ड, १९२५

कनिंघम, ए० - एन्शिएण्ट ज्यॉग्राफी ऑव इण्डिया, अनु० रामकृष्ण द्विवेदी इलाहाबाद,

कंगले, आर० पी० - द कौटिल्य अर्थशास्त्र, बम्बई, १९६५

कृष्णामाचारियर, एम० - हिस्ट्री ऑव क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर

क्रैमरिच, स्टेला - द आर्ट ऑव इण्डिया, लन्दन, १९५४

खोसला, सरला - गुप्ता सिविलाइजेशन, दिल्ली, १९८२

गांगुली, डी० के० - द इम्पीरियल गुप्ताज ऐण्ड देअर टाइम्स, नई दिल्ली, १९८७

गुप्त, पी० एल० - द इम्पीरिलय गुप्ताज, खण्ड ६, वाराणसी, १९७४

गुप्ते, बी० ए० - हिन्दू हॉलीडेज ऐण्ड सेरेमानियल्स, कलकत्ता, १९१९

गंहर, जे० एन० एवं पी० एन० - बुद्धिज्म इन कश्मीर ऐण्ड लद्दाख, नई दिल्ली, १९५६

गियर्सन, जी० ए० - लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव इण्डिया, दिल्ली १९६८

गिब्स, एम० - फ्यूडल आर्डर, लन्दन, १९४९

गोपाल, लल्लनजी - द इकानामिक लाइफ ऑव नार्दर्न इण्डिया, वाराणसी, १९६५
- आस्पेक्ट्स ऑव हिस्ट्री ऑव एग्रीकल्चर इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, वाराणसी, १९८०

गोयल, एस० आर० - प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, इलाहाबाद, १९६९

गांगुली, डी० सी० - हिस्ट्री ऑव द परमार डाइनेस्टी, ढाका, १९३३

गौड़, मनोहरलाल - आचार्य क्षेमेन्द्र, अलीगढ़, १९५५

घुर्ये, जी० एस० - कास्ट ऐण्ड क्लास इन इण्डिया, द्वितीय संस्करण, बम्बई, १९५७

- फेमिली ऐण्ड किन इन इण्डो-यूरोपियन कल्चर, बम्बई, १९६२

- इण्डियन कस्टम, बम्बई, १९५१

घोष, ए० - द सिटी इन अर्ली हिस्टारिकल इण्डिया, शिमला, १९७३

घोष, एन० एन० - अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया, इलाहाबाद, १९६०

घोषाल, यू० एन० - द एग्रेरियन सिस्टम इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९३०

- द बिगनिंग ऑव इण्डियन हिस्टोग्राफी ऐण्ड अदर एसेज, कलकत्ता, १९४४

- हिन्दू पॉलिटिकल थियरी, मद्रास, १९२७

- हिन्दू ऑव हिन्दू पब्लिक लाइफ, कलकत्ता, १९४५

- स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर, १९५७

- कन्ट्रीब्यूशन्स टू द हिस्ट्री ऑव द हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम, कलकत्ता, १९२९

घोष, बी० के० - हिन्दू लॉ ऐण्ड कस्टम्स, कलकत्ता, १९२८

चकलादार, एच० सी० - सोशल लाइफ इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता , १९३०

चक्रवर्ती, हरिपद - इण्डिया ऐज रिफ्लेक्टेड इन द इंस्क्रिप्शंश ऑव गुप्ता पीरियड दिल्ली, १९७८

- ट्रेड ऐण्ड कामर्श इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९६६

चट्टोपाध्याय, ए० के० - स्लेवरी इन इण्डिया, कलकत्ता

चट्टोपाध्याय, बी० डी० - आस्पेक्ट्स ऑव रूरल सेटेलमेन्ट्स ऐण्ड रूरल सोसाइटी इन अर्ली मिडीवल इण्डिया, कलकत्ता, १९९०

चट्टोपाध्याय, एस० - अर्ली हिस्ट्री ऑव नार्थ इण्डिया, कलकत्ता, १९५८

- सोशल लाइफ इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९६५

चानना, देवराज - स्लेवरी इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९६०

चौधरी, आर० के० - व्रात्यज इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, वाराणसी, १९६४

चौधरी, एस० बी० - एथनिक सेटेलमेट्स इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९६५

चक्रवर्ती, पी० सी० - द आर्ट ऑव वार इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, ढाका, १९४९

चक्रवर्ती, सी० - ए स्टडी ऑव हिन्दू सोशल पॉलिटी; कलकत्ता, १९५४

चन्द्रप्रभा - हिस्टोरिकल महाकाव्याज इन संस्कृत, दिल्ली, १९७६

चटर्जी, जे० सी० - कश्मीर शैविज्म, खण्ड छ, श्रीनगर, १९१४

चतुर्वेदी, परशुराम - वैष्णव धर्म, इलाहाबाद, १९५३

चौधरी, जी० सी० - पालिटिकल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया फ्राम सोर्सेज, अमृतसर १९५३,

जयचन्द्र - भारत भूमि और उसके निवासी

जायसवाल, के० पी० - हिन्दू पालिटी (द्वितीय संस्करण) बंगलौर, १९४३

- हिस्ट्री ऑव इण्डिया, लाहौर, १९३३

जायसवाल, सुवीरा - द ओरिजिन ऐण्ड डेवलपमेट ऑव वैष्णविज्म, दिल्ली, १९६७

जॉली, जे० - हिन्दू लॉ ऐण्ड कस्टम्स, कलकत्ता, १९२८

जैन, के० सी० - प्राचीन भारतीय सामाजिक और आर्थिक संस्थाएँ, म० प्र०, १९७६

जैन, जे० सी० - लाइफ ऐज डेपिक्टेड इन जैन कैनान्स, बम्बई, १९४७

जैन, पी० सी० - लेबर इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, नई दिल्ली, १९७१

- सोशियो इकनॉमिक एक्सप्लोरेशन ऑव मिडिवल इण्डिया, दिल्ली, १९७६

जोशी, लालमनि - स्टडीज इन बुद्धिस्टिक कल्चर ऑव इण्डिया, दिल्ली, १९७६

जोशी, एल० डी० - द खश फेमिली लॉ, इलाहाबाद, १९२९

झा, डी० एन० - ऐन्शिएण्ट इण्डिया ऐन इंट्रोडक्टरी आउटलाइन, दिल्ली, १९७७

- स्टडीज इन अर्ली इण्डियन इकनॉमिक हिस्ट्री, दिल्ली, १९८०

- (सम्पा०)- फ्युडल सोशल फार्मेशन इन अर्ली इण्डिया, दिल्ली, १९८७

- रेवेन्यू सिस्टम इन पोस्ट-मौर्यन ऐण्ड गुप्ता ऐज, कलकत्ता, १९७६

ट्यूमिन, एम० एम० - सोशल स्टेटीफिकेशन, दिल्ली, १९७८

टेलर हेनरी आसवॉर्न - द मिडिवल माइन्ड, लन्दन, १९११

टाइटस एम० डी० - इण्डियन इस्लाम, लन्दन, १९३०, मद्रास १९३८

टॉड जेम्स - ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया, एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, १८३९

टॉयनबी - ऐन हिस्टॉरियन्स एप्रोच टु रिलिजन, आक्सफोर्ड, १९५६

ठाकुर, विजयकुमार - अरबनाइजेशन इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, नई दिल्ली, १९८१

ड्र्यू, एफ० - ए ज्यॉग्रफिकल एकाउन्ट ऑव जम्मू ऐण्ड कश्मीर टेरिटरीज, लन्दन, १८७५

डाउसन, जे० - क्लासिकल डिक्शनरी ऑव हिन्दू माइथोलाजी, रिलिजन, ज्यॉग्रफी, हिस्ट्री ऐण्ट लिटरेचर, लन्दन, १९५०

डांगे, एस०ए० - भारत आदिम साम्यवाद से दास प्रथा तक का इतिहास, दिल्ली, १९७८

डेरेट, जे० डी० एम० - रिलिजन, लॉ ऐण्ड स्टेट इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, लन्दन, १९६८

डे, एस० के० - अर्ली हिस्ट्री ऑव द वैष्णव फेथ ऐण्ड मूवमेन्ट इन बंगाल, कलकत्ता १९४२

डे, एन० एल० - ज्यॉग्रफिकल डिक्शनरी ऑव ऐन्शिएण्ट ऐण्ड मेडिवल इण्डिया

ताराचन्द्र - इन्फ्लुएन्स ऑव इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर, इलाहाबाद

तिवारी, गौरीशंकर - उत्तरी भारत के ब्राह्मणो का सामाजिक अध्ययन, फैजाबाद, १९८२

थपलियाल, उमाप्रसाद - फारेन इलीमेन्ट्स इन ऐन्शिएण्ट इण्डियन सोसाइटी, नई दिल्ली, १९७९

थपलियाल, के० के० - स्टडीज इन ऐन्शिएण्ट सील्स, लखनऊ, १९७२

थापर, रोमिला - ऐन्शिएण्ट इण्डियन सोशल हिस्ट्री, नई दिल्ली, १९७८
- हिस्ट्री ऑव इण्डिया; खण्ड १, पेलिकन, १९७२

थॉमसन, जे० डब्ल्यू० - ऐन इकनॉमिक ऐण्ड सोशल हिस्ट्री ऑव मिडिल ऐज, न्यूयार्क, १९२८

दत्त, बी० एन० - स्टडीज इन इण्डियन सओशल पॉलिटी, कलकत्ता, १९४४

दत्त, आर० सी० - लेटर हिन्दू सिविलाइजेशन, कलकत्ता, १९६५

दत्त, एन० के० - ओरिजिन ऐण्ड ग्रोथ ऑव कास्ट इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९६५

दण्डेकर, आर० एन० - हिस्ट्री ऑव गुप्ताज, पूना, १९४१

दास, एस० के० - इकनॉमिक हिस्ट्री ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डिया,इलाहाबाद, १९८०
- शक्ति ऑर डिवाइन पॉवर, कलकत्ता, १९३४

दास, मोतीलाल - हिन्दू लॉ ऑव बेलमेन्ट

दासगुप्ता, एस० एन० तथा डे, एस० के० - ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर, कलकत्ता, १९४७

दास, एस० सी० - इण्डियन पण्डित्स इन द लैण्ड ऑव स्नो, १८९३

दास, एस० के० - द एजुकेशनल सिस्टम ऑव द ऐन्शिएण्ट हिन्दूज, कलकत्ता, १९३०

दासगुप्ता, एस० एन० - हिस्ट्री ऑव इण्डियन फिलॉसफी, कैम्ब्रिज, १९४०

दाते, जी० टी० - द आर्ट ऑव वार इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, बम्बई, १९२९

दीक्षितार, के० वी० आर० - वार इन ऐन्शिएण्ट इण्डियन, १९४८

दीक्षितार, वी० आर० आर० - हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिव इन्स्टीट्यूशन्स, मद्रास, १९२९

दीक्षितार, एस० के० - द मरद गॉडेस, पूना

दुबे, एस० एन० - क्रास करेन्ट्स इन अर्ली बुद्धिज्म, नई दिल्ली, १९८०

दुबे, लालमणि - अपराजितपृच्छा ए क्रिटिकल स्टडी, इलाहाबाद, १९८७

दुबे, हरिनारायण - पुराण समीक्षा, इलाहाबाद, १९८४

देवहूति, डी० - हर्ष-ए पोलिटिकल स्टडी-आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रे, १९७०

धर, एस० एन० - रिलिजस इन्स्टीट्यूशन्स ऐण्ड कल्ट्स इन द डेकन, दिल्ली, १९७३

नदवी, एस०एस० - अरब-भारत के सम्बन्ध, इलाहाबाद, १९३०

नाग, कालिदास - ग्रेटर इण्डिया, बम्बई, १९६०

निगम, एस० एस० - इकनॉमिक आर्गनाइजेशन इन ऐन्शिएण्ट, इण्डिया, दिल्ली, १९७५

नियोगी, पुष्पा - कन्ट्रीब्यूशंस टू द इकनॉमिक हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया, कलकत्ता १९६२

- ब्रह्मनिकल सेटेलमेन्ट्स इन डिफरेन्ट सब-डिवीजन्स ऑव ऐन्शिएण्ट बंगाल, कलकत्ता, १९७६

नियोगी, रोमा - हिस्ट्री ऑव द गाहड़वाल डाइनेस्टी, कलकत्ता, १९५९

निजामी, के० ए० - सम आस्पेक्ट्स ऑव रिलिजन ऐण्ड पॉलिटी इन इण्डिया ड्यूरिंग द थर्टीन्थ, सेचुरी, १९६१

नेगी, जे० एस० - सम इण्डोलॉजिकल स्टडीज खण्ड ६ इलाहाबाद, १९६९

प्रभु, पी० एच० - हिन्दू सोशल ऑर्गनाइजेशन, बम्बई, १९५४

पणिक्कर, के० एम० - इण्डिया ऐण्ड द इण्डियन ओशन, लन्दन, १९५९

पार्जिटर, एफ० ई० - ऐन्शिएण्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडिशंस, दिल्ली, १९७२

पाण्डेय, ए० बी० - पूवमध्यकालीन भारत का इतिहास, कानपुर, १९५४

पाण्डे, अनुपा - ए हिस्टारिकल कल्चरल स्टडी ऑव द नाट्यशास्त्र ऑव भारत, जोधपुर, १९९१

पाण्डे, वीणापाणि - हरिवंशपुराण का सांस्कृतिक विवेचन, वाराणसी, १९६०

पाण्डे, सुस्मिता - बर्थ ऑव भक्ति इन इण्डियन रिलिजन्स ऐण्ड आर्ट, दिल्ली, १९८२
समाज, आर्थिक व्यवस्था एवं धर्म, भोपाल, १९९१

पाण्डे, जी० सी० - द मीनिंग ऐण्ड प्रोसेस ऑव कल्चर, आगरा, १९७२

- फाउन्डेशंस ऑव इण्डियन कल्चर, खण्ड ६

- डाइमेन्शंस ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डियन सोशल हिस्ट्री, नई दिल्ली, १९८४

- बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ, १९६३

- भारतीय परम्परा के मूल स्वर, नई दिल्ली-१९८१

- स्टडीज इन दो ओरिजिन्स ऑव बुद्धिज्म, इलाहाबाद, १९५७

पाण्डेय, विमल चन्द्र - भारत वर्ष का क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर (मोती लाल, बनारसी दास, वाराणसी, १९७४)

पाण्डेय, चन्द्रदेव - साम्ब पुराण का सांस्कृतिक अध्ययन, इलाहाबाद, १९८६

पाण्डेय, जयनारायण - पुरातत्त्व विमर्श, इलाहाबाद, १९८८

- भारतीय कला एवं पुरातत्त्व, इलाहाबाद, १९८९

पाण्डेय, एल० पी० - सन वर्शिप इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९७१

पाण्डेय, आर० बी० - हिन्दू संस्काराज, बनारस, १९४९

पाण्डेय, के० सी० - अभिनवगुप्त ऐन हिस्टारिकल ऐण्ड फिलॉसफिकल स्टडी, बनारस, १९३६

पण्डित, एम० पी० - स्टडीज इन द तंत्राज ऐण्ड द वेद, मद्रास, १९६४

पटवर्धन, सी० एन० - हिस्ट्री ऑव एजुकेशन इन मेडिवल इण्डिया।

पालिट, डी० आर० - कल्चरल हिस्ट्री फ्राम द वायु पुराण, दिल्ली, १९७३

पाठक, पी० एन० - सोसाइटी ऐण्ड कल्चर इन अर्ली बिहार, पटना, १९८८

पाठक, वी० एस० - ऐन्शिएण्ट हिस्टोरियन्स ऑव इण्डिया, बम्बई, १९६६

- स्मार्त रिलिजस ट्रेडिशन, मेरठ, १९८७

- शैव कल्ट्स इन नार्दर्न इण्डिया, वाराणसी, १९६०

पाठक, हलधर - कल्चरल हिस्ट्री ऑव द गुप्ता पीरियड, दिल्ली, १९७८

पाठक, एस० - चार्वाक दर्शन की शास्त्रीय समीक्षा, वाराणसी, १९६५

प्राणनाथ - ए स्टडी इन द इकानामिक कण्डीशन ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डिया, लन्दन, १९२९

पॉवेल, बेडेन - द इण्डियन विलेज कम्यूनिटी, लन्दन १८९६

पारसन्स, टी० - एसेज इन सोशियोलॉजिकल थियरी, दिल्ली, १९७५

पुरी, बी० एन० - द हिस्ट्री ऑव द गुर्जर-प्रतिहार, बम्बई, १९५७

पीथवाला, एम० बी० - एन इन्ट्रोडक्शन टू कश्मीर इट्स ज्यॉग्रफी ऐण्ड ज्यालार्जी, करार्जी, १९५३

परक्यूहर, जे० एन० - आउट लाइन ऑव रिलिजस लिटरेचर ऑव इण्डिया, ऑक्सफोर्ड, १९२०

फिक, रिचर्ड - सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ-ईस्ट इण्डिया इन बुद्धाज टाइम, वाराणसी, १९७२

फिनले, एम० आई० - एन्शिएण्ट स्लेवरी ऐण्ड मार्डर्न आईडियोलॉजी, लन्दन, १९८०

फिलिप्स, सी० एच० - हिस्टोरियन्स ऑव इण्डिया, पाकिस्तान ऐण्ड सीलोन, न्यूयार्क, १९७६

बागची, पी०सी० - स्टडीज इन द तंत्राज, कलकत्ता, १९३९

बाजपेयी, के० डी० - भारतीय व्यापार का इतिहास, मथुरा, १९५१

बनर्जी, एन० आर० - द आइरन ऐज इन इण्डिया, नई दिल्ली, १९६५

बनर्जी, जे० एन० - डेवपलमेंट ऑव हिन्दू आइकनोग्राफी, कलकत्ता, १९६५

बनर्जी, आर० डी० - द ऐज ऑव द इम्पीरियल गुप्ताज, वाराणसी, १९७०

बनर्जी, एस० सी० - कल्चरल हेरिटेज ऑव कश्मीर, कलकत्ता, १९६५

बनर्जी, पी० - ए हिस्ट्री ऑव इण्डिया, कलकत्ता, १९६४

बट्स, आर० एफ० - ए कल्चरल हिस्ट्री ऑव एजुकेशन, लन्दन, १९४७

बर्नियर, एफ० - ट्रेवेल्स इन द मुगल इम्पायर, लन्दन, १९१६

बमजाई, पी० एन० के० - ए हिस्ट्री ऑव कश्मीर, दिल्ली, १९७३

बन्द्योपाध्याय, एन० सी० - इकनॉमिक लाइफ ऐण्ड प्रोग्रेस इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९२५

ब्लंट - द कास्ट सिस्टम इन नार्दर्न इण्डिया, दिल्ली, १९६९

ब्यूहलर, जी० - द रिलिजन्स ऑव इण्डिया, लन्दन, १९२१, वाराणसी, १९६३

बाजपेयी, रञ्जना - सोसाइटी इन इण्डिया, दिल्ली, १९९२

बाशम, ए० एल० - द वन्डर दैट वाज इण्डिया, लन्दन, १९५४

- हिस्ट्री ऐण्ड डाक्ट्रिन्स ऑव द आजीविकाज, दिल्ली, १९८१

- कल्हण ऐण्ड हिज क्रॉनिकल, शोधपत्र, १९५६

ब्रॉन, सी० जे० - क्वायन्स ऑव इण्डिया, द हेरिटेज ऑव इण्डिया सिरीज, १९२२

ब्राउन, पर्सी - इण्डियन आर्किटेक्चर, बम्बई

बूच, एम० ए० - इकनॉमिक लाइफ इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, बड़ौदा, १९२४

बेनी प्रसाद - स्टेट इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद, १९२८

बोस, ए० एन० - सोशल ऐण्ड रुरल इकॉनमी ऑव नार्दर्न इण्डिया, कलकत्ता, १९६७

बोस० एन० के० - द स्ट्रक्चर ऑव हिन्दू सोसाइटी, नई दिल्ली, १९७५

बोर, फणीन्द्रनाथ - द इण्डियन टीचर्स इन चाइना, मद्रास, १९२३

बील, एस० - सी-यु-की-लन्दन, १८८४

लाइफ ऑव ह्वेनसांग- लन्दन १९१४

बुद्ध प्रकाश - स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, आगरा, १९६२

भट्टाचार्य, एच० - द कल्चरल हेरिटेज ऑव इण्डिया खण्ड ४- कलकत्ता, १९५३-६२

भट्टाचार्य, एस० सी० - सम आस्पेक्ट्स ऑव इण्डियन सोसाइटी, कलकत्ता, १९७८

भण्डारकर, आर० जी० - वैष्णविज्म, शैविज्म ऐण्ड माइनर रिलिजस सिस्टम, पूना, १९२८

- वैष्णव, शैव तथा अन्य धार्मिक मत, वाराणसी, १९६७

- रिपोर्ट इन सर्च ऑव संस्कृत मनुस्क्रिप्ट्स, बम्बई, १८९७

भण्डारकर, डी० आर० - सम आस्पेक्ट्स ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डियन पॉलिटी, कलकत्ता, १९२९,

ममफोर्ड, लेविस - द सिटी इन हिस्ट्री, लन्दन, १९६१

मजूमदार आर० सी० एवं माधवनन्द - ग्रेट वूमेन ऑव इण्डिया, अल्मोड़ा, १९५३

मजूमदार, ए० के० - राजतरंगिणी ऐज द सोर्सेज ऑव द हिस्ट्री ऑव कश्मीर, बम्बई, १९५६

मजूमदार, बी० के० - द मिलिटरी सिस्टम इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया,कलकत्ता, १९५५,१९६०

मजूमदार, आर० सी० - कारपोरेट लाइफ इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९२२

मजूमदार, आर० सी० एवं० ए० डी० पुलास्कर - हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर ऑव द इण्डियन पीपुल-खण्ड II VI बम्बई १९६०

मजूमदार, एस० एन० - (सम्पा०) कनिंघम्स ऐन्शिएण्ट ज्यॉग्रफी ऑव इण्डिया, कलकत्ता, १९२४

मजूमदार, डी० एन० - रेसेज ऐण्ड कल्चर्स ऑव इण्डिया, बम्बई, १९६१

मजूमदार, बी० पी० - द सोशियो-इकनॉमिक हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया, कलकत्ता, १९६०

मलूनी - हिस्ट्री ऑव कश्मीर-क्रिश्चियन लिटरेरी सोसाइटी फार इण्डिया, १९२१

मार्क्स, कार्ल - द पावर्टी ऑव फिलासफी, मास्को, १९७३

मिश्र, के० सी० - ट्राइब्स इन द महाभारत: ए सोशियो कल्चर स्टडी, नई दिल्ली, १९८७

मिश्र, रमानाथ - प्राचीन भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था एवं धर्म (वैदिककाल से ३०० ई० तक) भोपाल, १९९१

मिश्र, सच्चिदानन्द - प्राचीन भारत मे ग्राम एवं ग्राम्य जीवन , गोरखपुर, १९८४,

मिश्र, पद्मा - इवोल्यूशन ऑव द ब्राह्मण क्लास, वाराणसी, १९७८

मिश्र दुर्गाप्रसाद - श्रृंगारी शतक काव्यो का आलोचनात्मक अध्ययन, मेरठ, १९९०
साहित्य सौहित्यम्, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, १९९५

मित्रा, आर० - इण्डो-आर्यन्स खण्ड छ कलकत्ता, १८८१

मित्रा, आर० सी० - डिक्लाइन ऑव बुद्धिज्म, विश्वभारती स्टडीज, १९५४

मुकर्जी, आर० के० - ऐन्शिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद, १९६०ो
लोकल गवर्नमेण्ट इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, ऑक्सफोर्ड, १९२०

मुकर्जी, सन्ध्या - सम आस्पेक्ट्स ऑव सोशल लाइफ इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद १९७६

मूरक्राफ्ट, डब्ल्यू० एवं जार्ज ट्रेबेक - ट्रेवेल्स इन हिमालयन प्रोविन्सेस ऑव हिन्दुस्तान, ऐण्ड द पंजाब,इन लद्दाख ऐण्ड कश्मीर, दो खण्ड, नई दिल्ली, १९७१

मैक्डॉनल, ए० ए० - हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर, लन्दन, १९००

मैती, एस० के० - अर्ली इण्डियन क्वायन्स ऐण्ड करेंसी सिस्टम, दिल्ली, १९७०
- इकनॉमिक लाइफ इन नार्दर्न इण्डिया इन द गुप्ता पीरिएड, दिल्ली, १९७०

मोतीचन्द्र - सार्थवाह, पटना, १९५३

मेरी, मार्टिन - वूमेन इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, वाराणसी, १९६४

यादव बी० एन० एस० - सोसाइटी ऐण्ड कल्चर इन नार्दर्न इण्डिया इन द ट्वेल्फथ सेन्चुरी ए० डी०, इलाहाबाद, १९७३

यंग हसबैण्ड, एफ० - कश्मीर, नई दिल्ली, १९७०

यूले, हेनरी - द बुक ऑव सर मार्को पोलो, दो खण्ड, लन्दन, १९०३

युशुफ अली - मेडिवल इण्डिया, सोशल ऐण्ड इकनॉमिक कन्डीशंस, लन्दन, १९३२

रमनप्पा, एम० एन० - आउलटाइन्स ऑव साउथ इण्डियन हिस्ट्री, दिल्ली, १९७५

राज, भारती - प्राचीन भारत मे सामाजिक गतिशीलता का अध्ययन, इलाहाबाद, १९८५

राधाकृष्णन् - इण्डियन फिलॉसफी, लन्दन, १९५६

राय, उदयनारायण - प्राचीन भारत मे नगर और नगर-जीवन, इलाहाबाद, १९६५

- गुप्त सम्राट और उनका काल, इलाहाबाद, १९७१

- स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर; इलाहाबाद, १९६९

राय, एस० एन० - हिस्टारिकल ऐण्ड कल्चरल स्टडीज इन द पुराणाज, इलाहाबाद, १९७८

राय, जी० के - इनवालंटरी लेबर इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद, १९८१

राय, जयमल - द दरुल अरबन इकॉनामी ऐण्ड सोशल चेन्जेज इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, वाराणसी, १९७४

राय चौधरी, एच० सी० - पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९५३

- अर्ली हिस्ट्री ऑव द वैष्णव सेक्ट, कलकत्ता, १९२०

रे, एच० सी० - डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया, दो खण्ड, कलकत्ता, १९३१

रे, एस० सी० - अर्ली हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर ऑव कश्मीर, कलकत्ता, १९५७, दिल्ली, १९७०

रिस्ले, एच० - द पीपुल ऑव इण्डिया, लन्दन, १९१५

रेनो, लुइस - वेदिक इण्डिया, कलकत्ता, १९५७

रैप्सन, ई०जे० - (सम्पा०) द कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया, दिल्ली, १९६८

रॉलैण्ड, बेन्जिमिन - द आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर ऑव इण्डिया

लॉ०, एन० एन० - स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर, कलकत्ता, १९२५

लॉ०, ब्री० सी० - हिस्टारिकल ज्यॉग्रफी ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डिया, पेरिस, १९५४

लॉरेन्स, वाल्टर - द वैली ऑव कश्मीर, लन्दन १८९५, श्रीनगर १९६७

लैपियर, आर० टी० - सोशल चेन्ज, चोकियो, १९६५

वलवलकर, पी० एच० - हिन्दू सोशल इन्स्टीट्यूशंस, मद्रास, १९३९

वरदचारियर, एस० - हिन्दू जुडिसियल सिस्टम, लखनऊ, १९४६

विन्टरनित्स, एम० - ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर, दिल्ली, १९७२

विग्ने, जी० टी० - ट्रेवेल्स इन कश्मीर, लद्दाख, इस्कार्डो, खण्ड ६-छ, लन्दन, १८४२

वेद कुमारी - द नीलमत पुराण ए कल्चरल एण्ड लिटरेरी स्टडी, दो खण्ड श्री नगर जम्मू, १९६८

वैद्य, सी० वी० - हिस्ट्री ऑव मेडिवल हिन्दू इण्डिया, तीन खण्ड पूना, १९२१, १९२४, १९२६,

वाट, जी० (सर) - डिक्शनरी ऑव द इकनॉमिक प्रोडक्ट्स ऑव इण्डिया,छः खण्ड, १९९१

वाटर्स, टी० - ऑन युवान च्वांग्स ट्रेवेल्स इन इण्डिया, दिल्ली, १९६१

विल्सन, एच० एच० - ए ग्लोजरी ऑव जुडीशियल ऐण्ड रेवेन्यू टर्म्स, लन्दन, १९५५

- एसे ऑन द हिन्दू हिस्ट्री ऑव कश्मीर, कलकत्ता, १९६०

विलियम्स, एम० - ब्राह्मण्ज्मि ऐण्ड हिन्दूइज्म, लन्दन, १८९१

- बुद्धिज्म, वाराणसी, १९६४

- ए संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी, ऑक्सफोर्ड, १९५१

विन्टरनित्ज, एम० - हिस्ट्री ऑन इण्डियन लिटरेचर, दो खण्ड, कलकत्ता, १९२७-३३

वुड्रॉफ, सर जे - इन्ट्रोक्शन टु तंत्रशास्त्र, मद्रास, १९६३

- द सर्पेन्ट पॉवर, १९६४

- शक्ति ऐण्ड शाक्त, मद्रास, १९५१

वेवर, मैक्स - द रिलिजन ऑव इण्डिया, द फ्री प्रेस, ग्लेन कोई

वाचस्पति, गैरोला - भारतीय चित्रकला,

शर्मा, दशरथ - राजस्थान थ्रू द ऐजेज (खण्ड १) बीकानेर; १९६६

- अर्ली चौहान डाइनेस्टीज, दिल्ली, १९५९,

शर्मा, जी० आर० - इक्सकावेशंस ऐट कौशाम्बी (१९५७-१९५९ ई०), दिल्ली, १९६६

शर्मा, आर० एस० - इण्डियन फ्युडलिज्म, दिल्ली, १९८०

- पर्सपेक्टिव्स इन सोशल ऐण्ड इकनॉमिक हिस्ट्री ऑव अर्ली इण्डिया, दिल्ली, १९८३

- प्राचीन भारत मे भौतिक प्रगति एव सामाजिक संरचनाएं नई दिल्ली, १९९०

- पूर्वकालीन भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था पर प्रकाश, दिल्ली, १९७८

- पूर्व मध्यकालीन भारत मे सामाजिक परिवर्तन, दिल्ली, १९७५

- मैटेरियल कल्चर ऐण्ड सोशल फार्मेशन्स इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९८३

- लाइट ऑन अर्ली इण्डियन सोसाइटी ऐण्ड इकॉनमी, बम्बई, १९६६

- शूद्राज इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९८०

- लैण्ड रेवेन्यू इन इण्डिया, हिस्टारिकल प्रोबिन्स, नई दिल्ली, १९७१

एवं झा, वी० - (सम्पा०) इण्डियन सोसाइटी, हिस्टारिकल प्रोबिन्स, नई दिल्ली, १९७४

शर्मा, रामायण प्रसाद - भारतीय वर्ण व्यवस्था, सांस्कृतिक एवं दार्शनिक विवेचन, वाराणसी, १९७४

शास्त्री शकुन्तला राव - वूमेन इन द सेक्रेड लाज, बम्बई, १९५३

शाह, के० टी० - ऐन्शिएण्ट फाउन्डेशंस ऑव इकनामिक्स इन इण्डिया, बम्बई, १९५४

शास्त्री, ए० बी० - असुर इण्डिया, पटना, १९२६

स्पेगलर, जोसेफ जे० - इण्डियन इकनॉमिक थाट, डरहम, एन० सी०, १९७३

स्मिथ, वी० ए० - अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया, आक्सफोर्ड, १९२४

सरकार, डी० सी० - इण्डियन इपिग्राफी, दिल्ली, १९६६

- द इम्परर ऐण्ड द सबार्डिनेट रुलर्स, कलकत्ता, १९८२

- स्टडीज इन इण्डियन क्वायन्स, दिल्ली, १९६८

- (सम्पा०) लैण्ड सिस्टम ऐण्ड फ्युडलिज्म इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९६६

- सोशल लाइफ इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९७१

सक्सेना, के० एस० - पालिटिकिल हिस्ट्री ऑव कश्मीर, लखनऊ, १९७४

सरन, पी० - स्टडीज इन मुगल इम्पायर, कलकत्ता

स्पेयर, जे० एस० - स्टडीज एबाउट द कथासरित्सागर, लैडेन

सिल्स, एल० डेविड - इन्टरनेशनल इनसाइक्लोपीडिया ऑव सोशल साइन्सेज, खण्ड ७,१९६८

सिंह, चन्द्रदेव - प्राचीन भारतीय समाज और चिन्तन, वाराणसी, १९८७

सिंह, देवी प्रसाद - हिन्दू समाज मे परिवर्तन की प्रक्रिया, गोरखपुर, १९८४

सिंह, रणजीत - धर्म की हिन्दू अवधारणा, इलाहाबाद, १९७७

सिन्हा ए० के० - सोशल स्ट्रक्चर ऑव इण्डिया, कलकत्ता, १९७४

सिन्हा, वी० पी० - पाटरीज इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, पटना, १९६९

सिलवरवर्ग, जेम्स - सोशल मोबिलिटी इन द कास्ट सिस्टम इन इंण्डया माटन, द हाग, १९६८

सोरोकिन, पी० ए० - सोशल ऐण्ड कल्चरल मोबिलिटी, लन्दन, १९५९

साहनी, डी० आर० - प्रि मोहम्डन मानुमेन्ट्स ऑव कश्मीर, आर्क्या०, सर्वे० इण्डि० १९१५-१६ कलकत्ता १९१८

सांकृत्यायन, राहुल - पुरातत्त्व निबन्धावली, इलाहाबाद, १९३७
तिब्बत मे बौद्ध धर्म; १९३४

सरकार, बी० के० - द फोल्क इलमेन्ट इन हिन्दू कल्चर; लन्दन, १९१७

सेन, पी० एन० - जनरल प्रिन्सिपल्स ऑव हिन्दू जुरिशप्रुडेन्स

सूफी, जी० एम० डी० - कश्मीर, दो खण्ड, लाहौर, १९४९

सूर्यकान्त - क्षेमेन्द्र स्टडीज, पूना, १९५४

श्रीमाली, के० एम० - (सम्पा०) एसेज इन इण्डियन आर्ट, रिलिजन एण्ड सोसाइटी, दिल्ली, १९८७

श्रीवास्तव, वी० सी० - सन वर्शिप इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद, १९७२

श्रीवास्तव, ए० एल० - मेडिकल इण्डियन कल्चर; आगरा, १९६४

हबीब, इरफान - द कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया, खण्ड छ्छ

हट्टन - कास्ट इन इण्डिया, लन्दन, १९६३

हनुमन्थन, के० आर० - अनटजेबिलिटी, मदुरै, १९७९

व्हीलर, जे० टाल्ब्याज - द रिलिजस ऐण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑव इण्डिया, दिल्ली, १९८८

हापकिन्स, ई० डब्ल्यू० - द रिलिजन्स ऑव इण्डिया, लन्दन, १८९५

- द सोशल ऐण्ड मिलिटरी पोजीशन ऑव द रुलिंग कास्ट इन इण्डिया

हेस्टिंग्स, जे० - (सम्पा०) इनसाइक्लोपीडिया ऑव रिलिजन ऐण्ड इथिक्स, वाराणसी, १९७२, खण्ड छ्रैच्छ, इण्डियन वर्ग; १९०८-१९२६

हुसैन, युसुफ - ग्लिम्पसेज ऑव मेडिवल इण्डियन कल्चर; बम्बई, १९६२

त्रिपाठी, जयशंकर - संस्कृत साहित्य रचना का इतिहास (साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, सन् २००२)

त्रिपाठी, श्री शिव शंकर - अथ-अनुक्रम

साहित्य भण्डार, इलाहाबाद सन्२००२

(भारतीय मनीषासूत्रम्, इलाहाबाद, सन् १९९०)

त्रिपाठी, आर० पी० - स्टडीज इन पोलिटिकल एण्ड सोशियो- इकनॉमिक हिस्ट्री ऑव अर्ली इण्डिया, इलाहाबाद, १९८१

- मिनिस्टर्स इन अर्ली इण्डिया, नीरज प्रकाशन, इलाहाबाद, १९९९

त्रिपाठी, आर० एस० - हिस्ट्री ऑव कन्नौज, दिल्ली, १९५९, बनारस, १९३७

त्रिपाठी, सत्यदेव - प्राचीन भारत मे गुप्तचर सेवा, दिल्ली, १९८५